ॐ श्रीपरमात्मने नमः

# धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

## वैकुण्ठलोकका वर्णन, मरणकालमें और मरणके अनन्तर जीवके कल्याणके लिये विहित विभिन्न कर्तव्योंके बारेमें गरुडजीके द्वारा किये गये प्रश्न, प्रेतकल्पका उपक्रम

श्रीगणेशजीको नमस्कार है। 'ॐ'कारसे युक्त भगवान् वासुदेव हरिको प्रणाम है।

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥**

भगवान् श्रीनारायण, नरोत्तम नर एवं भगवती श्रीसरस्वती देवीको नमस्कार करके पुराणका वाचन करना चाहिये। जिन भगवान्‌का धर्म ही मूल है, वेद जिनका स्कन्ध है, पुराणरूपी शाखासे जो समृद्ध हैं, यज्ञ जिनके पुष्प हैं, मोक्ष जिनका फल है—ऐसे भगवान् मधुसूदनरूपी कल्पवृक्षकी जय हो।

देवक्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादिक श्रेष्ठ मुनियोंने सुखपूर्वक विराजमान श्रीसूतजी महाराजसे कहा—

हे श्रीसूतजी! आप श्रीवेदव्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं। अतः आप हम सभीके संदेहका निवारण करें। कुछ लोगोंका कहना है कि जिस प्रकार कोई जोंक तिनकेसे तिनकेका सहारा लेकर आगे बढ़ती है, उसी प्रकार शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है। दूसरे विद्वानोंका कहना है कि प्राणी मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओंका भोग करता है, तदनन्तर उसको दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है—इन दोनोंमें क्या सत्य है? यह हमें बतानेकी कृपा करें।

**सूतजीने कहा**—हे महाभाग! आप लोगोंने अच्छा प्रश्न किया है। आप लोगोंको संदेह हो यह असम्भव है। आप लोगोंने तो लोकहितसे प्रेरित होकर ही ऐसा प्रश्न किया है। हे विप्रगणो! मैं आप सबके हृदयमें अवस्थित उस संदेहको भगवान् श्रीकृष्ण और गरुडके बीच हुए संवादके द्वारा दूर करूँगा। सर्वप्रथम मैं उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ, जिनका आश्रय लेकर मनुष्य इस भवसागरको एक क्षुद्र नदीकी भाँति अनायास ही पार कर जाते हैं।

हे मुनियो! एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयमें इस ब्रह्माण्डके सभी लोकोंको देखनेकी इच्छा हुई। अतः हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होंने सभी लोकोंका भ्रमण किया। पाताल, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकका भ्रमण करते हुए वे पृथ्वीलोकके दुःखसे अत्यन्त दुःखित एवं अशान्तचित्त होकर पुनः वैकुण्ठलोक वापस आ गये।

वैकुण्ठलोकमें न रजोगुणकी प्रवृत्ति है, न तमोगुणकी ही प्रवृत्ति है, [मृत्युलोकके समान] रजोगुण तथा तमोगुणसे मिश्रित सत्त्वगुणकी भी प्रवृत्ति वहाँ नहीं है। वहाँ केवल शुद्ध सत्त्वगुण ही अवस्थित रहता है। वहाँ माया भी नहीं है, वहाँ किसीका विनाश नहीं होता। वहाँ राग-द्वेष आदि षड्विकार भी नहीं हैं। वहाँ देव और असुर-वर्गद्वारा पूजित श्यामवर्णकी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित राजीवलोचन भगवान् विष्णुके पार्षद विराजमान रहते हैं, जिनके शरीर पीतवसन और मनोहारी आभूषणोंसे विभूषित हैं और मणियुक्त स्वर्णके अलङ्करणोंसे सुशोभित हैं। भगवान्‌के वे सभी पार्षद चार-चार भुजाओंसे युक्त हैं। उनके कानोंमें कुण्डल और सिरपर मुकुट है। उनका वक्षःस्थल सुन्दर पुष्पोंकी मालासे सुशोभित है। मनको मोहित करनेवाली अप्सराओंसे युक्त, महात्माओंके चमकते हुए विमानोंकी पंक्तिकी कान्तिसे वे सभी सदा भास्वरित होते रहते हैं। वहाँ नाना प्रकारके वैभवोंसे समन्वित लक्ष्मी प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिके चरणोंकी पूजा करती रहती हैं।

गरुडजीने वहाँ देखा कि श्रीहरि झूलेपर विराजमान हैं। सखियोंद्वारा स्तुत्य लक्ष्मीजी झूलेमें स्थित भगवान्‌की स्तुति कर रही हैं। अपने लाल-लाल बड़े-बड़े नेत्रोंसे युक्त प्रसन्नमुख देवोंके अधिपति, श्रीपति, जगत्पति और यज्ञपति भगवान् श्रीहरि अपने नन्द, सुनन्द आदि प्रधान पार्षदोंको देख रहे थे। उनके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और वक्षःस्थल श्रीसे सुशोभित था। वे पीताम्बरसे विभूषित थे। उनकी चार भुजाएँ थीं। प्रसन्नमुद्रामें हँसता हुआ उनका मुख था। बहुमूल्य आसनपर विराजमान वे हरि उस समय अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे आवृत थे। प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, मन, पञ्चमहाभूत तथा पंचतन्मात्राओंसे निर्मित शरीरवाले अपने ही स्वरूपमें रमण करते हुए उन भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका अन्तःकरण आनन्दविभोर हो उठा। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगी। आनन्दमग्न होकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। प्रणाम करते हुए अपने वाहन गरुडको देखकर भगवान् विष्णुने कहा—हे पक्षिन्! आपने इतने दिनोंमें इस जगत्‌की किस भूमिका परिभ्रमण किया है?

**गरुडने कहा**—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने समस्त त्रिलोकीका परिभ्रमण किया है। उनमें स्थित जगत्‌के सभी स्थावर और जङ्गम प्राणियोंको भी देखा। हे प्रभो! यमलोकको छोड़कर पृथ्वीलोकसे सत्यलोकतक सब कुछ मेरे द्वारा देखा जा चुका है। सभी लोकोंकी अपेक्षा भूर्लोक प्राणियोंसे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियोंमें मानवयोनि ही भोग और मोक्षका शुभ आश्रय है। अतः सुकृतियोंके लिये ऐसा लोक न तो अभीतक बना है और न भविष्यमें बनेगा। देवता लोग भी इस लोककी प्रशंसामें गीत गाते हुए कहते हैं—'जो लोग पवित्र भारतकी भूमिमें जन्म लेकर निवास करते हैं, वे धन्य हैं। देवता लोग भी स्वर्ग एवं अपवर्गरूप फलकी प्राप्तिके लिये पुनः भारतभूमिमें मनुष्यरूपमें जन्म लेते हैं'—

**गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।**
**स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥**

(१।२७)

हे प्रभो! आप यह बतानेकी कृपा करें कि मृत्युको प्राप्त हुआ प्रेत किस कारण पृथ्वीपर डाल दिया जाता है?

उसके मुखमें पञ्चरत्न[१] क्यों डाला जाता है? मरे हुए प्राणीके नीचे लोग कुश किसलिये बिछा देते हैं? उसके दोनों पैर दक्षिण दिशाकी ओर क्यों कर दिये जाते हैं? मरनेके समय मनुष्यके आगे पुत्र-पौत्रादि क्यों खड़े रहते हैं? हे केशव! मृत्युके समय विविध वस्तुओंका दान एवं गोदान किसलिये दिया जाता है? बन्धु-बान्धव, मित्र और शत्रु आदि सभी मिलकर क्यों क्षमा-याचना करते हैं? किससे प्रेरित होकर लोग मृत्युकालमें तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, नमक, सप्तधान्य[२], भूमि और गौका दान देते हैं? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय वह आतिवाहिक शरीर (निराधार-रूपमें आत्माको वहन करनेवाले शरीर)-को कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र और पौत्र उसे कन्धेपर क्यों ले जाते हैं? शवमें घृतका लेप क्यों किया जाता है? उस समय एक आहुति देनेकी परम्परा कहाँसे चली है? शवको भूमिस्पर्श किसलिये करवाया जाता है? स्त्रियाँ उस मरे हुए व्यक्तिके लिये क्यों विलाप करती हैं? शवके उत्तर दिशामें 'यमसूक्त'का पाठ क्यों किया जाता है? मरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है? उस समय सूर्य-बिम्ब-निरीक्षण, पत्थरपर स्थापित यव, सरसों, दूर्वा और नीमकी पत्तियोंका स्पर्श करनेका विधान क्यों है? उस समय स्त्री एवं पुरुष दोनों नीचे-ऊपर एक ही वस्त्र क्यों धारण करते हैं? शवका दाह-संस्कार करनेके पश्चात् उस व्यक्तिको अपने परिजनोंके साथ बैठकर भोजनादि क्यों नहीं करना चाहिये? मरे हुए व्यक्तिके पुत्र दस दिनके पूर्व किसलिये पिण्डोंका दान देते हैं? चबूतरे (वेदी)-पर पके हुए मिट्टीके पात्रमें दूध क्यों रखा जाता है? रस्सीसे बँधे हुए तीन काष्ठ (तिगोड़िया)-के ऊपर रात्रिमें गाँवके चौराहेपर एकान्तमें वर्षपर्यन्त प्रतिदिन दीपक क्यों दिया जाता है? शवका दाह-संस्कार तथा अन्य लोगोंके साथ जल-तर्पणकी क्रिया क्यों की जाती है? हे भगवन्! मृत्युके बाद प्राणी आतिवाहिक शरीरमें चला जाता है, उसके लिये नौ पिण्ड देने चाहिये, इसका क्या प्रयोजन है? किस विधानसे पितरोंको पिण्ड प्रदान करना चाहिये और उस पिण्डको स्वीकार करनेके लिये उनका आवाहन कैसे किया जाय?

हे देव! यदि ये सभी कार्य मरनेके तुरंत बाद सम्पन्न हो जाते हैं तो फिर बादमें पिण्डदान क्यों किया जाता है? पूर्व किये गये पिण्डदानके बाद पुनः पिण्डदान या अन्य क्रियाओंको करनेकी क्या आवश्यकता है? दाह-संस्कारके बाद अस्थि-संचयन और घट फोड़नेका विधान क्यों है? दूसरे दिन और चौथे दिन साग्निक द्विजके स्नानका

१-सोना, चाँदी, मोती, लाजावर्त (लाजवर्द) तथा मूँगा—ये पाँच पञ्चरत्न कहलाते हैं।

२-जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना तथा साँवा—ये सप्तधान्य कहलाते हैं।

विधान क्यों है? दसवें दिन सभी परिजनोंके साथ शुद्धिके लिये स्नान क्यों किया जाता है? दसवें दिन तेल एवं उबटनका प्रयोग क्यों किया जाता है। उस तेल और उबटनका प्रयोग भी एक विशाल जलाशयके तटपर होना अपेक्षित है, इसका क्या कारण है? दसवें दिन पिण्डदान क्यों करना चाहिये? एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? पात्र, पादुका, छत्र, वस्त्र तथा अंगूठी आदि वस्तुओंका दान क्यों दिया जाता है? तेरहवें दिन पददान क्यों दिया जाता है। वर्षपर्यन्त सोलह श्राद्ध क्यों किये जाते हैं तथा तीन सौ साठ सान्नोदक घट क्यों दिये जाते हैं। प्रेततृप्तिके लिये प्रतिदिन अन्नसे भरे हुए एक घटका दान क्यों करना चाहिये।

हे प्रभो! मनुष्य अनित्य है और समय आनेपर ही वह मरता है, किंतु मैं उस छिद्रको नहीं देख पाता हूँ, जिससे जीव निकल जाता है? प्राणीके शरीरमें स्थित किस छिद्रसे पृथ्वी, जल, मन, तेज, वायु और आकाश निकल जाते हैं? हे जनार्दन! इसी शरीरमें स्थित जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच वायु हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं। लोभ, मोह, तृष्णा, काम और अहंकाररूपी जो पाँच चोर शरीरमें छिपे रहते हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं।

हे माधव! प्राणी अपने जीवनकालमें पुण्य अथवा पाप जो कुछ भी कर्म करता है, नाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं। वर्षके समाप्त हो जानेपर भी मरे हुए प्राणीके लिये सपिण्डीकरण क्यों होता है? उस प्रेतकृत्यमें (सपिण्डन) प्रेतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये, इसे आप बतानेकी कृपा करें।

हे हरे! मूर्च्छासे अथवा पतनसे जिनकी मृत्यु होती है, उनके लिये क्या होना चाहिये। जो पतित मनुष्य जलाये गये अथवा नहीं जलाये गये तथा इस पृथ्वीपर जो अन्य प्राणी हैं, उनके मरनेपर अन्तमें क्या होना चाहिये। जो मनुष्य पापी, दुराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मघाती, ब्रह्महत्यारा, स्वर्णादिकी चोरी करनेवाला, मित्रादिके साथ विश्वासघात करनेवाला है, उस महापातकीका क्या होता है? हे माधव! जो शूद्र कपिला गौका दूध पीता है अथवा प्रणव महामन्त्रका जप करता है या ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है तो मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है? हे संसारके स्वामी! जब कोई शूद्र किसी ब्राह्मणीको पत्नी बना लेता है तो उस पापीसे मैं भी डरता हूँ। आप बतायें कि उस पापीकी क्या दशा होती है? साथ ही उस पापकर्मके फलको बतानेकी भी कृपा करें।

हे विश्वात्मन्! आप मेरी दूसरी बातपर भी ध्यान दें। मैं कौतूहलवश वेगपूर्वक लोकोंको देखता हुआ सम्पूर्ण जगत्में जा चुका हूँ, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देखा है कि वे सभी दुःखमें ही डूब रहे हैं। उनके अत्यन्त कष्टोंको देखकर मेरा अन्तःकरण पीड़ासे भर गया है। स्वर्गमें दैत्योंकी शत्रुतासे भय है। पृथ्वीलोकमें मृत्यु और रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे लोग दुःखित हैं। पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियोंको मेरे भयसे दुःख बना रहता है*। हे ईश्वर! आपके इस वैष्णव पद (वैकुण्ठ)-के अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी देती। कालके वशीभूत इस जगत्की स्थिति स्वप्नकी मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें

* पाताललोकमें नागोंको गरुडका भय रहता है।

रहनेवाले लोग बहुत-से दु:खोंको भोग रहे हैं। मैंने वहाँ देखा है कि उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा मोह आदिमें आकण्ठ डूबे हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढ़ी दृष्टिवाले हैं, कुछ दुष्ट वाणीवाले हैं, कुछ लूले हैं, कुछ लँगड़े हैं, कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूँगे हैं, कुछ कोढ़ी हैं, कुछ लोमश (अधिक रोमवाले) हैं, कुछ नाना रोगसे घिरे हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह नितान्त मिथ्या अभिमानसे चूर हैं। उनके विचित्र दोषोंको देखकर तथा उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यत: यह सुन रखा है कि जिसकी विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती हैं, उसकी दुर्गति होती है। फिर भी हे प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये। मृत्यु और श्मशान-भूमितक पहुँचनेके बीच कौन-सी विधि अपेक्षित है। चितामें शवको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह प्राप्त होती है, यमलोक (संयमनी नगरी)-को जानेवालेके लिये वर्षपर्यन्त कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये। दुर्बुद्धि अर्थात् दुराचारी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसका प्रायश्चित्त क्या है? पञ्चक आदिमें मृत्यु होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये। हे देव! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। मैंने आपसे यह सब लोकमङ्गलकी कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करें। (अध्याय १)

# मरणासन्न व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म, मृत्युसे पूर्वकी स्थिति तथा कर्मविपाकका वर्णन

**श्रीकृष्णने कहा**—हे भद्र! आपने मनुष्योंके हितमें बहुत ही अच्छी बात पूछी है। सावधान होकर इस समस्त और्ध्वदैहिक क्रियाको भलीभाँति सुनें।

हे गरुड! जो सम्यक् रूपसे भेदरहित है, जिसका वर्णन श्रुतियों और स्मृतियोंमें हुआ है, जिसको इन्द्रादि देवता, योगीजन और योगमार्गका चिन्तन करनेवाले विद्वान् नहीं देख सके हैं, जो गुह्यातिगुह्य है, ऐसे उस प्रधान तत्त्वको जिसे मैंने अभीतक किसी अन्यसे नहीं कहा है, तुम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

हे वैनतेय! इस संसारमें पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं है, उसको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता है। अत: शास्त्रानुसार यथायोग्य उपायसे पुत्र उत्पन्न करना ही चाहिये। यदि मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका उद्धार कर देता है। पुत्र और पौत्रको मरे हुए प्राणीको कन्धा देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिये। शवके नीचे पृथ्वीपर तिलके सहित कुश बिछानेसे शवकी आधारभूत भूमि उस ऋतुमती नारीके समान हो जाती है, जो प्रसवकी योग्यता रखती है। मृतकके मुखमें पञ्चरत्न डालना बीजवपनके समान है, जिससे आगे जीवकी शुभगतिका निश्चय होता है। जैसे पुष्प (ऋतुकालमें स्त्रियोंका रजोदर्शन) न होनेपर गर्भधारण सम्भव नहीं है, वैसे ही शवभूमि भी तिल-कुश आदिके बिना जीवकी शुभ योनिमें

कारण नहीं बन पाती। इसीलिये श्रद्धापूर्वक तिल, कुश, पञ्चरत्न आदिका यथाविधान विनियोग आवश्यक है।

गोबरसे भूमिको सबसे पहले लीपना चाहिये, तदनन्तर उसके ऊपर तिल और कुश बिछाना चाहिये। उसके बाद आतुर व्यक्तिको भूमिपर कुशासनके ऊपर सुला देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जला कर पापमुक्त हो जाता है। शवके नीचे बिछाये गये कुशसमूह निश्चित ही मृत्युग्रस्त प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। जहाँ पृथ्वीपर मल-मूत्रादिका लेप (सम्बन्ध) नहीं है वहाँ वह सदा पवित्र है और जहाँ (मल-मूत्रादिका) लेप (सम्बन्ध) है, वहाँ (मल-मूत्रादिका अपसारण करके) गोमयसे लेप करनेपर वह शुद्ध होती है। गोबरसे बिना लिपी हुई भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न व्यक्तिमें यक्ष, पिशाच एवं राक्षस-कोटिके क्रूरकर्मी दुष्ट लोग प्रविष्ट हो जाते हैं। मरणासन्नकी मुक्तिके लिये उसे जलसे बनाये गये मण्डलवाली भूमिपर ही सुलाना चाहिये, क्योंकि नित्य-होम, श्राद्ध, पादप्रक्षालन, ब्राह्मणोंकी अर्चा एवं भूमिका मण्डलीकरण मुक्तिके हेतु माने गये हैं। बिना लिपी-पुती मण्डलहीन भूमिपर मरणासन्न व्यक्तिको नहीं सुलाना चाहिये। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें[1] ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अत: मण्डलका निर्माण अवश्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राण-त्याग करनेपर वह चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे जवान हो, उसको अन्य योनि नहीं प्राप्त होती है। हे तार्क्ष्य! उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। उस प्रकारकी वायुभूत जीवात्माके लिये न तो श्राद्धका विधान है और न तो जलतर्पणकी क्रिया ही बतायी गयी है।

हे गरुड! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं। अत: तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। तिल श्वेत, कृष्ण और गोमूत्रवर्णके समान होते हैं। 'वे मेरे शरीरके द्वारा किये गये समस्त पापोंको नष्ट करें।' ऐसी भावना करनी चाहिये। एक ही तिलका दान स्वर्णके बत्तीस सेर तिलके दानके समान है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं और तिलकी उत्पत्ति मेरे पसीनेसे हुई है। इसीलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपसे कुशकी और पितरोंकी तृप्तिके लिये तिलकी आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरोंकी तृप्ति विश्वके लिये उपजीव्य (रक्षक) होनेके कारण विश्वकी तृप्तिमें हेतु है। अत: अपसव्य आदि श्राद्धकी जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हीं विधियोंके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनोंको संतृप्त करना चाहिये। अपसव्य आदि होकर [तिलका उपयोग करनेसे] ब्रह्मा, पितर और देवेश्वर तृप्त होते हैं। अपसव्य होकर कर्म करनेसे पितरोंकी संतृप्ति होती है[2]।

---

१-यहाँ मण्डलका तात्पर्य है—जलसे प्रोक्षणके बाद जलसे गोलाकार रेखा बना देना और चौक आदि पूरना।

२-मम स्वेदसमुद्भूतास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रका:। असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्तथा॥
तिला: श्वेतास्तिला कृष्णास्तिला गोमूत्रसंनिभा:। दहन्तु ते मे पापानि शरीरेण कृतानि वै॥
एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलै: सम:। तर्पणे दानहोमेषु दत्तो भवति चाक्षय:॥
दर्भा रोमसमुद्भूतास्तिला: स्वेदेषु नान्यथा। देवता दानवास्तृप्ता: श्राद्धेन पितरस्तथा॥
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं चाप्युपजीवनात्। अपसव्यादितो ब्रह्मा पितरो देवदेवता:॥
तेन ते पितरस्तृप्ता अपसव्ये कृते सति। (२।१६—२१)

कुशके मूलभागमें ब्रह्मा, मध्यभागमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये; ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये हैं। हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी—ये बार-बार समर्पित होनेपर भी पर्युषित नहीं माने जाते, कभी निर्माल्य अर्थात् बासी नहीं होते। इनका पूजामें बारम्बार प्रयोग किया जा सकता है। हे खगेन्द्र! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु तथा एकादशीव्रत—ये पाँचों संसारसागरमें डूबते हुए लोगोंको नौकाके समान पार कराते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! विष्णु, एकादशीव्रत, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ—ये छः इस असार-संसारमें लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके साधन हैं, यह षट्पदी कहलाती है—

**दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवो जनार्दनः॥**
**दर्भाग्रे शंकरं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्मृताः।**
**विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर॥**
**नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः।**
**तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥**
**पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां नृणाम्।**
**विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥**
**असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी।**

(२। २१—२५)

जैसे तिलकी पवित्रता अतुलनीय होती है, उसी प्रकार कुश और तुलसी भी अत्यन्त पवित्र होते हैं। ये तीनों पदार्थ मरणासन्न व्यक्तिको दुर्गतिसे उबार लेते हैं*। दोनों हाथोंसे कुश उखाड़ना चाहिये और उसे पृथ्वीपर रखकर जलसे प्रोक्षित करना चाहिये तथा मृत्युकालमें मरणासन्नके दोनों हाथोंमें रखना चाहिये। जिसके हाथोंमें कुशाएँ हैं और जो कुशसे परिवेष्टित कर दिया जाता है, वह मन्त्रहीन होनेपर (उसकी समन्त्रक क्रियाएँ न हो पायी हों, तब) भी विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस असार संसारसागरमें भूमिको गोबरसे लीपकर उसपर मृत मनुष्यको सुलानेसे और कुशासनपर स्थित करनेसे तथा विशुद्ध अग्निमें दाह करनेसे उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है।

लवण और उसका रस दिव्य (उत्तम लोकका प्रापक) है, वह प्राणियोंकी समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। लवणके बिना अन्न-रस उत्कट अर्थात् न अभिव्यक्त होते हैं और न सुस्वादु होते हैं। इसीलिये लवण-रस पितरोंको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करनेवाला है। यह लवण-रस भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इस बातको जाननेवाले योगीजन, लवणके साथ दान करनेको कहते हैं। इस पृथ्वीपर यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री तथा शूद्र वर्णके आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हों तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान देना चाहिये।

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको विस्तारपूर्वक सुनें। मृत्यु ही काल है, उसका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्युकष्टके प्रभावसे प्राणी अपने किये कर्मोंको एकदम भूल जाता है। हे गरुड! जिस प्रकार वायु मेघमण्डलोंको इधर-उधर खींचता है, उसी प्रकार प्राणी कालके वशमें रहता है। सात्त्विक, राजस और तामस—ये सभी भाव कालके वशमें हैं। प्राणियोंमें वे कालके अनुसार अपने-अपने प्रभावका विस्तार करते हैं। हे सर्पहन्ता गरुड! सूर्य,चन्द्र, शिव, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, औषधि, आठों वसु, नदी, सागर और भाव-अभाव—ये सभी कालके अनुसार यथासमय उद्भूत होते हैं, बढ़ते हैं, घटते

* तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाश्चापि तुलस्यथ॥
निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं यान्तमातुरम्॥ (२। २५-२६)

हैं और मृत्युके उपस्थित होनेपर कालके प्रभावसे विनष्ट हो जाते हैं।

हे पक्षिन्! जब मृत्यु आ जाती है तो उसके कुछ समय पूर्व दैवयोगसे कोई रोग प्राणीके शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं और बल, ओज तथा वेग शिथिल हो जाता है। हे खग! प्राणियोंको करोड़ों बिच्छुओंके एक साथ काटनेका जो अनुभव होता है, उससे मृत्युजनित पीड़ाका अनुमान करना चाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जड़ता आ जाती है। तदनन्तर यमदूत उसके समीप आकर खड़े हो जाते हैं और उसके प्राणोंको बलात् अपनी ओर खींचना शुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कण्ठमें आ जाते हैं। मृत्युके पूर्व मृतकका रूप बीभत्स हो उठता है। वह फेन उगलने लगता है। उसका मुँह लारसे भर जाता है। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अङ्गुष्ठ-परिमाणका पुरुष हाहाकार करता हुआ तथा अपने घरको देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा यमलोक ले जाया जाता है।

मृत्युके समय शरीरमें प्रवाहित वायु प्रकुपित होकर तीव्र गतिको प्राप्त करता है और उसीकी शक्तिसे अग्नितत्त्व भी प्रकुपित हो उठता है। बिना ईंधनके प्रदीप्त ऊष्मा प्राणीके मर्मस्थानोंका भेदन करने लगती है, जिसके कारण प्राणीको अत्यन्त कष्टकी अनुभूति होती है। परंतु भक्तजनों एवं भोगमें अनासक्त जनोंकी अधोगतिका निरोध करनेवाला उदान नामक वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है।

जो लोग झूठ नहीं बोलते, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, उन्हें सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त होती है। जो काम, ईर्ष्या और द्वेषके कारण स्वधर्मका परित्याग न करे, सदाचारी और सौम्य हो, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक मरते हैं।

जो लोग मोह और अज्ञानका उपदेश देते हैं, वे मृत्युके समय महान्धकारमें फँस जाते हैं। जो झूठी गवाही देनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासघाती और वेदनिन्दक हैं, वे मूर्च्छारूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनको ले जानेके लिये लाठी एवं मुद्गरसे युक्त दुर्गन्धसे भरपूर एवं भयभीत करनेवाले दुरात्मा यमदूत आते हैं। ऐसी भयंकर परिस्थिति देखकर

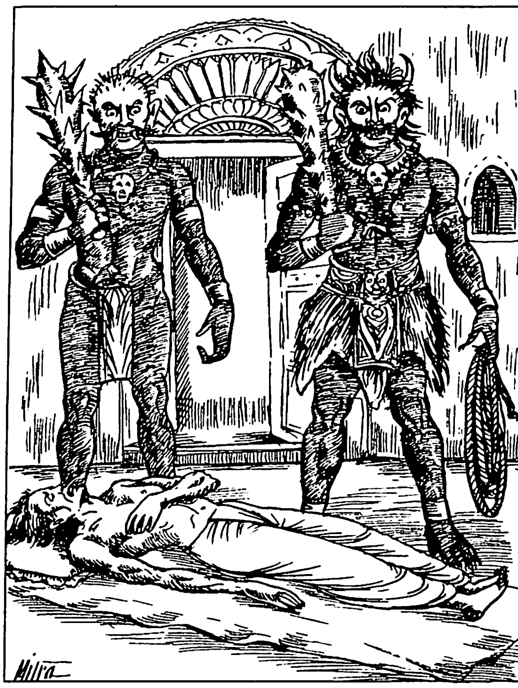

प्राणीके शरीरमें भयवश कम्पन होने लगता है। उस समय वह अपनी रक्षाके लिये अनवरत माता-पिता और पुत्रको यादकर करुण-क्रन्दन करता है। उस क्षण प्रयास करनेपर भी ऐसे जीवके कण्ठसे एक शब्द भी स्पष्ट नहीं निकलता। भयवश प्राणीकी आँखें नाचने लगती हैं। उसकी साँस बढ़ जाती है और मुँह सूखने लगता है। उसके बाद वेदनासे आविष्ट होकर वह अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये अस्पृश्य एवं घृणायोग्य हो जाता है।

हे गरुड! इस प्रकार मैंने यथाप्रसंग मृत्युका

स्वरूप सुना दिया। अब आपके उस दूसरे प्रश्नका उत्तर जो बड़ा ही विचित्र है, उसे सुना रहा हूँ। हे पक्षिराज! पूर्वजन्ममें किये गये भाँति-भाँतिके भोगोंको भोगता हुआ प्राणी यहाँ भ्रमण करता रहता है। देव, असुर और यक्ष आदि योनियाँ भी प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दुःखदायिनी हैं। हे खगेश्वर! प्राणीको कर्मका फल तारतम्यसे इन योनियोंमें प्राप्त होता है। अब मैं इसी प्रसंगमें आपसे कर्मविपाकका वर्णन भी करूँगा।

हे गरुड! प्राणी अपने सत्कर्म एवं दुष्कर्मके फलोंकी विविधताका अनुभव करनेके लिये इस संसारमें जन्म लेता है। जो महापातकी ब्रह्महत्यादि महापातकजन्य अत्यन्त कष्टकारी रौरवादि नरकलोकोंका भोग भोगकर कर्मक्षयके बाद पुनः इस पृथ्वीपर जिन लक्षणोंसे युक्त होकर जन्म लेते हैं, उन लक्षणोंको आप मुझसे सुनें।

हे खगेन्द्र! ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले महापातकीको मृग, अश्व, सूकर और ऊँटकी योनि प्राप्त होती है। स्वर्णकी चोरी करनेवाला कृमि, कीट और पतंग-योनिमें जाता है, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवालेका जन्म क्रमशः—तृण, लता और गुल्म-योनिमें होता है। ब्रह्मघाती क्षयरोगका रोगी, मद्यपी विकृतदन्त, स्वर्णचोर कुनखी और गुरुपत्नीगामी चर्मरोगी होता है। जो मनुष्य जिस प्रकारके महापातकियोंका साथ करता है, उसे भी उसी प्रकारका रोग होता है। प्राणी एक वर्षपर्यन्त पतित व्यक्तिका साथ करनेसे स्वयं पतित हो जाता है। परस्पर वार्तालाप करने तथा स्पर्श, निःश्वास, सहयान, सहभोज, सहआसन, याजन, अध्यापन तथा योनि-सम्बन्धसे मनुष्योंके शरीरमें पाप संक्रमित हो जाते हैं*। दूसरेकी स्त्रीके साथ सहवास करने और ब्राह्मणका धन चुरानेसे मनुष्यको दूसरे जन्ममें अरण्य तथा निर्जन देशमें रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनि प्राप्त होती है। रत्नकी चोरी करनेवाला निकृष्ट योनिमें जन्म लेता है। जो मनुष्य वृक्षके पत्तोंकी और गन्धकी चोरी करता है, उसे छछुंदरकी योनिमें जाना पड़ता है। धान्यकी चोरी करनेवाला चूहा, यान चुरानेवाला ऊँट तथा फलकी चोरी करनेवाला बंदरकी योनिमें जाता है। बिना मन्त्रोच्चारके भोजन करनेपर कौआ, घरका सामान चुरानेवाला गिद्ध, मधुकी चोरी करनेपर मधुमक्खी, फलकी चोरी करनेपर गिद्ध, गायकी चोरी करनेपर गोह और अग्निकी चोरी करनेपर बगुलेकी योनि प्राप्त होती है। स्त्रियोंका वस्त्र चुरानेपर श्वेत कुष्ठ और रसका अपहरण करनेपर भोजन आदिमें अरुचि हो जाती है। काँसेकी चोरी करनेवाला हंस, दूसरेके धनका हरण करनेवाला अपस्मार रोगसे ग्रस्त होता है तथा गुरुहन्ता क्रूरकर्मा बौना और धर्मपत्नीका परित्याग करनेवाला शब्दवेधी होता है। देवता और ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला, दूसरेका मांस खानेवाला पाण्डुरोगी होता है। भक्ष्य और अभक्ष्यका विचार न रखनेवाला अगले जन्ममें गण्डमाला नामक महारोगसे पीड़ित होता है। जो दूसरेकी धरोहरका अपहरण करता है, वह काना होता है। जो स्त्रीके बलपर इस संसारमें जीवन-यापन करता है, वह दूसरे जन्ममें लँगड़ा होता है। जो मनुष्य पतिपरायणा अपनी पत्नीका परित्याग करता है, वह दूसरे जन्ममें दुर्भाग्यशाली होता है। अकेला मिष्टान्न खानेवाला वातगुल्मका रोगी होता है। कोई व्यक्ति यदि किसी ब्राह्मणपत्नीके साथ सहवास करे तो शृगाल, शय्याका हरण करनेवाला दरिद्र, वस्त्रका हरण करनेवाला पतंग होता है। मात्सर्य-दोषसे युक्त होनेपर प्राणी जन्मान्ध, दीपक

* संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानाशनासनात्। याजनाध्यापनाद्यौनात् पापं संक्रमते नृणाम्॥ (२।६५)

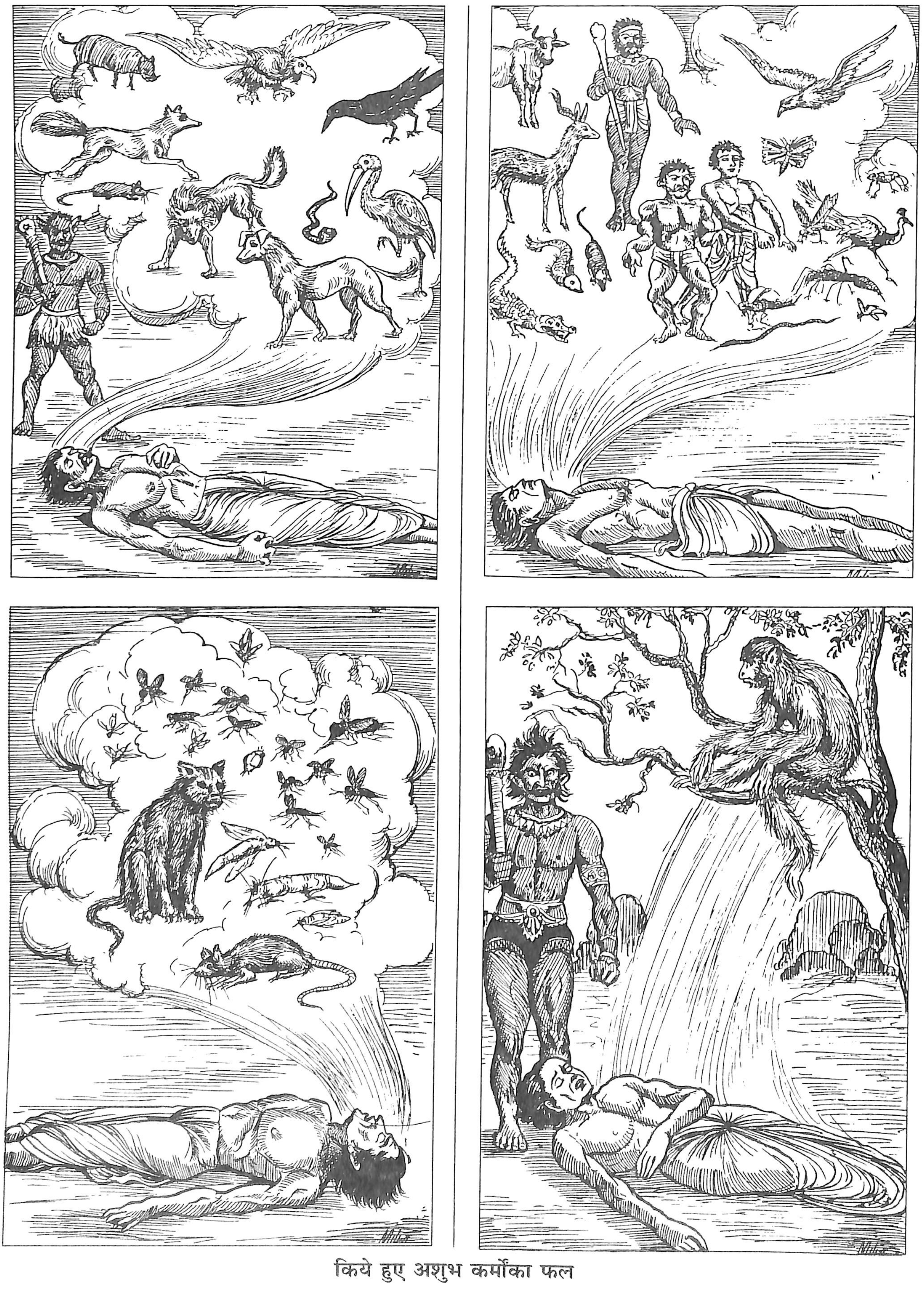

किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

चुरानेवाला कपाली होता है। मित्रकी हत्या करनेवाला उल्लू होता है। पिता आदि श्रेष्ठ जनोंकी निन्दा करनेसे प्राणी क्षयका रोगी होता है। असत्यवादी हकला कर बोलनेवाला और झूठी गवाही देनेवाला जलोदर-रोगसे पीड़ित रहता है।

विवाहमें विघ्न पैदा करनेवाला पापी मच्छरकी योनिमें जाता है। यदि कदाचित् उसे पुनः मनुष्यकी योनि प्राप्त भी होती है तो उसका ओठ कटा होता है। जो मनुष्य चतुष्पथपर मल-मूत्रका परित्याग करता है, वह वृषल (अपशूद्र) होता है। कन्याको दूषित करनेवाले प्राणीको मूत्रकृच्छ्र और नपुंसकताका विकार होता है। जो वेद बेचनेका अधर्म करता है, वह व्याघ्र होता है। अयाज्यका यज्ञ करानेवालेको सुअरकी योनि प्राप्त होती है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाला व्यक्ति बिलौटा और वनोंको जलानेवाला खद्योत (जुगनू) होता है। बासी एवं निषिद्ध भोजन करनेवालेको कृमि तथा मात्सर्य-दोषसे युक्त प्राणीको भ्रमरकी योनि मिलती है। घर आदिमें आग लगानेवाला कोढ़ी और अदत्तका आदान* करनेसे मनुष्य बैल होता है। गायोंकी चोरी करनेपर सर्प तथा अन्नकी चोरी करनेपर प्राणीको अजीर्ण रोग होता है। जलकी चोरी करनेपर मछली, दूधकी चोरी करनेसे बलाकिका और ब्राह्मणको दानमें बासी भोजन देनेसे कुबड़ेकी योनि प्राप्त होती है। हे पक्षिन्! जो मनुष्य फल चुराता है, उसकी संतति मर जाती है। बिना किसीको दिये अकेले भोजन करनेवाला व्यक्ति दूसरे जन्ममें संतानहीन होता है। संन्यासाश्रमका परित्याग करनेवाला (आरूढ़पतित) पिशाच होता है। जलकी चोरी करनेसे चातक और पुस्तककी चोरी करनेसे प्राणी जन्मान्ध होता है। ब्राह्मणोंको देनेकी प्रतिज्ञा करके जो नहीं देते हैं, उन्हें सियारकी योनि प्राप्त होती है। झूठी निन्दा करनेवाले लोगोंको कछुएकी योनिमें जाना पड़ता है। फल बेचनेवाला दूसरे जन्ममें भाग्यहीन होता है। जो ब्राह्मण शूद्रकन्यासे विवाह कर लेता है, वह भेड़ियेकी योनि प्राप्त करता है। अग्निको पैरसे स्पर्श करनेपर प्राणी बिलौटा और जीवोंका मांस खानेपर रोगी होता है। जो मनुष्य जलके स्रोतको विनष्ट करते हैं, वे मछली होते हैं। जो लोग भगवान् हरिकी कथा और साधुजनोंकी प्रशस्ति नहीं सुनते, उन मनुष्योंको कर्णमूल रोग होता है। जो व्यक्ति परायेके मुँहमें स्थित अन्नका अपहरण करता है, वह मन्दबुद्धि होता है।

जो देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले पात्रादिक उपकरणोंका अपहारक है, उसे गण्डमाला-रोग होता है। दम्भके वशीभूत होकर जो प्राणी धर्माचरण करता है, उसको गजचर्मका रोग होता है। विश्वासघाती मनुष्यके शरीरमें शिरोऽर्ति-रोग होता है। शिवके धन और निर्माल्यका सेवन करनेवाला व्यक्ति शिश्नपीड़ासे ग्रसित रहता है। स्त्रियाँ पापकी भागिनी होती हैं और इन्हें उन्हीं जन्तुओंकी भार्या होना पड़ता है। उक्त कर्मोंके कुफलसे प्राप्त नरकका भोग करनेके बाद मनुष्य इन्हीं सब योनियोंमें प्रविष्ट होता है, ऐसा निश्चय समझना चाहिये।

हे खगपते! जिस प्रकार इस संसारमें नाना भाँतिके द्रव्य विद्यमान हैं, उसी प्रकार प्राणियोंकी विभिन्न जातियाँ भी हैं। वे सभी अपने-अपने विभिन्न कर्मोंके प्रतिफल-रूपमें सुख-दुःख एवं नाना योनियोंका भोग करते हैं। तात्पर्य यही है कि प्राणीको शुभ कर्म करनेसे शुभ फलकी प्राप्ति और अशुभ कर्म करनेसे अशुभ फलकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय २)

* यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तुको देना नहीं चाहे तब भी उसको उससे ले लेनेवाला अदत्तादान कहा जाता है।

# नरकोंका स्वरूप, नरकोंमें प्राप्त होनेवाली विविध यातनाएँ तथा नरकमें गिरानेवाले कर्म एवं जीवकी शुभाशुभ गति

**श्रीसूतजीने कहा**—पूछे गये अपने प्रश्नोंका सम्यक् उत्तर सुनकर पक्षिराज गरुड अतिशय आह्लादित हो भगवान् विष्णुसे नरकोंके स्वरूपको जाननेकी इच्छा प्रकट की।

**गरुडने कहा**—हे उपेन्द्र! आप मुझे उन नरकोंका स्वरूप और भेद बतायें, जिनमें जाकर पापीजन अत्यधिक दु:ख भोगते हैं।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे अरुणके छोटे भाई गरुड! नरक तो हजारोंकी संख्यामें हैं। सभीको विस्तृत रूपमें बताना सम्भव नहीं है। अत: मैं मुख्य-मुख्य नरकोंको बता रहा हूँ।

हे पक्षिराज! तुम मुझसे यह जान लो कि 'रौरव' नामक नरक अन्य सभीकी अपेक्षा प्रधान है। झूठी गवाही देनेवाला और झूठ बोलनेवाला व्यक्ति रौरव नरकमें जाता है। इसका विस्तार दो हजार योजन है। जाँघभरकी गहराईमें वहाँ दुस्तर गड्ढा है। दहकते हुए अंगारोंसे भरा हुआ वह गड्ढा पृथ्वीके समान बराबर

(समतल भूमि-जैसा) दीखता है। तीव्र अग्निसे वहाँकी भूमि भी तप्ताङ्गार-जैसी है। उसमें यमके दूत पापियोंको डाल देते हैं। उस जलती हुई अग्निसे संतप्त होकर पापी उसीमें इधर-उधर भागता है। उसके पैरमें छाले पड़ जाते हैं, जो फूटकर बहने लगते हैं। रात-दिन वह पापी वहाँ पैर उठा-उठाकर चलता है। इस प्रकार वह जब हजार योजन उस नरकका विस्तार पार कर लेता है, तब उसे पापकी शुद्धिके लिये उसी प्रकारके दूसरे नरकमें भेजा जाता है।

हे पक्षिन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें रौरव नामक प्रथम नरककी बात बता दी। अब तुम 'महारौरव' नामक नरककी बात सुनो। यह नरक पाँच हजार योजनमें फैला हुआ है। वहाँकी भूमि ताँबेके समान वर्णवाली है। उसके नीचे अग्नि जलती रहती है। वह भूमि विद्युत्-प्रभाके समान कान्तिमान् है। देखनेमें वह पापीजनोंको महाभयंकर प्रतीत होती है। यमदूत पापी व्यक्तिके हाथ-पैर बाँधकर उसे उसीमें लुढ़का देते हैं और वह लुढ़कता हुआ उसमें चलता है। मार्गमें कौआ,

बगुला, भेड़िया, उलूक, मच्छर और बिच्छू आदि जीव-जन्तु क्रोधातुर होकर उसे खानेके लिये तत्पर रहते हैं। वह उस जलती हुई भूमि एवं भयंकर जीव-जन्तुओंके आक्रमणसे इतना संतप्त हो जाता है कि उसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है। वह घबड़ाकर चिल्लाने लगता है तथा बार-बार उस कष्टसे बेचैन हो उठता है। उसको वहाँ कहींपर भी शान्ति नहीं प्राप्त होती है। इस प्रकार उस नरकलोकके कष्टको भोगते हुए पापीके जब हजारों वर्ष बीत जाते हैं, तब कहीं जाकर मुक्ति प्राप्त होती है।

इसके बाद जो नरक है उसका नाम 'अतिशीत' है। वह स्वभावत: अत्यन्त शीतल है। महारौरव नरकके समान ही उसका भी विस्तार बहुत लंबा है। वह गहन अन्धकारसे व्याप्त रहता है। असह्य कष्ट देनेवाले यमदूतोंके द्वारा पापीजन लाकर यहाँ बाँध दिये जाते हैं। अत: वे एक-दूसरेका आलिंगन करके वहाँकी भयंकर ठंडकसे बचनेका प्रयास करते हैं। उनके दाँतोंमें कटकटाहट होने लगती है। हे पक्षिराज! उनका शरीर वहाँकी उस ठंडकसे काँपने लगता है। वहाँ भूख-प्यास बहुत अधिक लगती है। इसके अतिरिक्त भी अनेक कष्टोंका सामना उन्हें वहाँ करना पड़ता है। वहाँ हिमखण्डका वहन करनेवाली वायु चलती है, जो शरीरकी हड्डियोंको तोड़ देती है। वहाँके

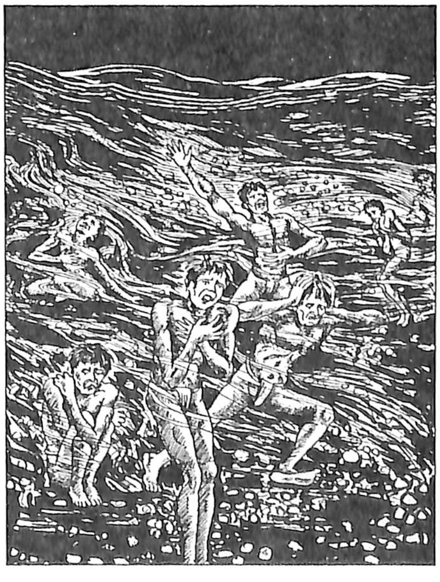

प्राणी भूखसे त्रस्त होकर मज्जा, रक्त और गल रही हड्डियोंको खाते हैं। परस्पर भेंट होनेपर वे सभी पापी एक-दूसरेका आलिंगन कर भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार उस तमसावृत नरकमें मनुष्यको बहुत-से कष्ट झेलने पड़ते हैं।

हे पक्षिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति अन्यान्य असंख्य पाप करता है, वह इस नरकके अतिरिक्त 'निकृन्तन'

नामसे प्रसिद्ध दूसरे नरकमें जाता है। हे खगेन्द्र! वहाँ अनवरत कुम्भकारके चक्रके समान चक्र चलते रहते हैं, जिनके ऊपर पापीजनोंको खड़ा करके यमके अनुचरोंके द्वारा अँगुलिमें स्थित कालसूत्रसे उनके शरीरको पैरसे लेकर शिरोभागतक छेदा जाता है। फिर भी उनका प्राणान्त नहीं होता। इसमें शरीरके सैकड़ों भाग टूट-टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और पुन: इकट्ठे हो जाते हैं। इस प्रकार यमदूत पापकर्मियोंको वहाँ हजारों वर्षतक चक्कर लगवाते रहते हैं। जब सभी पापोंका विनाश हो जाता है, तब कहीं जाकर उन्हें उस नरकसे मुक्ति प्राप्त होती है।

'अप्रतिष्ठ' नामका एक अन्य नरक है। वहाँ जानेवाले प्राणी असह्य दु:खका भोग भोगते हैं। वहाँ पापकर्मियोंके दु:खके हेतुभूत चक्र और रहट

लगे रहते हैं। जबतक हजारों वर्ष पूरे नहीं हो जाते, तबतक वह रुकता नहीं। जो लोग उस चक्रपर बाँधे जाते हैं, वे जलके घटकी भाँति उसपर

घूमते रहते हैं। पुनः रक्तका वमन करते हुए उनकी आँतें मुखकी ओरसे बाहर आ जाती हैं और नेत्र आँतोंमें घुस जाते हैं। प्राणियोंको वहाँ जो दुःख प्राप्त होते हैं, वे बड़े ही कष्टकारी हैं।

हे गरुड! अब 'असिपत्रवन' नामक दूसरे नरकके विषयमें सुनो। यह नरक एक हजार योजनमें फैला हुआ है। इसकी सम्पूर्ण भूमि अग्निसे व्याप्त होनेके कारण अहर्निश जलती रहती है। इस भयंकर नरकमें सात-सात सूर्य अपनी सहस्त्र-सहस्त्र रश्मियोंके साथ सदैव तपते रहते हैं, जिनके संतापसे वहाँके पापी हर क्षण जलते ही रहते हैं। इसी नरकके मध्य एक चौथाई भागमें 'शीतस्निग्धपत्र' नामका वन है। हे पक्षिश्रेष्ठ! उसमें वृक्षोंसे टूटकर गिरे फल और पत्तोंके ढेर लगे रहते हैं। मांसाहारी बलवान् कुत्ते उसमें विचरण करते रहते हैं। वे बड़े-बड़े मुखवाले, बड़े-बड़े दाँतोंवाले तथा व्याघ्रकी तरह महाबलवान् हैं। अत्यन्त शीत एवं छायासे व्याप्त उस नरकको देखकर भूख-प्याससे पीडित प्राणी दुःखी होकर करुण क्रन्दन करते हुए वहाँ जाते हैं। तापसे तपती

हुई पृथ्वीकी अग्निसे पापियोंके दोनों पैर जल जाते हैं, अत्यन्त शीतल वायु बहने लगती है, जिसके कारण उन पापियोंके ऊपर तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाले पत्ते गिरते हैं। जलते हुए अग्नि-समूहसे युक्त भूमिमें पापीजन छिन्न-भिन्न होकर गिरते हैं। उसी समय वहाँके रहनेवाले कुत्तोंका आक्रमण भी उन पापियोंपर होने लगता है। शीघ्र ही वे कुत्ते रोते हुए उन पापियोंके शरीरके मांसको खण्ड-खण्ड करके खा जाते हैं।

हे तात! असिपत्रवन नामक नरकके विषयको मैंने बता दिया। अब तुम महाभयानक 'तप्तकुम्भ' नामवाले नरकका वर्णन मुझसे सुनो—इस नरकमें चारों ओर फैले हुए अत्यन्त गरम-गरम घड़े हैं। उनके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित रहती है, वे उबलते हुए तेल और लौहके चूर्णसे भरे रहते हैं। पापियोंको ले जाकर उन्हींमें औंधे मुख डाल दिया जाता है। गलती हुई मज्जारूपी जलसे युक्त उसीमें फूटते हुए अङ्गोंवाले पापी काढ़ाके समान बना

दिये जाते हैं। तदनन्तर भयंकर यमदूत नुकीले

हथियारोंसे उन पापियोंकी खोपड़ी, आँखों तथा हड्डियोंको छेद-छेदकर नष्ट करते हैं। गिद्ध बड़ी तेजीसे वहाँ आकर उनपर झपट्टा मारते हैं। उन उबलते हुए पापियोंको अपनी चोंचसे खींचते हैं और फिर उसीमें छोड़ देते हैं। उसके बाद यमदूत उन पापियोंके सिर, स्नायु, द्रवीभूत मांस, त्वचा आदिको जल्दी-जल्दी करछुलसे उसी तेलमें घूमाते हुए उन महापापियोंको काढ़ा बना डालते हैं।

हे पक्षिन्! यह तप्तकुम्भ-जैसा है, इस बातको विस्तारपूर्वक मैंने तुम्हें बता दिया। सबसे पहले नरकको रौरव और दूसरे उसके बादवालेको महारौरव नरक कहा जाता है। तीसरे नरकका नाम अतिशीत एवं चौथेका नाम निकृन्तन है। पाँचवाँ नरक अप्रतिष्ठ, छठा असिपत्रवन एवं सातवाँ तप्तकुम्भ है। इस प्रकार ये सात प्रधान नरक हैं। अन्य भी बहुत-से नरक सुने जाते हैं, जिनमें पापी अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं। यथा—रोध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोहन, कृमि, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, विषञ्जन, अधःशिर, पूयवह, रुधिरान्ध, विड्भुज, वैतरणी, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदंश, अभोजन, तमस्, कालसूत्र, लौहतापी, अभिद, अप्रतिष्ठ तथा अवीचि आदि—ये सभी नरक यमके राज्यमें स्थित हैं। पापीजन पृथक्-पृथक् रूपसे उनमें जाकर गिरते हैं। रौरव आदि सभी नरकोंकी अवस्थिति इस पृथ्वीलोकसे नीचे मानी गयी है। जो मनुष्य गौकी हत्या, भ्रूणहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रोध' नामक नरकमें गिरता है। जो ब्रह्मघाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करता है, वह 'सूकर' नामके नरकमें गिरता है। क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकमें जाता है।

जो मनुष्य ब्रह्महत्या एवं गुरुपत्नी तथा बहनके साथ सहवास करनेकी दुश्चेष्टा करता है, वह 'तप्तकुम्भ' नामक नरकमें जाता है। जो असत्य-सम्भाषण करनेवाले राजपुरुष हैं, उनको भी उक्त नरककी ही प्राप्ति होती है। जो प्राणी निषिद्ध पदार्थोंका विक्रेता, मदिराका व्यापारी है तथा स्वामिभक्त सेवकका परित्याग करता है, वह 'तप्तलौह' नामक नरकको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति कन्या या पुत्रवधूके साथ सहवास करनेवाला है, जो वेद-विक्रेता और वेदनिन्दक है, वह अन्तमें 'महाज्वाल' नामक नरकका वासी होता है। जो गुरुका अपमान करता है, शब्दबाणसे उनपर प्रहार करता है तथा अगम्या स्त्रीके साथ मैथुन करता है, वह 'शबल' नामक नरकमें जाता है।

शौर्य-प्रदर्शनमें जो वीर मर्यादाका परित्याग करता है, वह 'विमोहन' नामक नरकमें गिरता है। जो दूसरेका अनिष्ट करता है, उसे 'कृमिभक्ष' नामक नरककी प्राप्ति होती है। देवता और ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाला प्राणी 'लालाभक्ष' नरकमें जाता है। जो परायी धरोहरका अपहर्ता है तथा जो

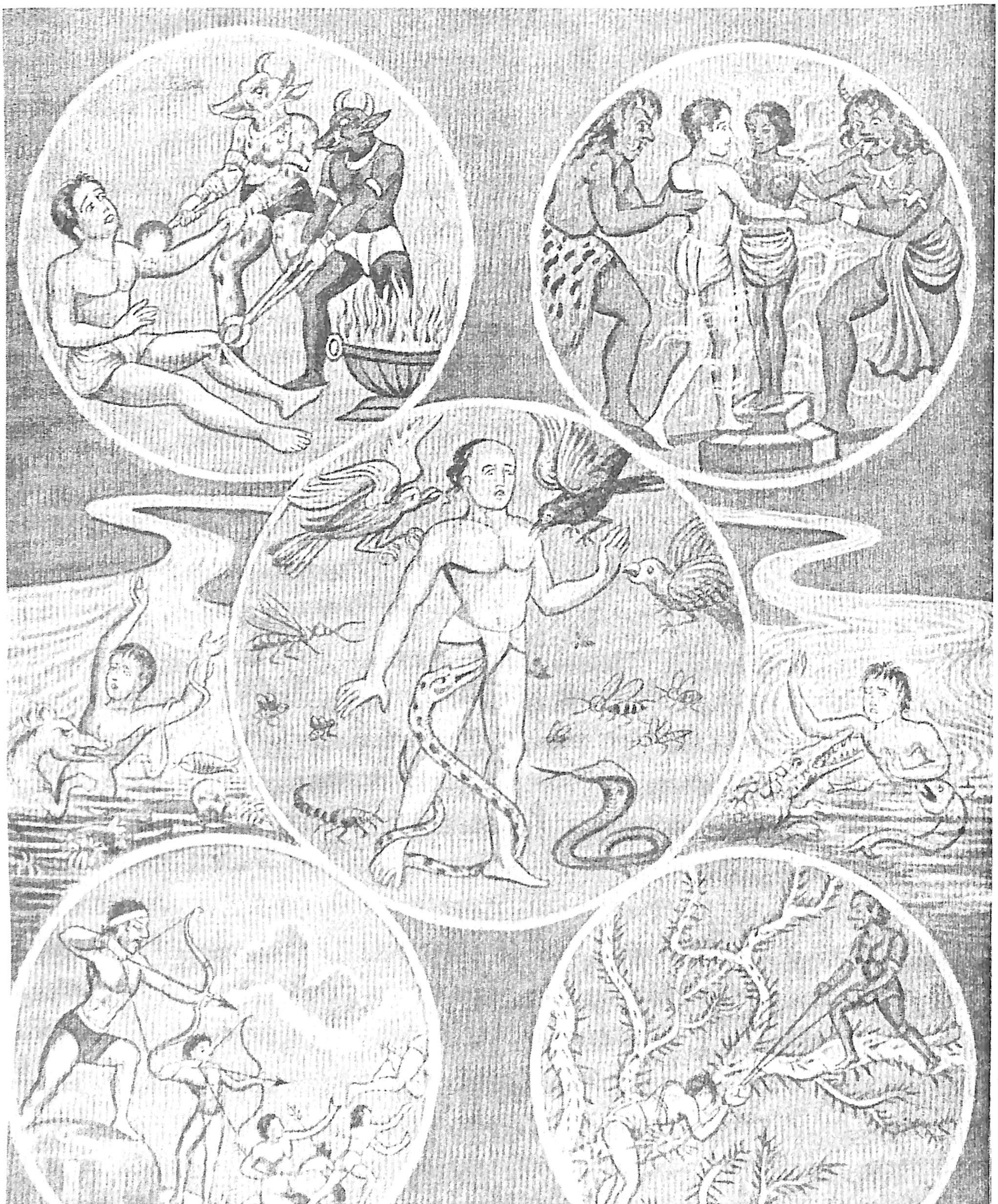

सन्दंश, तप्तसूर्मि, वैतरणी, अन्धकूप, प्राणरोध और वज्रकण्टक-शाल्मली नरक

बाग-बगीचोंमें आग लगाता है, उसे 'विषञ्जन' नामक नरककी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य असत्-पात्रसे दान लेता है तथा असत् प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्ययाजक और जो नक्षत्रसे जीविकोपार्जन करता है, वह मनुष्य 'अध:शिर' नरकमें जाता है। जो मदिरा, मांस आदि पदार्थोंका विक्रेता है, वह 'पूयवह' नामक घोर नरकमें गिरता है। जो कुक्कुट, बिल्ली, सुअर, पक्षी, मृग, भेंड़को बाँधता है, वह भी उसी प्रकारके नरकमें जाता है। जो गृहदाही है, जो विषदाता है, जो कुण्डाशी है, जो सोमविक्रेता है, जो मद्यपी है, जो मांसभोजी है तथा जो पशुहन्ता है, वह व्यक्ति 'रुधिरान्ध' नामक नरकमें जाता है, ऐसा विद्वानोंका अभिमत है। एक ही पंक्तिमें बैठे हुए किसी प्राणीको धोखा देकर जो लोग विष खिला देते हैं, उन सभीको 'विड्भुज' नामक घोर नरक प्राप्त होता है। मधु निकालनेवाला मनुष्य 'वैतरणी' और क्रोधी 'मूत्रसंज्ञक' नामक नरकमें जाता है। अपवित्र और क्रोधी व्यक्ति 'असिपत्रवन' नामक नरकमें जाता है। मृगोंका शिकार करनेवाला व्याध 'अग्निज्वाल' नामक नरकमें जाता है, जहाँ उसके शरीरको नोच-नोचकर कौवे खाते हैं।

यज्ञकर्ममें दीक्षित होनेपर जो व्रतका पालन नहीं करता, उसे उस पापसे 'संदंश' नरकमें जाना पड़ता है। यदि स्वप्नमें भी संन्यासी या ब्रह्मचारी स्खलित हो जाते हैं तो वे 'अभोजन' नामक नरकमें जाते हैं। जो लोग क्रोध और हर्षसे भरकर वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध कर्म करते हैं, उन सबको नरकलोककी प्राप्ति होती है।

सबसे ऊपर भयंकर गर्मीसे संतप्त रौरव नामक नरक है। उसके नीचे अत्यन्त दु:खदायी महारौरव है। उस नरकसे नीचे शीतल और उस नरकके बाद नीचे 'तामस' नरक माना गया है। इसी प्रकार बताये गये क्रमसे अन्य नरक भी नीचे ही हैं।

इन नरकलोकोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों नरक हैं, जिनमें पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता है, विदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताड़ित किया जाता है—ऐसे नरकोंमें एक दिन सौ वर्षके समान होता है। सभी नरकोंसे भोग भोगनेके बाद पापी तिर्यक्-योनिमें जाता है। तत्पश्चात् उसको कृमि, कीट, पतंग, स्थावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। तदनन्तर मनुष्य जंगली हाथी आदिकी योनियोंमें जाकर गौकी योनिमें पहुँचता है। हे गरुड! गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर मृग, शरभ और चमरी—ये छ: योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनमें जीवात्माको कष्ट भोगना पड़ता है। उन सभी योनियोंको पाकर प्राणी मनुष्य-योनिमें आता है और कुबड़ा, कुत्सित, वामन, चाण्डाल और पुल्कश आदि नर-योनियोंमें जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित जीव बार-बार गर्भमें जाता है और मृत्युको प्राप्त होता है। उन सभी पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय आदिकी आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्रत्वके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्यगति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे सुन्दर-सुन्दर गीत गाते, वाद्य बजाते और नृत्यादि करते हुए प्रसन्नचित्त गन्धर्वोंके साथ, अच्छे-से-अच्छे हार, नूपुर आदि नाना प्रकारके आभूषणोंसे युक्त, चन्दन आदिकी दिव्य सुगन्ध

और पुष्पोंके हारसे सुवासित एवं अलंकृत चमचमाते हुए विमानमें स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्य-समाप्तिके पश्चात् जब वे वहाँसे पुनः पृथ्वीपर आते हैं तो राजा अथवा महात्माओंके घरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं। समस्त भोगोंको प्राप्त करके पुनः स्वर्गको प्राप्त करते हैं अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर दुःख भोगते हैं।

मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीका मरना तो निश्चित है। पापियोंका जीव अधोमार्गसे निकलता है। तदनन्तर पृथ्वीतत्त्वमें पृथ्वी, जलतत्त्वमें जल, तेजतत्त्वमें तेज, वायुतत्त्वमें वायु, आकाशतत्त्वमें आकाश तथा सर्वव्यापी मन चन्द्रमें जाकर विलीन हो जाता है। हे गरुड! शरीरमें काम, क्रोध एवं पञ्चेन्द्रियाँ हैं। इन सभीको शरीरमें रहनेवाले चोरकी संज्ञा दी गयी है। काम, क्रोध और अहंकार नामक विकार भी उसीमें रहनेवाले चोर हैं। उन सभीका नायक मन है। इस शरीरका संहार करनेवाला काल है, जो पाप और पुण्यसे जुड़ा रहता है। जिस प्रकार घरके जल जानेपर व्यक्ति अन्य घरकी शरण लेता है, उसी प्रकार पञ्चेन्द्रियोंसे युक्त जीव इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंके साथ शरीरका परित्याग कर नये शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। शरीरमें रक्त-मज्जादि सात धातुओंसे युक्त यह षाट्कौशिक शरीर है। सभी प्राण, अपान आदि पञ्च वायु, मल-मूत्र, व्याधियाँ, पित्त, श्लेष्म, मज्जा, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र और स्नायु—ये सभी शरीरके साथ ही अग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं।

हे तार्क्ष्य! प्राणियोंके विनाशको मैंने तुम्हें बता दिया। अब उनके इस शरीरका जन्म पुनः कैसे होता है, उसको मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

यह शरीर नसोंसे आबद्ध, श्रोत्रादिक इन्द्रियोंसे युक्त और नवद्वारोंसे समन्वित है। यह सांसारिक विषय-वासनाओंके प्रभावसे व्याप्त, काम-क्रोधादि विकारसे समन्वित, राग-द्वेषसे परिपूर्ण तथा तृष्णा नामक भयंकर चोरसे युक्त है। यह लोभरूपी जालमें फँसा हुआ और मोहरूपी वस्त्रसे ढका हुआ है। यह मायासे भलीभाँति आबद्ध एवं लोभसे अधिष्ठित पुरके समान है। सभी प्राणियोंका शरीर इनसे व्याप्त है। जो लोग अपनी आत्माको नहीं जानते हैं, वे पशुओंके समान हैं।

हे गरुड! चौरासी लाख योनियाँ हैं और उद्भिज्ज (पृथ्वीमें अंकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ), स्वेदज (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त है।

(अध्याय ३)

# आसन्नमृत्यु-व्यक्तिके निमित्त किये जानेवाले प्रायश्चित्त, दस दान आदि विविध कर्म, मृत्युके बाद किये जानेवाले कर्म, षट्पिण्डदान, दाह-संस्कारसे पूर्व किये जानेवाले कर्म, दाह-संस्कारके बाद अस्थिसंचयनादि कर्म तथा गृहप्रवेशके समयके कर्म, दुर्मृत्युकी गति, नारायण-बलिका विधान, पुत्तलदाहविधि तथा पञ्चक-मृत्युके कृत्य

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! जानमें या अनजानमें मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोंकी शुद्धिके लिये उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो विद्वान् है वह पहले पवित्र करनेवाले भस्म आदि दस स्नान करे और पापोंके प्रायश्चित्तके रूपमें शास्त्रोक्त कृच्छ्रादि व्रत अथवा तत्प्रतिनिधिभूत गोदानादि क्रिया करे। यदि मनुष्य उनमें अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा ही सही, यदि आधा भी न हो तो उसका ही आधा सही और नहीं तो उस आधेका भी आधा उसे कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। तत्पश्चात् यथासामर्थ्य दस प्रकारके दान देनेका विधान है, उसको सुनो।

गो, भूमि, तिल, हिरण्य, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड़, रजत और लवण—ये दस दान हैं—

**गोभूमितिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडास्तथा।**
**रजतं लवणं चैव दानानि दश वै विदुः॥**

(४।४)

यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे अत्यन्त दुर्गन्धदायक मवादादि तथा रक्तादिसे परिव्याप्त हैं। अतः उस मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको पार करनेके लिये वैतरणी गौका दान करना चाहिये। जो गौ सर्वाङ्गमें काली हो, जिसके स्तन भी काले हों, उसे वैतरणी गौ माना गया है*।

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एकसे बढ़कर एक हैं। इन आठ दानोंको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये—

**तिला लोहं हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा।**
**सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥**
**एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये।**

(४।७-८)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डलु, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ—ये आठ प्रकारके पद हैं—

**छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः।**
**आसनं भाजनं भोज्यं पदं चाष्टविधं स्मृतम्॥**

(४।९)

---

* नदीं वैतरणीं तर्तुं दद्याद्वैतरणीं च गाम्। कृष्णस्तनी सकृष्णाङ्गी सा वै वैतरणी स्मृता॥ (४।६)

तिलपात्र, घृतपात्र, शय्या, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अश्व, रथ, भैंस, भोजन, वस्त्रका दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये।

हे पक्षिराज! इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायश्चित्त कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, वैतरणी गौ एवं अष्टदान कर चुका है, तिलसे भरा पूर्ण पात्र, घीसे भरा हुआ पात्र, शय्यादान और विधिवत् पददान करता है तो वह नरकरूपी गर्भमें नहीं आता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

**प्रायश्चित्तं कृतं येन दश दानान्यपि क्षितौ॥**
**दानं गोर्वैतरण्याश्च दानान्यष्टौ तथापि वा।**
**तिलपात्रं सर्पिःपात्रं शय्यादानं तथैव च॥**
**पददानं च विधिवन्नासौ निरयगर्भगः।**

(४।१२—१४)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण दान करनेकी इच्छा रखते हैं, क्योंकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, इस पृथ्वीपर मरणासन्न प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हों तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाथसे दिलवाना चाहिये; क्योंकि यह दान उसके लिये स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान देता है, परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है। वहाँ उसके आगे रखा हुआ मिलता है। हे पक्षिन्! जिसने यथाविधि अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, वही पुरुष है। वही अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है।

हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है। पहले कहे गये तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। यमलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अतः छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली छाया प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता है, वह 'असिपत्रवन'के मार्गको घोड़ेपर सवार होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाभयंकर हैं। काले एवं पीले वर्णवाले उन दूतोंको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषणादिका दान करनेसे वे यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते हैं। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंका विनाश कर देता है। मनुष्य घृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोक प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंसे युक्त शय्याका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अप्सराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अमरावतीमें क्रीडा करके इन्द्रलोकके बाद गिरकर पुनः इस पृथ्वीलोकमें आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे, दोषरहित जवान घोड़ेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश! दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोंका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार घोड़ोंवाले रथका दान दे करके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको

दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली, सुन्दर जघन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित भैंसका दान देता है तो वह परलोकमें जाकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यको परलोकगमनके मार्गमें वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोभासम्पन्न शरीर और उस लोकके वैभवसे सम्पन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, उसके वंशका कभी विनाश नहीं होता है और वह स्वयं स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोंमें प्राणीकी श्रद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई दानकी अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें श्रेष्ठता और लघुता आती है।

इस लोकमें जिस व्यक्तिने जल एवं रसका दान किया है, वह आपद्कालमें आह्लादका अनुभव करता है। जिस मनुष्यने श्रद्धापूर्वक इस संसारमें अन्न-दान दिया है, वह परलोकमें अन्न-भक्षणके बिना भी वही तृप्ति प्राप्त करता है, जो उत्तमोत्तम अन्नके भक्षणसे प्राप्त होती है। मृत्युके संनिकट आ जानेपर यदि मनुष्य यथाविधि संन्यासाश्रमको ग्रहण कर लेता है तो वह पुनः इस संसारमें नहीं आता, अपितु उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमें ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है तथा यदि प्राणी मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता ही है, साथ ही उसको तीर्थतक ले जानेवाले लोग पग-पगपर यज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करते हैं—

**आसन्नमरणो मर्त्यश्चेतीर्थं प्रतिनीयते।**
**तीर्थप्राप्तौ भवेन्मुक्तिर्म्रियते यदि मार्गगः।**
**पदे पदे क्रतुसमं भवेत्तस्य न संशयः॥**

(४।३८)

हे द्विज! मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य विधिवत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुनः इस संसारमें नहीं लौटता है।

हे खगेश! मृत्युके संनिकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य हैं? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जानकर उसके पुत्रादिक परिजनोंको चाहिये कि वे सभी शवको शुद्ध जलसे स्नान कराकर नवीन वस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका अनुलेप भी करें। उसके बाद जहाँ मृत्यु हुई है, उसी स्थानपर एकोद्दिष्ट श्राद्ध* करना चाहिये। दाहकर्मके पूर्व शवको दाहके योग्य बनानेके लिये ऊपर बताये गये कर्म अनिवार्य हैं। इस एकोद्दिष्ट श्राद्धमें आसन तथा प्रोक्षण क्रिया होनी चाहिये, किंतु आवाहन, अर्चन, पात्रालम्भन और अवगाहन—ये चार क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये। उस समय पिण्डदान अनिवार्य है, अन्नदानका संकल्प भी हो सकता है। रेखाकरण, प्रत्यवनेजन नहीं होता और दिये गये पदार्थके अक्षय्यकी कामना करनी चाहिये। अक्षय्योदक दान देना चाहिये। स्वधावाचन, आशीर्वाद और तिलक—ये तीन नहीं होने चाहिये। उड़दसे परिपूर्ण घट और लोहेकी दक्षिणा ब्राह्मणको प्रदान करनेका विधान है। तत्पश्चात् पिण्ड हिलाना चाहिये। किंतु उस समय आच्छादन, विसर्जन

* यहाँ एकोद्दिष्टका तात्पर्य मरणस्थानपर यथाविधान एक पिण्डके दानसे है।

तथा स्वस्तिवाचन—ये तीन वर्जित हैं। हे खगेश! मरणस्थान, द्वार, चत्वर, विश्रामस्थान, काष्ठ-चयन और अस्थि-संचयन—ये छ: पिण्डदानके स्थान हैं।

प्राणीकी मृत्यु जिस स्थानपर होती है, वहाँपर दिये जानेवाले पिण्डका नाम 'शव' है, उससे भूमिदेवताकी तुष्टि होती है। द्वारपर जो पिण्ड दिया जाता है उसे 'पान्थ' नामक पिण्ड कहते हैं। इस कर्मको करनेसे वास्तुदेवताको प्रसन्नता होती है। चत्वर अर्थात् चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डका दान करनेपर भूतादिक, गगनचारी देवतागण प्रसन्न होते हैं। शवके विश्राम भूमिमें 'भूत-संज्ञक' पिण्डका दान करनेसे दसों दिशाओंको संतुष्टि प्राप्त होती है। चितामें 'साधक' नामका और अस्थि-संचयनमें 'प्रेत-संज्ञक' पिण्ड दिया जाता है।

शवयात्राके समय पुत्रादिक परिजन तिल, कुश, घृत और ईंधन लेकर 'यमगाथा' अथवा वेदके 'यमसूक्त' का पाठ करते हुए श्मशानभूमिकी ओर जाते हैं। प्रतिदिन गौ, अश्व, पुरुष और बैल आदि चराचर प्राणियोंको अपनी ओर खींचते हुए यम संतुष्ट नहीं होते हैं, जिस प्रकार कि मद्य पीनेवाला संतुष्ट नहीं होता[1]।

'**ॐ अपेतेति०**' इस यमसूक्तका[2] अथवा 'यमगाथा'का पाठ शवयात्राके मार्गमें करना चाहिये। सभी बन्धु-बान्धवोंको दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानकी वनभूमिमें शवको ले जाना चाहिये। हे पक्षिन्! पूर्वोक्त विधिसे मार्गमें दो श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद श्मशानभूमिमें पहुँचकर धीरेसे शवको पृथ्वीपर उतारते हुए दक्षिण दिशाकी ओर सिर स्थापित कर चिताभूमिमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करना चाहिये। शव-दाहकी क्रियाके लिये पुत्रादिक परिजनोंको स्वयं तृण, काष्ठ, तिल और घृत आदि ले जाना चाहिये। शूद्रोंके द्वारा श्मशानमें पहुँचायी गयी वस्तुओंसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाता है। वहाँपर सभी कर्म अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। हे पक्षिराज! शास्त्रसम्मत विधिके अनुसार एक वेदीका निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतवस्त्र अर्थात् कफनको दो भागोंमें फाड़ कर उसके आधे भागसे उस शवको ढक दे और दूसरे भागको श्मशानमें निवास करनेवाले प्राणीके लिये भूमिपर ही छोड़ दे। उसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार मरे हुए व्यक्तिके हाथमें पिण्डदान करे। तदनन्तर शवके सम्पूर्ण शरीरमें घृतका लेप करना चाहिये।

हे खगेश! प्राणीकी मृत्यु और दाह-संस्कारके बीच पिण्डदानकी जो विधि है, अब उसे सुनो।

पहले बताये गये मृतस्थान, द्वार, चौराहे, विश्रामस्थान तथा काष्ठसंचयनस्थानमें प्रदत्त पाँच पिण्डोंका दान करनेसे शवमें की आहुति (अग्निदाह)-की योग्यता आ जाती है, अथवा किसी प्रकारके प्रतिबन्धके कारण उपर्युक्त पिण्ड नहीं दिये गये तो शव राक्षसोंके भक्षण योग्य हो जाता है। अत: स्वच्छ भूमिपर बनी हुई वेदीको भलीभाँति मार्जन, उपलेपनके द्वारा शुद्ध कर उसके ऊपर यथाविधि अग्निको स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर पुष्प-अक्षत आदिसे क्रव्याद नामवाले अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके दाह करे। दाहकार्यमें चाण्डालके घरकी अग्नि, चिताकी अग्निऔर पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये और निम्नलिखित मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करनी चाहिये—

**त्वं भूतकृज्जगद्योनिस्त्वं लोकपरिपालक:॥**
**उपसंहर तस्मात्त्वमेनं स्वर्गं नयामृतम्।**

(४।६४-६५)

---

१-अहरहर्नीयमानो गामश्वं पुरुषं वृषम्। वैवस्वतो न तृप्येत सुरया त्विव दुर्मति:॥ (४।५३) इसीका नाम यमगाथा है।

२-यजु०अ० ३५ 'यमसूक्त' कहलाता है।

'हे देव! आप भूतकृत् हैं। हे देव! आप इस संसारके योनिस्वरूप और सभीके पालनहार हैं। इसलिये आप इस शवका अपनेमें उपसंहार करके अमृतस्वरूप स्वर्गमें ले जाइये'।

इस प्रकार क्रव्याद देवकी विधिवत् पूजा कर शवको चिताकी अग्निमें जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग उस अग्निमें जल जाय तो उस समय क्रिया करनेवाले व्यक्तिको निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

**अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः॥**
**'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा[१]॥**

(४। ६६-६७)

अर्थात् हे देव! आप इसीसे उत्पन्न हुए हैं। यह शरीरी पुनः आपसे उत्पन्न हो। अमुक नामवाला यह प्राणी स्वर्गलोकको प्राप्त करे—ऐसा कहकर तिलमिश्रित आज्याहुति चितामें जल रहे शवके ऊपर छोड़े। उसके बाद भावविह्वल होकर उस आत्मीयजनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाह-क्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। हे खगराज! दाहकी पीड़ाकी शान्तिके लिये प्रेत-पिण्ड भी प्रदान करे। तत्पश्चात् वहाँपर गये हुए सभी लोग चिताकी प्रदक्षिणा कर कनिष्ठादि क्रमसे सूक्त जपते हुए स्नानके लिये जलाशय आदिपर जायँ। वहाँ पहुँचकर अपने वस्त्रोंका प्रक्षालनकर पुनः उन्हें ही पहनकर मृत व्यक्तिका ध्यान करते हुए उसे जल-दान देनेकी प्रतिज्ञा करें और मृत व्यक्तिने प्रेतरूपमें जल-दान देनेकी आज्ञा दी है—ऐसी भावना करते हुए पुनः जलमें मौन धारणपूर्वक प्रवेश करें और यथाधिकार एक वस्त्र होकर अपनी शिखा खोलकर तथा अपसव्य होकर स्नान करें। यह स्नान दक्षिणाभिमुख होकर '**अपनः शोशुचदघम्**'[२]इस वेदमन्त्रका उच्चारण करते हुए करना चाहिये। उस समय स्नान करनेवाले लोगोंको जलका आलोडन नहीं करना चाहिये। तत्पश्चात् किनारे आ करके अपनी शिखाको बाँध ले और सीधे कुशको दक्षिणाग्र करके दोनों हाथोंमें रखकर अञ्जलिसे तिलयुक्त जल लेकर पितृतीर्थसे दक्षिण दिशामें एक बार, तीन बार अथवा दस बार भूमिपर या पत्थरपर जल-दान करे। इस समय तिलाञ्जलि देनेवाले परिजनोंको कहना चाहिये कि 'हे अमुक गोत्रमें उत्पन्न अमुक नामवाले प्रेत! तुम मेरे द्वारा दिये जा रहे इस तिलोदकसे संतृप्त हो। मैं तुम्हें तिलाञ्जलि दे रहा हूँ, अतः इसको ग्रहण करनेके लिये तुम यहाँपर उपस्थित होओ[३]।'

हे कश्यपपुत्र गरुड! तत्पश्चात् जलसे निकलकर वस्त्र पहनकर स्नान-वस्त्रको एक बार निचोड़कर पवित्र भूमिपर बैठ जायँ। शवदाह तथा तिलाञ्जलि देकर मनुष्यको अश्रुपात नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा आँख और मुँहसे गिराये आँसू एवं कफको मरा हुआ व्यक्ति विवश होकर पान करता है। अतः रोना नहीं चाहिये, अपितु यथाशक्ति क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर कोई पुराणज्ञ संसारकी अनित्यताको बताता हुआ मृतकके परिजनोंको इस प्रकारका उपदेश देकर शोकनिवारण करनेका प्रयत्न करे—'मनुष्यका यह शरीर केलेके वृक्षके समान बड़ा ही सारहीन एवं जलके बुद्बुदेके समान क्षणभंगुर है। इसमें जो सारतत्त्वको खोजता

१-यजु० ३५। २२। २-यजु० ३५। ६

३-तिलोदककी अञ्जलि इस प्रकार कहकर देनी चाहिये—'अद्येहामुक गोत्रामुकप्रेतचितादाहजनिततापतृषोपशमाय एष तिलकुशतोयाञ्जलिर्मद्दत्तस्तवोपतिष्ठताम्।'

है, वह महामूर्ख है। यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, आक़ाश और वायुतत्त्व—इन पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ यह शरीर पुनः अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार उन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें जाकर विलीन हो जाता है तो उसके लिये रोना क्या? जब पृथ्वी, समुद्र तथा देवलोक विनष्ट हो जाते हैं तो फेनके समान प्रसिद्ध यह मर्त्यलोक नष्ट नहीं होगा?' इस उपदेशको सुनकर वे सभी परिवारके सदस्य अपने घरको जायँ। पहलेसे घरके द्वारपर रखी हुई नीमकी पत्तियोंको चबाकर आचमन करें। तदनन्तर अग्नि, जल, गोबर, श्वेत सरसों, दूर्वा, प्रवाल, वृषभ तथा अन्य माङ्गलिक वस्तुओंका हाथसे स्पर्श करके पैरसे पत्थरका भी स्पर्श करें और धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करें।

जो व्यक्ति विद्वान् है, वह अपने अग्निहोत्री परिजनकी मृत्यु होनेपर उसका दाह-संस्कार श्रौतकी अग्निके द्वारा ही यथाविधि करे। दो वर्षसे कम आयुवाले छोटे बालककी मृत्यु होनेपर उसको श्मशानभूमिमें गड्ढा खोदकर मिट्टीसे ढक देना चाहिये। उसके लिये उदक-क्रियाका विधान नहीं है। जो स्त्री पतिव्रता है, यदि वह मरे हुए पतिका अनुगमन करना चाहती है तो धर्मविहित नियमोंके अनुसार पतिको प्रणाम करके चितामें प्रवेश करे। जो स्त्री जीवनके व्यामोहसे चितापर चढ़कर पुनः बाहर आ जाती है, उसे 'प्राजापत्यव्रत' करना चाहिये।

मनुष्यके शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोएँ होते हैं, जो स्त्री पतिका अनुगमन करती है, उतने कालतक वह स्वर्गमें वास करती है। जिस प्रकार सर्पको पकड़नेवाला सपेरा बिलसे सर्पको बलात् बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली सती नारी अपने पतिका उद्धार कर उसके साथ स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करती है। अप्सराएँ उसका सम्मान करती हैं तथा वह पतिव्रता नारी तबतक पतिके साथ सुखोपभोग करती है, जबतक चौदह इन्द्रोंकी अवधि पूर्ण नहीं हो जाती है। यदि पति ब्रह्महत्यारा, कृतघ्न या मित्रघाती हो, फिर भी सधवा स्त्री मृत्यु होनेपर पतिके साथ सती होकर उसे पवित्र कर देती है। पतिके मर जानेपर जो स्त्री उसीके साथ अग्निमें अपने शरीरको भेंट कर देती है, वह अरुन्धतीके समान आचरण करती हुई स्वर्गलोकमें जाकर सम्मान प्राप्त करती है।

पतिकी मृत्यु होनेपर जबतक स्त्री अपनेको चिताकी भेंट नहीं चढ़ा देती है, तबतक वह स्त्रीके शरीरसे किसी प्रकार मुक्त नहीं हो सकती है। जो स्त्री अपने पतिके साथ सती हो जाती है, वह पितृकुल, मातृकुल और पतिकुल—इन तीनों कुलोंको पवित्र कर देती है। जो स्त्री पतिके दुःखमें दुःखी, सुखमें सुखी, विदेशगमनमें मलिनवसना, कृशकाय तथा मृत्यु होनेपर चितामें उसीके साथ जलकर मृत्युका संवरण करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता मानना चाहिये। पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली स्त्री पतिकी मृत्यु हो जानेपर पृथक् चितामें समारूढ होकर परलोकगमनके योग्य नहीं होती। क्षत्रियादि सभी सवर्णा स्त्रियोंको अपने पतिके साथ ही चितामें आरोहणकर परलोकसुख प्राप्त करना चाहिये। ब्राह्मणवर्णकी स्त्रीसे लेकर चाण्डालवर्णकी स्त्रीके लिये पतिके साथ चितामें जलकर सती होनेका विधान एक समान ही है। पतिकी मृत्युके समय जो स्त्रियाँ गर्भसे रहित हैं और जिनके छोटे-छोटे बच्चे नहीं हैं, उन सभीको सतीधर्मका पालन करना चाहिये।

हे पक्षिन्! मनुष्यके दाह-संस्कारकी जो विधि है, उसको सामान्य रूपसे मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

**इसपर गरुडने कहा**—हे संसारके स्वामिन्! यदि प्रवासकालमें पतिकी मृत्यु हो जाती है और उसकी अस्थियाँ भी स्त्रीको नहीं प्राप्त होती हैं तो उसका दाह किस प्रकारसे करना चाहिये, यह बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! यदि प्रवासी पतिकी अस्थियाँ नहीं प्राप्त होती हैं तो मैं उसकी भी सद्गतिका विधान तुम्हें सुनाता हूँ। उस परम गोपनीय तत्त्वको तुम सुनो। जो प्राणी भूखसे पीड़ित होनेके कारण मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो व्याघ्रादि हिंसक प्राणियोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनकी मृत्यु गलेमें फाँसीका फन्दा लगानेसे हो जाती है, शरीरकी क्षीणताके कारण जिनकी मृत्यु होती है, जो हाथीके द्वारा मारे जाते हैं, जो विष, अग्नि, बैल और ब्राह्मण-शापसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, जिनकी मृत्यु हैजासे होती है, जो आत्मघाती हैं, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमें डूबनेसे मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुनो।

जो सर्प, व्याघ्र, शृंगधारी पशु, उपसर्ग (चेचक), पत्थर, जल, ब्राह्मण, जंगली हिंसक पशु, वृक्षपात और विद्युत्पातसे और लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे अथवा दीवालके गिरनेसे, पहाड़के खड़े कगारसे, खाट या मध्य कक्षमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋतुमती, चाण्डाली, शूद्रा तथा धोबिन आदि त्याज्य स्त्रियोंका संसर्ग, शारीरिक स्पर्श या अधरोंका पान करते हुए जो लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो शस्त्राघातसे मरते हैं, विषैले कुत्तेके मुखका स्पर्श करनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, विधि-विहीन-रूपमें* जो मृत्यु हो जाती है, उसको दुर्मरण समझना चाहिये। उसी पापसे नरकोंको भोगकर वे पुनः प्रेतत्वको प्राप्त होते हैं। ऐसे व्यक्तिका दाह, उदकक्रिया और मरणनिमित्तक अन्य कृत्य तथा औध्वंदैहिक कर्म नहीं करना चाहिये। इस प्रकारसे अपमृत्यु होनेपर पिण्डदानका कर्म भी वर्जित है। यदि प्रमादवश कोई पिण्डदान करता है तो वह उसे प्राप्त नहीं होता और अन्तरिक्षमें विनष्ट हो जाता है। अतः लोकगर्हासे डरकर उसके शुभेच्छु पुत्र-पौत्र और सगोत्री जनोंको मृतकके लिये 'नारायणबलि' करनी चाहिये। ऐसा करनेपर ही उन्हें शुचिता प्राप्त होती है अन्यथा नहीं; यह यमराजका वचन है।

नारायणबलि किये जानेपर और्ध्वदैहिक कर्मकी योग्यता आ जाती है। अपमृत्यु होनेपर ऐसे प्राणीका शुद्धिकरण इसी कर्म (नारायणबलि)-से सम्भव है अन्यथा नहीं।

नारायणबलि सम्यक् रूपसे तीर्थमें करना चाहिये। ब्राह्मणोंके द्वारा भगवान् कृष्णके समक्ष नारायणबलि करानेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। पुराण, वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सबसे पहले तर्पण करें। सभी प्रकारकी औषधियोंको और अक्षतको जलमें मिलाकर 'पुरुषसूक्त' या 'वैष्णवसूक्त' का उच्चारण करते हुए विष्णुके उद्देश्यसे सम्पन्न करना चाहिये। उसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर प्रेत और विष्णुका इस प्रकार स्मरण करे—

**अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥**
**अक्षयः पुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भव।**

(४।११८-११९)

'हे देव! आप अनादि, अजर और अमर हैं। हे देव! आप शंख, चक्र एवं गदासे सुशोभित विष्णु हैं। आप कभी न विनष्ट होनेवाले परमात्मा हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! आप इस प्रेतको मोक्ष प्रदान करनेकी कृपा करें।'

* अकस्मात् किसी ऐसी स्थितिमें मरण हो रहा है जब मरणासन्न व्यक्तिके लिये शास्त्रोक्त विधियाँ सम्पन्न नहीं हो पाती हैं, तब ऐसा मरण विधि-विहीन मरण माना जाता है।

वीतराग, विमत्सर, जितेन्द्रिय, शुचिष्मान् और धर्मतत्पर होकर वहींपर भक्तिपूर्वक एकादश श्राद्ध करे। उसके बाद वह सावधानमनसे विधिवत् जल, अक्षत, यव, गेहूँ और कँगनीका दान दे। उस समय शुभ हविष्यान्न, सुन्दर बनी हुई सोनेकी अंगूठी, छत्र और पगड़ीका दान देना चाहिये। इन वस्तुओंके अतिरिक्त दूध-मधुसे समन्वित सभी प्रकारके अन्न देना चाहिये। वस्त्र और पादुका समन्वित आठ प्रकारका पददान सुपात्रोंको समभावसे दिया जाना चाहिये। पिण्डदान करनेके बाद मन्त्रोच्चारसहित गन्ध, पुष्प और अक्षतसे पूजा करे, तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको सम्मानसहित दान दे। शंख, खड्ग अथवा ताम्रपात्रमें पृथक्-पृथक् तर्पण करना चाहिये। उसके बाद ध्यान-धारणासे संयुक्त होकर दोनों घुटनोंके बल पृथ्वीपर अवस्थित होकर मन्त्रोच्चारपूर्वक उद्दिष्ट देवोंके लिये पृथक्-पृथक् अर्घ्य प्रदान करे। पञ्चरत्नसे युक्त पृथक्-पृथक् पाँच कुम्भोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और प्रेत—इन पाँचोंको स्थापित करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, मूँग और पददान पृथक्-पृथक् स्थापित करे। यथाविधि उन देवोंके लिये पाँच श्राद्ध करना चाहिये। शंख या ताम्रपात्र न मिलनेपर मृण्मयपात्रमें सर्वौषधिसे युक्त तिलोदक लेकर प्रत्येक पिण्डपर पृथक्-पृथक् जलधारा देनी चाहिये। तिलसे पूर्ण ताम्रपात्र दक्षिणा और स्वर्णसे युक्त तथा पददान मुख्य ब्राह्मणोंको देना चाहिये। यमके निमित्त दक्षिणासहित तिल और लोहेका दान देना चाहिये। विष्णुदेवके लिये यथाशक्ति विधिपूर्वक बलि प्रदान करनेपर मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

जो व्यक्ति सर्पदंशसे मर जाता है, उसके विषयमें विशेष बात मुझसे सुनो—

एक भार सोनेकी नागप्रतिमा बनवाकर गौके सहित विधिवत् उसका दान ब्राह्मणको कर देना चाहिये। ऐसा करके पुत्र अपने पिताके ऋणसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सर्पबलि देकर मनुष्य सर्पदोषके पापसे दूर हो जाता है। हे गरुड! उसके बाद सर्वौषधिसे समन्वित पुत्तलका निर्माण करना चाहिये। पुत्तलके निर्माणमें पलाश और वृन्तोंका विभाग सुनो—

काले मृगका चर्म बिछाकर उसके ऊपर कुशसे निर्मित एक पुरुषकी आकृति बनानी चाहिये। तीन सौ साठ वृन्तोंसे मनुष्यकी अस्थियोंका निर्माण होता है। उन वृन्तोंका विन्यास इन अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् रूपसे करना चाहिये। चालीस वृन्त शिरोभाग, दस वृन्त ग्रीवा, बीस वृन्त वक्षःस्थल, बीस वृन्त उदर, सौ वृन्त दोनों बाहु, बीस वृन्त कटि, सौ वृन्त दोनों उरुभाग, तीस वृन्त दोनों जंघा प्रदेश, चार वृन्त शिश्न, छः वृन्त दोनों अण्डकोश और दस वृन्त पैरकी अंगुली भागमें स्थापित करनेका विधान है। इसके बाद शिरोभागमें नारियल, तालु प्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वामें कदलीफल, आँतोंके स्थानमें कमलनाल, नासिका भागमें बालू, वसाके स्थानमें मिट्टी, हरिताल और मनःशिल, वीर्यके स्थानपर पारद, पुरीषके स्थानपर पीतल, शरीरमें मनःशील, संधिभागोंमें तिलका पाक, मांसके स्थानपर पिसा हुआ यव, रक्तके स्थानपर मधु, केशराशिके स्थानपर जटाजूट, त्वचाके स्थानपर मृगचर्म, दोनों कानके स्थानपर तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानपर गुञ्जाफल, नासिका भागमें शतपत्र, नाभिमण्डलमें कमल, दोनों अण्डकोशोंके स्थानपर बैगन, लिङ्गभागमें बढ़िया सुन्दर गाजर, नाभिमें घी, कौपीनके स्थानपर त्रपु अर्थात् लाह, स्तनोंमें मोती, ललाटपर कुंकुमका लेप, कर्पूर एवं अगुरु धूप, सुगन्धित मालाका अलंकरण, पहननेके लिये

हृदयमें पट्टसूत्रका विन्यास करना चाहिये। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि एवं वृद्धि, दोनों नेत्रोंमें कौड़ी, दाँतोंमें अनारके बीज, अँगुलियोंके स्थानमें चम्पाके पुष्प और नेत्रोंके कोण भागमें सिन्दूर भरकर ताम्बूल आदि शोभादायक अन्य पदार्थ भी भेंट करना चाहिये।

इस प्रकार सर्वौषधियुक्त उस प्रेतकी विधिवत् पूजा कर यदि मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो तो उसके अङ्गोंमें यथाक्रम यज्ञ-पात्र स्थापित करे। तदनन्तर '**स्त्रियः पुनन्तु मे शिर०**' तथा '**इमं मे वरुणेन च०**' इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित शालग्रामशिलायुक्त जलसे उक्त प्रेतको पवित्र करके भगवान् विष्णुको उद्देश्य कर सुशीला, दूध देनेवाली गौका दान देना चाहिये। तत्पश्चात् तिल, लौह, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी तथा गौ, जो एक-से-एक बढ़कर पवित्र बताये गये हैं, उनका भी दान करना चाहिये। उसके बाद तिल-पात्र तथा पददान भी करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतकी मुक्तिके लिये वैष्णव श्राद्ध करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य सम्पन्न करे।

उक्त विधिसे बनाये गये पुत्तलका विधिपूर्वक दाह करना चाहिये। तत्पश्चात् उसकी शुद्धिके लिये पुत्रादि संस्कर्ता प्रायश्चित्त करें। जिसमें तीन, छः, बारह तथा पंद्रह कृच्छ्रव्रत करनेका विधान है। प्रायश्चित्त कर्ममें असमर्थ होनेपर गाय, सुवर्णादिका दान अथवा तत्प्रतिनिधिभूत द्रव्यका दान करना चाहिये। विद्वान्को इस प्रकार अपनी शुद्धि करनी चाहिये। अशुद्ध दाताके द्वारा अशुद्धको उद्देश्य करके जो कुछ श्राद्ध तथा दानादिक किया जाता है, वह सब कुछ अन्तरिक्षमें ही विनष्ट हो जाता है। अतः विधिवत् शुद्ध होकर मनुष्यको दाहादिक और्ध्वदैहिक कर्म करना चाहिये।

हे गरुड! जो प्राणी बिना प्रायश्चित्त किये ही दाहादिक कर्म ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक करता है, वह वहन, अग्निदान, जलदान, स्नान, स्पर्श, रज्जुछेदन तथा अश्रुपात करके तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है। जो शवको ले जाता है अथवा दाह-संस्कार करता है, वह कटोदक-क्रिया करके कृच्छ्रसान्तपनव्रत करे। छोटे दोषको दूर करनेके लिये छोटा और बड़े दोषको दूर करनेके लिये बड़ा प्रायश्चित्त करना चाहिये।

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र तथा सान्तपन—ये जो तीन प्रायश्चित्त व्रत आपने बताये हैं; इन तीनोंके लक्षणोंको भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल, तीन दिन अयाचित हविष्यान्नका आहार और तीन दिनका उपवास क्रमशः जिस व्रतमें किया जाता है, वह 'कृच्छ्रव्रत' कहलाता है[1]। जिस व्रतमें क्रमशः एक दिन गरम दूध, दूसरे दिन गरम घी तथा तीसरे दिन गरम जल पानकर चौथे दिन एक रात्रिका उपवास किया जाता है, उसका नाम 'तप्तकृच्छ्र' व्रत है[2]। जब गोमूत्र, गोमय, गोदधि, गोदुग्ध और कुशोदक—इन पाँच पदार्थोंको क्रमशः एक-एक दिन पान करके पुनः कृच्छ्रव्रतका उपवास किया जाता है तो उसको 'सान्तपनव्रत' कहा जाता है[3]।

हे पक्षिन्! पापी व्यक्तिके मरनेपर कौन-सी क्रिया करनी चाहिये, यह मैंने तुम्हें बता दिया है। पुत्तलदाहमें (पुत्तलके हृदयपर रखा) जलता हुआ दीपक जब बुझ जाय तो उस समय उसकी मृत्यु

१-त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। उपवासस्त्र्यहश्चैव एष कृच्छ्र उदाहृतः॥ (४।१६३)
२-तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः॥ (४।१६४)
३-गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥ (४।१६५)

समझनी चाहिये। तदनन्तर अग्निदाह करे और तीन दिनका सूतक करे। दशाह और गर्तपिण्ड करना चाहिये। इस विधिका सम्यक् पालन करनेसे प्रेत मुक्ति प्राप्त करता है। यदि किसीके मरणका भ्रम होनेसे उसकी प्रतिकृतिका दाह-संस्कार हो जाय और वह मनुष्य उसके बाद आ जाय तो उसे ले जाकर घृतकुण्डमें स्नान कराना चाहिये। तदनन्तर जातकर्मादि संस्कार पुन: किये जायँ। ऐसे पुरुषको अपनी विवाहिता पत्नीसे विधिवत् पुनर्विवाह कर लेना चाहिये। हे खग! यदि विदेशमें गये किसी व्यक्तिको पंद्रह अथवा बारह वर्ष बीत गये हों और उसका इस अवधिके बीच कोई समाचार नहीं प्राप्त होता है तो उसकी प्रतिकृति बनाकर उसका दाह-संस्कार कर डालना चाहिये।

हे गरुड! रजस्वला और सूतिका स्त्रीके मरनेपर कौन-सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, अब उसको तुम सुनो—सूतिका स्त्रीकी मृत्यु होनेपर याज्ञिकजन कुम्भमें जल और पञ्चगव्य लाकर पुण्यजनित मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके उससे स्वयंको शुद्ध करे। उसके बाद सौ शूपजलसे विधिपूर्वक शवको स्नान कराके पुन: उसको पञ्चगव्यसे स्नान कराये। फिर कपड़ेसे बनायी गयी आकृतिके साथ यथाविधि जला देना चाहिये।

पञ्चककालमें मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि क्या है? उसको मैं कहता हूँ, तुम सुनो—

हे खगेश! मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्धभागसे लेकर रेवती नक्षत्रतक पञ्चककाल होता है। इसको सदैव दोषपूर्ण एवं अशुभ मानना चाहिये। इस कालमें मरे हुए व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोंमें दु:ख उत्पन्न करनेवाला है। ऐसे दिनोंमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जलतक नहीं देना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे सर्वदा अशुभ होता है। अत: पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये अन्यथा पुत्र और सगोत्रके लिये कष्ट ही होता है। इन नक्षत्रोंमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर घरमें किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है।

हे गरुड! इन नक्षत्रोंके मध्यमें मनुष्योंका दाह-संस्कार आहुति प्रदान करके विधिपूर्वक किया जा सकता है। सुयोग्य ब्राह्मणोंको वैदिक मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक उसका संस्कार करना चाहिये। अत: शवस्थानके समीपमें कुशसे चार पुत्तलक बनाकर नक्षत्र मन्त्रोंसे उनको अभिमन्त्रित करके रख दे। तदनन्तर उन्हीं पुत्तलकोंके साथ मृतकका दाह-संस्कार करे। अशौचके समाप्त हो जानेपर मृतकके पुत्रोंद्वारा शान्ति एवं पौष्टिक कर्म भी होना चाहिये।

जो मनुष्य इन पञ्चक नक्षत्रोंमें मर जाता है, उसको सद्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अतएव मृतकके पुत्रोंको उसके कल्याणहेतु तिल, गौ, सुवर्ण और घीका दान देना चाहिये। समस्त विघ्नोंका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणोंको भोजन, पादुका, छत्र, सुवर्णमुद्रा तथा वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापोंका विनाशक है और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये, इससे समस्त पापोंका विनाश होता है। (अध्याय ४)

# आशौचमें विहित कृत्य, आशौचकी अवधि, दशगात्रविधि, प्रथमषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशीका विधान, नौ श्राद्धोंका स्वरूप, वार्षिक कृत्य, जीवका यममार्गनिदान, मार्गमें पड़नेवाले षोडश नगरोंमें जीवकी यातनाका स्वरूप, यमपुरीमें पापात्माओं और पुण्यात्माओंको घोर तथा सौम्यरूपमें यमराजके दर्शन

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! इस प्रकार मृत पुरुषका दाह-संस्कार करके स्नान और तिलोदक कर्म कर स्त्रियाँ आगे-आगे तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे घर आयें। द्वारपर पहुँचकर वे सभी मृत व्यक्तिका नाम लेकर रोते हुए नीमकी पत्तियोंका प्राशन कर पत्थरके ऊपर खड़े होकर आचमन करें। तदनन्तर सभी पुत्र-पौत्र आदि तथा सगोत्री परिजन घरमें जाकर जो दस रात्रियोंका अशौच-कर्म है, उसको पूरा करें। इस कालमें उन सभीको बाहरसे खरीदकर भोजन करना चाहिये। रात्रिमें वे अलग-अलग आसनपर सोयें। क्षार तथा नमकसे रहित भोजन किया जाय। वे सभी तीन दिनतक शोकमें डूबे रहें। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके अमांसभोजी होकर पृथ्वीपर ही सोयें। उन सभीके बीच परस्पर शरीरका स्पर्श न हो। वे इस अशौचकालके अन्तरालमें दान एवं अध्ययन-कर्मसे दूर रहें। दुःखसे मलिन, उत्साहहीन, अधोमुख-कातर एवं भोग-विलाससे दूर होकर वे अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोड़ दें। इस अशौचकी अवधिमें मिट्टीके बने पात्र या पत्तलोंमें भोजन करना चाहिये। एक या तीन दिनतक उपवास करे।

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! अशौचियोंके अशौचके विषयमें आपने कह दिया, पर वह अशौच कितने समयतक रहेगा? उसके लक्षण क्या हैं? उससे संलिप्त लोगोंको उस कालमें कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिये? इन सभी बातोंको भी आप बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे खगेश! यह अशौच तो विधिसम्मत समय और क्रिया आदिके द्वारा शीघ्र ही समाप्त करनेके योग्य होता है, क्योंकि प्राणी इस कालमें पिण्डदान, अध्ययन और अन्य प्रकारके दान-पुण्यादिक सत्कर्मोंसे दूर हो जाता है। सपिण्डियोंमें मरणाशौच दस दिनका माना जाता है। जो लोग भलीभाँति शुद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिये पुत्रादिके जन्म लेनेपर भी इसी प्रकार अशौच होता है। समानोदकोंके जननाशौचमें तीन रात्रिमें शुद्धि होती है। जो मृतकको जल देनेवाले हैं, वे मरणाशौचमें भी तीन दिनोंके पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं। दाँत निकलनेतक मरणाशौच होनेपर वह सद्यः समाप्त हो जाता है। यदि चूडाकरण-संस्कार हो जानेके बाद बालककी मृत्यु हो जाती है तो एक रात्रिका अशौच होता है। उपनयन (जनेऊ)-संस्कार होनेके पूर्वतक तीन दिन

और उसके बाद दस दिनका अशौच होता है—

**आ दन्तजननात्सद्य आ चौलान्नैशिकी स्मृता।**
**त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम्॥**

(५।१२)

हे पक्षिन्! तुम्हें मैंने अशौच बता दिया। अब मैं संक्षेपमें प्रसंगप्राप्त अशौचके विषयमें तुम्हें बताता हूँ। हे काश्यप! सूत्रसे बँधे हुए तीन काष्ठोंकी तिगोड़ियाको रात्रिमें आकाशके नीचे स्थापित करके चौराहेपर खड़ा कर दे और '**अत्र स्नाहि०**' एवं '**पिबात्र०**'[1] इस मन्त्रोच्चारके साथ उसके ऊपर मिट्टीके पात्रमें जल और दूध रख दे। संस्कर्ता अपने सगोत्रियोंके साथ पहले, तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन अस्थि-संचयन करे। जो सगोत्री हैं, वे मृतकके ऊर्ध्वभागकी अस्थियोंका ही स्पर्श कर सकते हैं। समानोदकी भी सभी क्रियाओंके योग्य हैं। प्रेतको पिण्डदान बाहर ही करे। इस क्रियाको करनेके लिये सबसे पहले स्नान करके संयतमना होकर उत्तर दिशामें चरुका निर्माण कर असंस्कृत प्राणीके लिये भूमिपर तथा संस्कार-सम्पन्नके लिये कुशपर नौ दिनोंमें नौ पिण्ड देना चाहिये। उसके बाद दसवें दिन दसवाँ पिण्डदान करे। तदनन्तर चाहे सगोत्री हो अथवा असगोत्री, चाहे स्त्री हो या पुरुष वह रात्रि बीतनेके पश्चात् पवित्र हो जाता है। पहले दिन जो पिण्डदानकी क्रिया करता है, उसे ही दसवें दिनतक प्रेतकी अन्य समस्त क्रियाएँ करनी चाहिये। चाहे चावल हो, चाहे सत्तू हो, चाहे शाक हो, पहले दिन जिससे पिण्डदान करे, उससे ही दस दिनतक पिण्डदान करना चाहिये।

हे गरुड! जबतक यह प्रेतजन्य अशौच रहता है तबतक प्रेतको प्रतिदिन एक-एक अञ्जलि बढ़ाते हुए जल-दान देनेका विधान है अथवा जिस दिन यह देना हो उस दिनकी संख्याके अनुसार वर्धमानक्रमसे उतनी अञ्जलि जल-दान करे। इस प्रकार दसवें दिन पचपन अञ्जलि पूर्ण करे। यदि अशौच दो दिन बढ़ जाता है तो पुनः उसी क्रमके अनुसार सौ अञ्जलि जल और देना चाहिये। यदि वह अशौच तीन दिनका ही है तो दस अञ्जलि ही जल देना चाहिये। हे पक्षिन्! इस जलदानका क्रम यह है कि अशौचके पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। हे गरुड! जब शताञ्जलि जल-दानकी क्रिया सम्पन्न की जाती है तो उस विधानके अनुसार पहले दिन तीस, दूसरे दिन चालीस तथा तीसरे दिन तीस अञ्जलि जल दिया जाता है।

इस प्रकार दोनों पक्षोंमें जलाञ्जलियोंकी संख्याका निर्धारण करना चाहिये। इन सभी पितृक्रियाओंको सम्पन्न करनेका मुख्य अधिकारी पुत्र ही होता है। इस प्रेतश्राद्धमें दूध या जलसे पिण्डका सेचन तथा पुष्प-धूपादिक पदार्थसे पिण्डका पूजन बिना मन्त्रोच्चार किये ही करना चाहिये। दसवें दिन केश, श्मश्रु, नख और वस्त्रका परित्याग करके गाँवके बाहर स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण जल, क्षत्रिय वाहन, वैश्य प्रतोद (चाबुक) अथवा रश्मि तथा शूद्र छड़ीका स्पर्श करके पवित्र होता है। मृतसे अल्प वयवाले सपिण्डोंको मुण्डन कराना चाहिये।[2]

छः और दस इस प्रकार सोलह पिण्डदान करके षोडशी कर्म सम्पन्न करनेका विधान है। यह मलिनषोडशी मृत दिनसे दस दिनमें पूर्ण होती है।

---

१-श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवैः। इदं नीरं इदं क्षीरं अत्र स्नाहि इदं पिब॥

२-अन्त्यकर्मदीपक पृष्ठ ४० की टिप्पणीके अनुसार मृत व्यक्तिसे अवस्थामें जो लोग कनिष्ठ हैं, उन्हें मुण्डन कराना चाहिये—यह कुछ लोगोंका मत है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि जितने लोग मरणके दु:खका अनुभव करनेवाले हैं, उन सभीको मुण्डन कराना चाहिये। इन दोनों मतोंको अपनी-अपनी परम्पराके अनुसार स्वीकार किया जा सकता है।

हे पक्षिश्रेष्ठ! पुत्रादि दस दिनोंतक जो पिण्डदान करते हैं, वे प्रतिदिन चार भागोंमें विभाजित हो जाते हैं। उसमें प्रथम दो भागसे आतिवाहिक शरीर, तीसरे भागसे यमदूत और चौथे भागसे वह मृतक स्वयं तृप्त होता है।

नौ दिन और रात्रिमें वह शरीर अपने अंगोंसे युक्त हो जाता है। प्रथम पिण्डदानसे प्रेतके शिरोभागका निर्माण होता है। दूसरे पिण्डदानसे उसके कान-नेत्र और नाककी सृष्टि होती है। तीसरे पिण्डदानसे क्रमशः—कण्ठ, स्कन्ध, बाहु एवं वक्षःस्थल, चौथे पिण्डदानसे नाभि, लिंग और गुदाभाग तथा पाँचवें पिण्डदानसे जानु, जंघा और पैर बनते हैं। इसी प्रकार छठें पिण्डदानसे सभी मर्मस्थल, सातवें पिण्डदानसे नाड़ीसमूह, आठवें पिण्डदानसे दाँत और लोम तथा नवें पिण्डदानसे वीर्य एवं दसवें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तृप्ति और भूख-प्यासका उदय होता है—

**अहोरात्रैस्तु नवभिर्देहो निष्पत्तिमाप्नुयात्।**
**शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते तथा॥**
**द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकं तु समासतः।**
**गलांसभुजवक्षश्च तृतीयेन तथा क्रमात्॥**
**चतुर्थेन च पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदं तथा।**
**जानुजंघं तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा॥**
**सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः।**
**दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यन्तु नवमेन च॥**
**दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः।**
(५।३३—३७)

हे वैनतेय! अब मैं मध्यमषोडशी विधिका वर्णन करता हूँ। उसको सुनो।

विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्यन्त एकादश श्राद्ध तथा पाँच देवश्राद्ध इस प्रकार षोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्हींका नाम मध्यमषोडशी है। यदि प्रेतकल्याणके निमित्त 'नारायणबलि' की जाय तो उसको एकादशाहके दिन करना चाहिये और उसी दिन वहींपर वृषोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग नहीं होता, सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती है। वृषोत्सर्ग बिना किये ही जो पिण्डदान किया जाता है, वह पूर्णतया निष्फल होता है। उससे प्रेतका कोई उपकार नहीं होता।* इस पृथ्वीपर वृषोत्सर्गके बिना कोई अन्य उपाय नहीं है, जो प्रेतका कल्याण करनेमें समर्थ हो। अतः पुत्र, पत्नी, दौहित्र (नाती), पिता अथवा पुत्रीको स्वजनकी मृत्युके पश्चात् निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बछियोंसे युक्त, विधानपूर्वक अलंकृत वृष, जिसके निमित्त छोड़ा जाता है उसको प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहके दिन यथाविधान साँड़ उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो विद्वान् ब्राह्मण कुश या चावलके चूर्णसे साँड़का निर्माण करके उसका उत्सर्ग कर सकता है। यदि बादमें भी वृषोत्सर्गके समय किसी प्रकार साँड़ नहीं मिल रहा है तो मिट्टी या कुशसे ही साँड़का निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमें प्राणीको जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी एकादशाह श्राद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मरे हुए स्वजनको उद्देश्य बनाकर शय्या, गौ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं उस प्रेतकी क्षुधा-शान्तिके लिये बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये।

हे विनतापुत्र गरुड! अब मैं तृतीय षोडशी (उत्तम-षोडशी)-श्राद्धका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो।

---

* एकादशाहे प्रेतस्य यस्योत्सृज्येत नो वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥
अकृत्वा यद्वृषोत्सर्गं कृतं वै पिण्डपातनम्। निष्फलं सकलं विद्यात्प्रमीताय न तद्भवेत्॥ (५।४०-४१)

प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, ऊनमासिक (आद्य) त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक एवं ऊनाब्दिक— इन्हें मतभेदसे तृतीय अथवा उत्तमषोडशी भी कहा जाता है।

बारहवें दिन, तीन पक्षमें, छ: महीनेमें अथवा वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण करना चाहिये। जिस मृतकके निमित्त इन षोडश श्राद्धोंको सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया जाता है, उस प्रेतके लिये अन्य सौ श्राद्ध करनेपर भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। हे खगेश! मृतक व्यक्तिके एकादशाह अथवा द्वादशाह तिथिमें आद्यश्राद्ध करनेका विधान माना गया है। प्रतिमासका श्राद्ध मासके आद्यतिथिमें मृत-तिथिपर होना चाहिये। ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक)-मास, छठें मास और वर्षमें एक, दो अथवा तीन दिन कम रहनेपर करना चाहिये[1]। सपिण्डीकरण वर्ष पूर्ण होनेके बाद अथवा छ: महीने बाद करना चाहिये अथवा आभ्युदयिक (विवाहादि मङ्गल-कार्य अनिवार्य रूपसे उपस्थित होनेपर) कार्य आनेपर तीन पक्ष अथवा बारह दिनके बाद करना चाहिये। मनुष्योंके कुलधर्म असंख्य हैं, उनकी आयु भी क्षरणशील है और शरीर अस्थिर है। अत: बारहवें दिन सपिण्डीकरण करना उत्तम है।

हे पक्षिराज! सपिण्डीकरण श्राद्धोंके सम्पादकीय विधि भी मुझसे सुनो।

हे काश्यप! एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार यह कार्य करना चाहिये[2]। तिल, गन्ध और जलसे परिपूर्ण चार पात्रोंकी व्यवस्था करके एक पात्र प्रेतके निमित्त और शेष तीन पात्र पितृगणोंके लिये निश्चित करना चाहिये। तदनन्तर उन तीन पात्रोंमें प्रेतपात्रके जलका सेचन करे। चार पिण्ड बनाये और प्रेत-पिण्डका उन तीन पिण्डोंमें मेलन कर दे। तबसे वह प्रेत पितरके रूपमें हो जाता है। हे खगेश्वर! उस प्रेतमें पितृत्वभावके आ जानेके बाद उस प्रेत तथा अन्य उसके पितृ-पितामह आदि पितरोंका समस्त श्राद्धकृत्य श्राद्धकी सामान्य विधिके अनुसार ही करना चाहिये। मृत पतिके साथ एक ही चितामें प्रवेश और एक ही दिन दोनोंकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डीकरण नहीं होता है। उसके पतिके सपिण्डीकरण श्राद्धसे ही स्त्रीका सपिण्डीकरण श्राद्ध सम्पन्न हो जाता है। हे खगेश! पतिके मरनेके बाद स्त्रीकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डन पतिके साथ होगा और सहमृत्युकी दशामें दोनोंके श्राद्धके लिये एक पाक, एक समय तथा एक कर्ता होगा। किंतु श्राद्ध पति-पत्नीका पृथक्-पृथक् ही किया जाना चाहिये। यदि स्त्री पतिके साथ चितामें

---

१-(क) एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा। श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः॥
नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे । ऊनश्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात्॥ (गार्ग्य)
द्विपुष्करे च नन्दाया सिनीवाल्यां भृगोर्दिने। चतुर्दश्यां च नो तानि कृतिकासु त्रिपुष्करे॥

एक, दो, तीन अथवा दस दिन कम रहनेपर, नन्दा तिथिको, शुक्रवारको, चतुर्दशी तिथि, त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग, अमावास्या तिथि, कृत्तिका, रोहिणी तथा मृगशिरा तिथियोंमें ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक, ऊनाब्दिक) नहीं करना चाहिये।

(ख) 'सपिण्डीकरणं चैव' इस वाक्यसे तृतीय षोडशीके अन्तर्गत सपिण्डीमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धकी गणना करनेपर 'शतार्द्धेन तु मेलयेत्' इस वाक्यसे विरोध होता है। सपिण्डीकरणमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धको तृतीय षोडशीके अन्तर्गत कात्यायनने माना है। इसका 'शतार्धेन तु मेलयेत्'से विरोध है।

श्राद्धकल्पलतामें तथा आचार्य गोभिल, लौगाक्षि पैठिनसिके मतमें सपिण्डन श्राद्ध तृतीय षोडशीके बाहर है।

(ग) 'द्वादशप्रतिमास्यानि' इस पदसे प्रथम मासिकका बोध हो जानेके कारण आद्य पदके अर्थमें ऊनमासिक उपलक्षण है। इसी प्रकार 'षाण्मासिक' पदका ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक अर्थमें लाक्षणिक प्रयोग है।

२-सपिण्डीकरणके अन्तर्गत किये जानेवाले केवल प्रेतश्राद्धके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट विधिका उल्लेख है। इस श्राद्धके अन्तर्गत किया जानेवाला प्रेतके पिता आदिका श्राद्ध सदैव पार्वण-विधिसे किया जाना चाहिये।

सती न होकर अन्य किसी दिन सती होती है तो उस स्त्रीकी मृत तिथिके आनेपर उसके लिये पृथक् रूपसे पिण्डदान करना चाहिये।

हे गरुड! सहमृत्युकी दशामें प्रत्येक वर्ष नवश्राद्ध एक साथ करना चाहिये। जिस मृतकका वार्षिक श्राद्धसे पूर्व सपिण्डीकरण हो जाता है, उसके लिये भी वर्षभर मासिक श्राद्ध और जलकुम्भ दान करना चाहिये[१]। धनका बँटवारा हो जानेपर भी नवश्राद्ध, सपिण्डन श्राद्ध और षोडश श्राद्ध करनेका अधिकार एक ही व्यक्तिको है।

हे कश्यपपुत्र! अब मैं तुम्हें नवश्राद्ध करनेका काल बताऊँगा। उसको सुनो।

हे पक्षिन्! मृत्युके दिन मृतस्थानपर पहला श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद दूसरा श्राद्ध मार्गमें उस स्थानपर करना चाहिये जहाँपर शव रखा गया था। तदनन्तर तीसरा श्राद्ध अस्थिसंचयनके स्थानपर होता है। इसके बाद पाँचवें, सातवें, आठवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें दिन श्राद्ध होता है। इसलिये इन्हें नवश्राद्ध कहा जाता है। ये नवश्राद्ध तृतीया षोडशी कहे जाते हैं। इनको एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही करना चाहिये। पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें और ग्यारहवें दिन होनेवाले श्राद्धोंको नवश्राद्ध कहा जाता है। दिनकी संख्या छः ही है पर छः दिनमें ही नवश्राद्ध हो जाते हैं। इस विषयमें ऋषियोंके बीच मतभेद हैं, इसी कारण मैंने उनको भी तुम्हें बता दिया।

श्राद्धोंका जो योग रूढिगत रूपसे है, वही मुझे भी अभीष्ट है। किसीको नव शब्दका यौगिक अर्थ अभीष्ट है। आद्य और द्वितीय श्राद्धमें एक ही पवित्रक देना चाहिये। जब ब्राह्मण भोजन कर चुके हों तो उसके बाद प्रेतको पिण्डदान देना उचित होता है[२]। वहाँपर यजमान और ब्राह्मणके बीच प्रश्नोत्तर भी होना चाहिये। जिसमें यजमान ब्राह्मणसे यह प्रश्न करे कि आप मेरी सेवासे प्रसन्न हैं? उसका उत्तर ब्राह्मण दे कि हाँ हम आपपर प्रसन्न हैं। आपके उस मृत स्वजनको अक्षय लोककी प्राप्ति हो।

हे पक्षिराज! अब तुम मुझसे एकोद्दिष्ट श्राद्धके विषयमें भी सुनो, जिसको वर्षपर्यन्त करना चाहिये।

सपिण्डीकरणके बादमें किये जानेवाले षोडश श्राद्धोंका सम्पादन एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही होना चाहिये, किंतु पार्वण-श्राद्धमें उक्त नियमका प्रयोग नहीं होता है। जिस प्रकारसे प्रत्येक वर्षमें होनेवाला प्रत्यब्द श्राद्ध[३] होता है, उसी प्रकार उन षोडश श्राद्धोंको भी करना चाहिये। एकादशाह और द्वादशाहमें जो श्राद्ध किया जाता है उन दिनोंमें स्वयं प्रेत भी भोजन करता है। अतः स्त्री और पुरुषके लिये जो पिण्डदान इन दिनोंमें दिया जाय उसको अमुक प्रेतके निमित्त दिया जा रहा है, ऐसा कहकर पिण्डदान देना चाहिये। सपिण्डीकरण श्राद्ध होनेके पश्चात् प्रेत शब्दका प्रयोग नहीं होता है। एक वर्षतक घरके बाहर प्रतिदिन दीपक जलाना चाहिये। अन्न, दीप, जल, वस्त्र और अन्य जो कुछ भी वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं, वे सभी सपिण्डीकरणतक प्रेत शब्दके सम्बोधनसे संकल्पित होनेपर ही प्रेतको तृप्ति प्रदान करती हैं।

हे वैनतेय! संक्षिप्त रूपमें मैंने वार्षिक कृत्य कह दिया। अब तुम विवस्वान् पुत्र यमराजके घर जिस प्रकार जीवका गमन होता है, उसका वर्णन सुनो।

हे अरुणानुज! त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवें दिन

१-यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत्। मासिकञ्चोदकुम्भञ्च देयं तस्यापि वत्सरम्॥ (५।६४)

२-यह प्राय: सपाक्षिकश्राद्धकी विधि है।

३-वार्षिक तिथिपर होनेवाला श्राद्ध।

श्राद्धकृत्य एवं गरुडपुराणके श्रवणके अनन्तर वह जीव, तुम्हारे द्वारा पकड़े गये सर्पके समान यमदूतोंके द्वारा पकड़ लिया जाता है और पकड़े गये बन्दरके समान अकेला ही उस यमलोकके मार्गमें चलता जाता है। उसके बाद वायुके द्वारा अग्रसारित वह जीव दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है, दूसरे शरीरमें जानेके पूर्वका जो शरीर है वह पिण्डज (दिये गये पिण्डोंसे निर्मित) है। दूसरी योनियोंका शरीर तो पितृसम्भव (माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला) होता है। इन शरीरोंके प्रमाण, वय, अवस्था एवं संस्थान (आकृतिविशेष) आदि श्राद्ध करनेवालेकी श्रद्धा एवं देह प्राप्त करनेवालेके कर्मानुसार होते हैं। प्रमाणतः यम और मर्त्यलोकके बीच छियासी हजार योजनका अन्तराल है। वह जीव प्रतिदिन अधिक-से-अधिक दो सौ सैंतालीस योजन और आधा कोसका मार्ग तय करता है। इस प्रकार उस जीवकी यात्रा तीन सौ अड़तालीस दिनोंमें पूरी होती है। इस यमलोककी यात्रामें जीवको यमदूत खींचते हुए ले जाते हैं। जो प्राणी अपने जीवनभर पापमें अनुरक्त थे, उनको इस मार्गमें जो कष्ट भोगना पड़ता है, उसको विस्तारपूर्वक सुनो—

मृत्युके तेरहवें दिन वह पापी यमदूतोंके कठोर पाशोंमें बाँध लिया जाता है। हाथमें अंकुश लिये हुए क्रोधावेशमें तनी हुई भौंहोंसे युक्त दण्डप्रहार करते हुए यमदूत उसको खींचते हुए दक्षिण दिशामें स्थित अपने लोकको ले जाते हैं। यह मार्ग कुश, काँटों, बाँबियों, कीलों और कठोर पत्थरोंसे परिव्याप्त रहता है। कहीं-कहीं उस मार्गमें अग्नि जलती रहती है और कहीं-कहीं सैकड़ों दरारोंसे दुर्गम भूमि होती है। प्रचंड सूर्यकी गर्मी और मच्छरोंसे परिव्याप्त उस मार्गमें प्राणी सियारोंके समान वीभत्स चीत्कार करते हुए यमदूतोंके

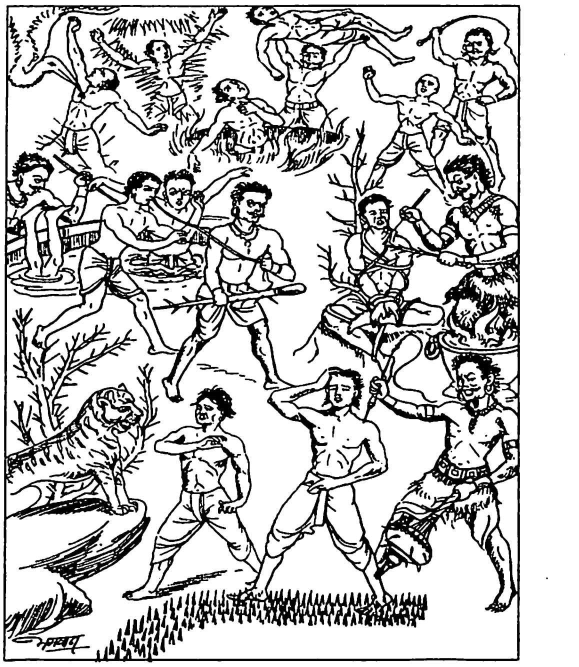

द्वारा खींचे जाते हैं। यमलोकके दारुण मार्गमें पापी जाता है और शरीरके जलनेके कारण अत्यन्त क्षीणताको प्राप्त होता है। अपने कर्मानुसार विभिन्न जंतुओंके द्वारा अङ्गोंके खाये जाने, भेदन एवं छेदन किये जानेके कारण जीव अत्यधिक दारुण दुःख प्राप्त करता है।

हे तार्क्ष्य! जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारका कष्ट भोगता है। यमलोकके इस मार्गमें सोलह पुर पड़ते हैं। उनके विषयमें भी सुनो—याम्य, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वपुर, शैलागम, क्रौंच, क्रूरपुर, विचित्रभवन, बह्वापद, दुःखद, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्र, पयोवर्षण, शीताढ्य और बहुभीति—ये सोलह पुर हैं, भयंकर होनेसे ये दुर्दर्शन हैं। याम्यपुरके मार्गमें प्रविष्ट होकर जीव 'हे पुत्र! हे पुत्र! मेरी रक्षा करो' ऐसा करुणक्रन्दन करता हुआ अपने द्वारा किये गये पापोंका स्मरण करता है और अठारहवें दिन वह यमराजके उस नगरमें पहुँच जाता है। वहाँ पुष्पभद्रा नामक नदी प्रवाहित होती है। वहाँ देखनेमें अत्यन्त सुन्दर वटवृक्ष है जहाँपर जीव विश्राम करना चाहता है, किंतु यमदूत उसको वहाँ विश्राम

नहीं करने देते। उसके पुत्रोंके द्वारा स्नेहपूर्वक अथवा अन्य किसीके द्वारा कृपापूर्वक पृथ्वीपर जो मासिक पिण्डदान दिया जाता है, उसीको वह वहाँपर खाता है।

तदनन्तर वहाँसे उसकी यात्रा सौरिपुरके लिये होती है। चलता हुआ वह मार्गमें यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे पीटा जाता है। उस दुःखसे अत्यधिक पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

**जलाशयो नैव कृतो मया तदा**
**मनुष्यतृप्त्यै पशुपक्षितृप्तये।**
**गोतृप्तिहेतोर्न च गोचरः कृतः**
**शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥**

(५। १००)

उस जन्ममें मनुष्य और पशु-पक्षियोंकी संतुष्टिके लिये मैंने जलाशय नहीं खुदवाया। गौओंकी क्षुधा-शान्तिके लिये गोचरभूमिका दान भी मैंने नहीं दिया। अतः हे शरीर! जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अब तुम अपना निस्तार करो।

उस सौरिपुरमें कामरूपधारी इच्छानुसार स्थितिशील एवं गतिशील राजा राज्य करता है। उसका दर्शनमात्र करनेसे जीव भयसे काँप उठता है और अपने अनिष्टकी शंकासे ग्रस्त होकर त्रिपक्षमें पुत्रादिक स्वजनोंके द्वारा पृथ्वीपर दिये गये जलयुक्त पिण्डको खाकर आगे बढ़ता है। वहाँसे वह आगे बढ़ता हुआ मार्गमें यमदूतोंके खड्गप्रहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर इस प्रकार प्रलाप करता है—

**न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं**
**पुस्तं च दत्तं न हि वेदशास्त्रयोः।**
**पुराणदृष्टो न हि सेवितोऽध्वा**
**शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥**

(५। १०३)

हे शरीर! मैंने जलादिका सदा दान नहीं दिया है, न तो नियमसे प्रतिदिन गायके लिये अपेक्षित गोग्रास आदि कृत्य किया है और न तो वेदशास्त्रकी पुस्तकका ही दान किया है। पुराणमें देखे हुए मार्ग (तीर्थयात्रा आदि)-का मैंने सेवन नहीं किया है, इसलिये जैसा तुमने किया है, उसीमें अपना निस्तार करो।

इसके बाद जीव 'नगेन्द्रनगर'में जाता है। वहाँपर वह अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दूसरे महीनेमें दिये गये अन्नको खाकर आगेकी ओर प्रस्थान करता है। चलते हुए उसके ऊपर यमदूतोंद्वारा कृपाणकी मुठियोंसे प्रहार किये जानेपर वह इस प्रकार प्रलाप करता है—

**पराधीनमभूत् सर्वं मम मूर्खशिरोमणेः॥**
**महता पुण्ययोगेन मानुष्यं लब्धवानहम्।**

(५। १०५-१०६)

बहुत बड़े पुण्योंको करनेके पश्चात् मुझे मनुष्य-योनि प्राप्त हुई थी, किंतु मुझ मूर्खाधिराजका सब कुछ पराधीन हो गया अर्थात् मनुष्ययोनि प्राप्त करके भी मैं कुछ सत्कर्म न कर सका।

इस प्रकार विलाप करता हुआ जीव तीसरे मासके पूरा होते ही गन्धर्वनगरमें पहुँच जाता है। तदनन्तर समर्पित किये गये तृतीय मासिक पिण्डको वहाँ खाकर वह पुनः आगेकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदूत उसको कृपाणके अग्रभागसे मारते हैं, जिससे आहत होकर वह पुनः इस प्रकार विलाप करता है—

**मया न दत्तं न हुतं हुताशने**
**तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे।**
**न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं**
**शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥**

(५। १०८)

मैंने कोई दान नहीं दिया, अग्निमें आहुति नहीं डाली और न तो हिमालयकी गुफामें जाकर तप

ही किया है। अरे! मैं तो इतना नीच हूँ कि गङ्गाके परम पवित्र जलका भी सेवन नहीं किया, इसलिये हे शरीर! जैसा तुमने कर्म किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो।

हे पक्षिन्! चौथे मासमें जीव शैलागमपुर पहुँच जाता है। वहाँ उसके ऊपर निरन्तर पत्थरोंकी वर्षा होती है। पुत्रके द्वारा दिये गये चतुर्थ मासिक श्राद्धको प्राप्तकर वह जीव सरकते हुए चलता है किंतु पत्थरोंके प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह गिर पड़ता है और रोते हुए यह कहता है—

**न ज्ञानमार्गो न च योगमार्गो**
**न कर्ममार्गो न च भक्तिमार्गः।**
**न साधुसङ्गात् किमपि श्रुतं मया**
**शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥**

(५।१११)

मैंने न तो ज्ञानमार्गका सेवन किया न योगमार्गका, न कर्ममार्ग और न ही भक्तिमार्गको अपनाया और न साधु-सन्तोंका साथ करके उनसे कुछ हितैषी बातें ही सुनी हैं। अतः हे शरीर! तब जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो। मृत्युके पाँचवें मासमें कुछ कम दिनोंमें वह 'क्रौंचपुर' पहुँच जाता है, उस समय पुत्रादिके द्वारा दिये गये ऊनषाण्मासिक श्राद्धके पिण्ड और जलका सेवन करके वहाँ एक घड़ी विश्राम करता है।

हे कश्यपपुत्र! इसके बाद छठे मासमें जीव 'क्रूरपुर'की ओर चल देता है। मार्गमें वह पृथ्वीपर दिये गये पञ्चम मासिक पिण्डको खाकर जलपान करता है। तत्पश्चात् वह क्रूरपुरकी ओर फिर बढ़ता है, किंतु यमदूत मार्गमें उसको पट्टिशों (अस्त्रविशेष)-द्वारा मारते हैं, जिससे वह गिर पड़ता है और इस प्रकार विलाप करता है—

**हा मातर्हा पितर्भ्रातः**
**सुता हा हा मम स्त्रियः॥**
**युष्माभिर्नोपदिष्टोऽह-**
**मवस्थां प्राप्त ईदृशीम्।**

(५।११३-११४)

हे मेरे माता-पिता और भाई-बन्धु! हे मेरे पुत्र! हे मेरी स्त्रियो! आप लोगोंने मुझे कोई ऐसा उपदेश नहीं दिया, जिससे मैं उन दुष्कृत्योंसे बच सकता, जिनके कारण मेरी इस प्रकारकी अवस्था हो गयी।

इस प्रकारका विलाप करते हुए उस जीवसे यमदूत कहते हैं—अरे मूर्ख! तेरी कहाँ माता है, कहाँ पिता है, कहाँ स्त्री है, कहाँ पुत्र है और कहाँ मित्र है? तू अकेला ही चलते हुए इस मार्गमें अपने द्वारा किये गये दुष्कृत्योंके फलका उपभोग कर। हे मूर्ख! तू जान ले इस मार्गमें चलनेवाले लोगोंको दूसरेकी शक्तिका आश्रय करना व्यर्थ है। परलोकमें जानेके लिये पराये आश्रयकी आवश्यकता नहीं होती है। वहाँ (स्वकर्मार्जित) पुण्य ही साथ देता है। तुम्हारा तो उसी मार्गसे गमन निश्चित है, जिस मार्गमें किसी क्रय-विक्रयके द्वारा भी अपेक्षित सुख-साधनका संग्रह नहीं किया जा सकता।

इसके बाद वह जीव 'विचित्रनगर'के लिये चल देता है। रास्तेमें यमदूत उसको शूलके प्रहारसे आहत कर देते हैं, जिसके कारण वह दुखित होकर इस प्रकारका विलाप करता है—

**कुत्र यामि न हि गामि जीवितं हा मृतस्य मरणं पुनर्न वै।**

(५।११९)

हाय! मैं कहाँ चल रहा हूँ, मैं तो निश्चित ही अब जीवित नहीं रहना चाहता, फिर भी जीवित हूँ। मरे हुए प्राणीकी मृत्यु पुनः नहीं होती।

इस प्रकारका विलाप करता हुआ वह जीव यातना-शरीरको धारण करके 'विचित्रनगर'में जाता है। जहाँपर विचित्र नामका राजा राज्य करता है। वहाँपर वह षाण्मासिक पिण्डसे अपनी क्षुधाको

शान्त कर आगे आनेवाले नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदूत भालेसे प्रहार करते हैं, जिससे संत्रस्त होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

**माता भ्राता पिता पुत्रः कोऽपि मे वर्तते न वा।**
**यो मामुद्धरते पापं पतन्तं दुःखसागरे॥**

(५। १२२)

मेरे माता-पिता, भाई, पुत्र कोई है अथवा नहीं है, जो इस दुःखके सागरमें गिरे हुए मुझ पापीका उद्धार कर सके।

ऐसा विलाप करता हुआ वह जीव मार्गमें चलता रहता है। उसी मार्गमें 'वैतरणी' नामकी एक नदी पड़ती है, जो सौ योजन चौड़ी है और रक्त तथा पीबसे भरी हुई है। जैसे ही मृतक उस नदीके तटपर पहुँचता है, वैसे ही वहाँपर नाववाले—मल्लाह आदि उसको देखकर यह कहते हैं कि यदि तुमने वैतरणी गौका दान दिया है तो इस नावपर सवार हो जाओ और सुखपूर्वक इस नदीको पार कर लो। जिसने वैतरणी नामक गौका दान दिया है, वही सुखपूर्वक इस नदीको पार कर सकता है। जिस व्यक्तिने वैतरणी गौका दान नहीं दिया है, उसको नाविक हाथ पकड़कर घसीटते हुए ले जाते हैं। तेज और नुकीली चोंचसे कौआ, बगुला तथा उलूक नामक पक्षी अपने प्रहारसे उसे अत्यन्त व्यथित करते हैं। हे पक्षिन्! अन्त समय आनेपर मनुष्योंके लिये वैतरणीका दान ही हितकारी है। यदि प्राणी अपने जीवनकालमें वैतरणी नामक गौका दान देता है तो वह गौ समस्त पापोंको विनष्ट कर देती है और उसको यमलोक न ले जाकर विष्णुलोकको पहुँचा देती है*।

सातवाँ मास आ जानेपर मृतक 'बह्वापद' नामक पुरमें आ जाता है। वहाँपर सप्तमासिक सोदक पिण्डका सेवन करके आगे बढ़ते हुए परिघके आघातसे पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

**न दत्तं न हुतं तप्तं न स्नातं न कृतं हितम्।**
**यादृशं चरितं कर्म मूढात्मन् भुंक्ष्व तादृशम्॥**

(५। १२९)

हे शरीर! मैंने दान, आहुति, तप, तीर्थस्नान तथा परोपकार आदि सत्कृत्य जीवनपर्यन्त नहीं किया है। हे मूर्ख! अब जैसा तुमने कर्म किया है, वैसा ही भोग करो।

हे तार्क्ष्य! इसके बाद वह जीव आठवें मासमें 'दुःखदपुर' पहुँचता है। वहाँ स्वजनोंके द्वारा दिये गये अष्टमासिक पिण्ड और जलका सेवन करके 'नानाक्रन्द' नामक पुरकी ओर प्रस्थान कर देता है। मार्गमें चलते हुए मुसलाघातसे पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

**क्व जायाचटुलैश्चाटुपटुभिर्वचनैर्मम॥**
**भोजनं भल्लभल्लीभिर्मुसलैश्च क्व मारणम्।**

(५। १३१-१३२)

हाय! कहाँ चंचल नेत्रोंवाली पत्नीके चापलूसी भरे वचनोंके द्वारा किये गये मनोविनोदोंके बीच मेरा भोजन होता था और कहाँ भाला-बर्छियों तथा मुसलोंके द्वारा मुझे मारा जा रहा है!

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह जीव नवें मासमें 'नानाक्रन्दपुर' पहुँच जाता है। तदनन्तर नवें मासमें पुत्रद्वारा दिये गये पिण्डका भोजन करके वह नाना प्रकारका विलाप करता है। तत्पश्चात् यमदूत दसवें मासमें उसको 'सुतप्तभवन' ले जाते हैं। मार्गमें वे उसको हलसे मारते-पीटते हैं, जिससे आहत होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

**क्व सूनुपेशलकरैः पादसंवाहनं मम॥**
**क्व दूतवज्रप्रतिमकरैर्मत्पदकर्षणम्।**

(५। १३४-१३५)

हाय! कहाँ पुत्रोंके कोमल-कोमल हाथोंसे मेरे

* मनुजानां हितं दानमन्ते वैतरणी खग। दत्ता पापं दहेत् सर्वं मम लोकं तु सा नयेत्॥ (५। १२६-१२७)

पैर दाबे जाते थे और कहाँ आज इन यमदूतोंके वज्रसदृश कठोर हाथोंसे पैर पकड़कर मुझे निर्दयतापूर्वक घसीटा जा रहा है!

दसवें मासमें वहींपर पिण्ड और जलका उपभोग करके वह (जीव) पुनः आगेकी ओर सरकने लगता है। ग्यारहवाँ मास पूर्ण होते ही वह 'रौद्रपुर' पहुँच जाता है। मार्गमें यमदूत जैसे ही उसकी पीठपर प्रहार करते हैं, वह चिल्लाते हुए इस प्रकार विलाप करता है—

**क्वाहं सतूलीशयने परिवर्तन् क्षणे क्षणे।**
**भटहस्तभ्रष्टयष्टिकृष्टपृष्ठः क्व वा पुनः॥**

(५। १३७)

कहाँ मैं रूईसे बने हुए अत्यन्त कोमल गद्देपर लेटकर प्रतिक्षण करवटें बदलता था और कहाँ आज यमदूतोंके हाथोंसे निर्दयतापूर्वक मारी जा रही लाठियोंके प्रहारसे कटी पीठसे करवट बदल रहा हूँ!

हे द्विज! इसके पश्चात् वह जीव पृथ्वीपर दिये गये जलसहित पिण्डको खाकर 'पयोवर्षण' नामक नगरकी ओर प्रस्थान करता है। रास्तेमें यमदूत कुल्हाड़ीसे उसके सिरपर प्रहार करते हैं। हताहत होकर वह इस प्रकारका विलाप करता है—

**क्व भृत्यकोमलकरैर्गन्धतैलावसेचनम्॥**
**क्व कीनाशानुगैः क्रोधात्कुठारैः शिरसि व्यथा।**

(५। १३९-१४०)

हाय! कहाँ भृत्योंके कोमल-कोमल हाथोंसे मेरे सिरपर सुवासित तेलकी मालिश होती थी और कहाँ आज क्रोधसे परिपूर्ण यमदूतोंके हाथोंसे मेरे इस सिरपर कुल्हाड़ियोंका प्रहार हो रहा है!

इस पयोवर्षण नामक नगरमें वह मृतक ऊनाब्दिक श्राद्धका दुःखपूर्वक उपभोग करता है। तदनन्तर वर्ष बीतते ही वह 'शीताढ्य' नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें बढ़ते हुए उस मृतककी जिह्वाको यमदूत छूरीसे काट डालते हैं, जिससे दुःखित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

**प्रियालापैः क्व च रसमधुरत्वस्य वर्णनम्।**
**उक्तमात्रेऽसिपत्रादिजिह्वाच्छेदः क्व चैव हि॥**

(५। १४२)

अरे! कहाँ परस्पर प्रिय वार्तालापोंके द्वारा इस जिह्वाके रसमाधुर्यकी प्रशंसा की जाती थी, कहाँ आज मुँह खोलनेमात्रपर ही तलवारके समान तीक्ष्ण छूरी आदिके द्वारा मेरी उसी जिह्वाको काट दिया जा रहा है!

तदनन्तर उसी नगरमें वह मृतक वार्षिक पिण्डोदक तथा श्राद्धमें दिये गये अन्य पदार्थोंका सेवन कर आगेकी ओर बढ़ता है। पिण्डज शरीरमें प्रविष्ट होकर वह 'बहुभीति' नामक नगरमें जाता है। वह मार्गमें अपने पापका प्रकाशन और स्वयंकी निन्दा करता है। यमपुरीके इस मार्गमें स्त्री भी इसी-इसी प्रकारका विलाप करती है।

इसके बाद वह मृतक अत्यन्त निकट ही स्थित यमपुरीमें जाता है। वह याम्यलोक चौवालीस योजनमें

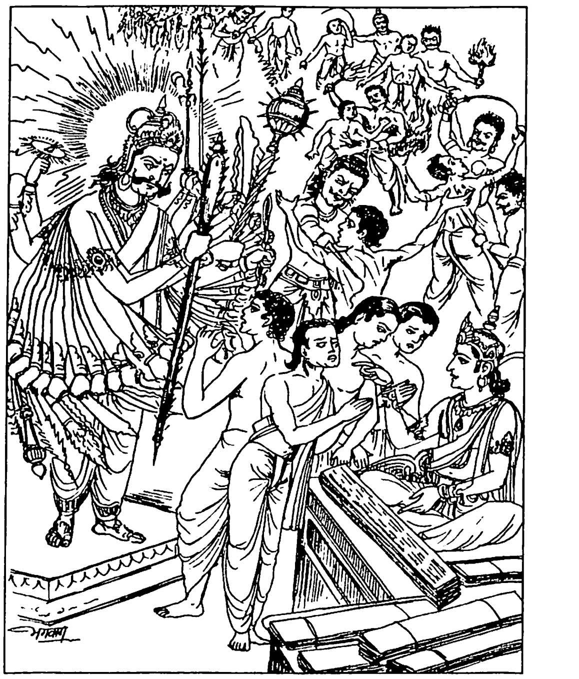

विस्तृत है। उसमें श्रवण नामक तेरह प्रतीहार हैं। उन प्रतीहारोंको श्रवणकर्म करनेसे प्रसन्नता होती है। अन्यथा वे क्रुद्ध होते हैं। ऐसे लोकमें पहुँचनेके पश्चात् प्राणी मृत्युकाल तथा अन्तक आदिके मध्यमें

स्थित क्रोधसे लाल-लाल नेत्रोंवाले काले पहाड़के समान भयंकर आकृतिसे युक्त यमराजको देखता है। विशाल दाँतोंसे उनका मुखमण्डल बड़ा ही भयानक लगता है। उनकी भ्रू-भंगिमाएँ तनी रहती हैं, जिससे उनकी आकृति भयानक प्रतीत होती है। अत्यन्त विकृत मुखाकृतियोंसे युक्त सैकड़ों व्याधियाँ उनको चारों ओरसे घेरे रहती हैं। उनके एक हाथमें दण्ड और दूसरे हाथमें भैरव-पाश रहता है।

यमलोकमें पहुँचा हुआ जीव यमके द्वारा बतायी गयी शुभाशुभ गतिको प्राप्त करता है। जैसा मैंने तुमसे पहले कहा है, उसी प्रकारकी पापात्मक गति पापी जीवको प्राप्त होती है। जो लोग छत्र, पादुका और घरका दान देते हैं, जो लोग पुण्यकर्म करते हैं, वे वहाँपर पहुँचकर सौम्य स्वरूपवाले, कानोंमें कुण्डल और सिरपर मुकुट धारण किये हुए शोभासम्पन्न यमराजका दर्शन करते हैं।

चूँकि वहाँ जीवको बहुत भूख लगती है, इसलिये एकादशाह, द्वादशाह, षण्मास तथा वार्षिक तिथिपर बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। हे खगश्रेष्ठ! जो व्यक्ति पुत्र, स्त्री तथा अन्य सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा कहे गये उनके स्वार्थको ही जीवनपर्यन्त सिद्ध करता है और अपने परलोकको बनानेके लिये पुण्यकर्म नहीं करता, वही अन्तमें कष्ट प्राप्त करता है।

हे गरुड! मृत्युके पश्चात् संयमनीपुरको जानेवाले प्राणीकी जो गति होती है और वर्षपर्यन्त जो कृत्य किये जाते हैं, उसको मैंने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ५)

## वृषोत्सर्गकी महिमामें राजा वीरवाहनकी कथा, देवर्षि नारदके पूर्वजन्मके इतिहासवर्णनमें सत्संगति और भगवद्भक्तिका माहात्म्य, वृषोत्सर्गके प्रभावसे राजा वीरवाहनको पुण्यलोककी प्राप्ति

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! जो तीर्थ-सेवन और दानमें निरन्तर लगा है तथा अन्य साधनोंसे भी सम्पन्न है, उसे भी वृषोत्सर्ग किये बिना परलोकमें सद्गति नहीं प्राप्त होती। इसलिये मनुष्यको वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। ऐसा मैंने आपसे सुन लिया। इस वृषोत्सर्गका फल क्या है? प्राचीन समयमें इस यज्ञको किसने किया? इसमें किस प्रकारका वृष होना चाहिये? विशेष रूपसे इस कार्यको किस समय करना चाहिये और इसको करनेकी कौन-सी विधि बतायी गयी है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे खगेश्वर! मैं उस महापुण्यशाली इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका वर्णन ब्रह्माके पुत्र महर्षि वसिष्ठने राजा वीरवाहनसे किया था।

प्राचीन समयकी बात है, विराधनगरमें वीरवाहन नामक एक धर्मात्मा, सत्यवादी, दानशील और विप्रोंको संतुष्ट करनेवाले राजा रहते थे। किसी समय वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। कुछ पूछनेकी जिज्ञासासे वे वसिष्ठमुनिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ आसन ग्रहण कर विनम्रतासे झुके हुए राजाने ऋषियोंकी संसदमें मुनिको नमस्कार करके पूछा।

**राजाने कहा**—हे मुने! मैंने यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक अनेक धार्मिक कृत्य किये हैं, फिर भी यमराजके कठोर शासनको सुनकर मैं हृदयमें बहुत ही भयभीत

हूँ। हे कृपानिधान! महाभाग! ऋषिवर! मुझे यम, यमदूत और देखनेमें अतिशय भयंकर लगनेवाले नरकलोकोंको न देखना पड़े, ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा करें।

**वसिष्ठने कहा**—हे राजन्! शास्त्रवेत्ता अनेक प्रकारके धर्मोंका वर्णन करते हैं, किंतु कर्ममार्गसे विमोहित जन सूक्ष्मतया उनको नहीं जानते। दान, तीर्थ, तपस्या, यज्ञ, संन्यास तथा पितृक्रिया आदि सभी धर्म हैं, उन धर्मोंमें भी वृषोत्सर्गका विशेष महत्त्व है। मनुष्यको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी पुत्र गया-तीर्थमें जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ यथाविधि छोड़े तो जाने-अनजाने किये गये ब्रह्महत्या आदि पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। यह शुद्धि नील वर्णके वृषभका उत्सर्ग अथवा समुद्रमें स्नान करनेसे भी हो सकती है। हे राजेन्द्र! जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, उसका प्रेतत्व स्थिर ही रहता है। मात्र श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होगा? जिस-किसी भाँति नगर अथवा तीर्थमें वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये।

हे खगेश! वृष-यज्ञके द्वारा प्रेतत्वसे मुक्ति प्राप्त होती है, अन्य साधनोंसे नहीं। जो वृषभ शुभ लक्षणोंसे समन्वित युवा तथा कृष्ण गल-कम्बलवाला हो और सदैव जो गायोंके झुंडमें घूमनेवाला हो, उस वृषभको विधि-विधानसे चार अथवा दो या एक बछियाके साथ पहले उसका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर माङ्गलिक द्रव्यों एवं मन्त्रोंके साथ उन सबका उत्सर्ग किया जाय। '**इहरतीति०***' इन छः मन्त्रोंसे अग्निदेवको आहुति देनी चाहिये। कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमा, संक्रान्ति, अन्य पुण्यकाल, व्यतिपात तथा तीर्थमें और पिताकी क्षयतिथि वृषोत्सर्गके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त मानी जाती है। 'जो वृषभ लाल वर्णका हो और उसका मुँह-पूँछ पाण्डु (श्वेत-पीतमिश्रित) हो, खुर और सींगोंका वर्ण पीत हो, वह नीलवृषभ कहा जाता है'—

**लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः॥**
**पीतः खुरविषाणेषु स नीलो वृष उच्यते।**

(६।१९-२०)

जो वृषभ श्वेत वर्णका होता है वह ब्राह्मण है, जो लोहित वर्णका है वह क्षत्रिय है, जो पीत वर्णका है वह वैश्य है और जो कृष्ण वर्णका है वह शूद्र है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णको अपने वर्णके अनुसार वृषोत्सर्ग करना चाहिये अथवा रक्तवर्णका ही वृषभ सबके लिये कल्याणप्रद है।

पिता, पितामह तथा प्रपितामह पुत्रके उत्पन्न होनेपर यही आशा करते हैं कि यह मेरे लिये वृषोत्सर्ग करेगा। वृषोत्सर्गके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

**धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्ददायकः॥**
**अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।**
**गङ्गायमुनयोः पेयमन्तर्वेदि तृणं चर॥**
**धर्मराजस्य पुरतो वाच्यं मे सुकृतं वृष।**

(६।२३—२५)

हे धर्म! आप इस वृषभरूपमें संसारको आनन्द प्रदान करनेवाले देव हैं। आप ही अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं। अतः मुझे शान्ति प्रदान करें। आप गङ्गा-यमुनाका जल पियें। अन्तर्वेदीमें घास चरें और हे वृष! धर्मराजके सामने मेरे पुण्यकर्मकी चर्चा करें।

इस प्रकारका निवेदन करते हुए संस्कर्ताको चाहिये कि वृषभके दाहिने कन्धेपर त्रिशूल और

* ॐ इह रतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह रमध्वं स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह धृतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह स्वधृतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् स्वाहा इदमग्नये। ॐ रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा इदमग्नये। (यजु० ८।५१)

बायें ऊरुभागमें चक्रका चिह्न अंकित करके गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदिसे बछियाके सहित उस वृषभकी पूजा करके विधिवत् बन्धनमुक्त कर दे।

**वसिष्ठजीने कहा**—हे राजन्! आप भी विधिवत् वृषोत्सर्ग करें, अन्यथा सभी साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी आपको सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती है। राजन्! पहले त्रेतायुगमें विदेहनगरमें धर्मवत्स नामका एक ब्राह्मण था, जो अपने वर्णानुसार कर्ममें अहर्निश निरत, विद्वान्, विष्णुभक्त, अत्यन्त तेजस्वी और यथालाभसे संतुष्ट रहता था। एक बार पितृपर्वके आनेपर वह कुश लेनेके लिये वनमें गया। वहाँ इधर-उधर घूमता हुआ वह कुश और पलाशके पत्तोंको एकत्र करने लगा। एकाएक वहाँपर देखनेमें अत्यन्त सुन्दर चार पुरुष आये और उस ब्राह्मणको पकड़कर आकाशमार्गसे लेकर चले गये। वे चारों पुरुष उस दीन, व्यथित ब्राह्मणको पकड़कर बहुत-से वृक्षोंवाले घनघोर वन, पर्वतोंके दुर्गोंको पार कराते हुए एक वनसे दूसरे वनके मध्य ले गये। हे राजन्! वहाँपर उस ब्राह्मणने एक बहुत बड़ा नगर देखा। वह नगर मुख्यद्वारसे समन्वित तथा अनेक प्रासादोंसे सुशोभित हो रहा था। चबूतरा, बाजार, खरीदी-बेची जानेवाली वस्तुओं और नर-नारीसे युक्त उस नगरमें तुरहियोंकी ध्वनि हो रही थी। वीणा और नगाड़े बज रहे थे। वहाँ कुछ भूखसे पीड़ित, दीन-हीन, पुरुषार्थसे रहित लोगोंको भी उसने देखा। उसके बाद अत्यन्त मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्रोंको पहने हुए लोग दिखायी पड़े। आगे हृष्ट-पुष्ट स्वर्णाभूषणसे अलंकृत सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए कुछ ऐसे लोग थे, जो देवताओंके समान शोभासम्पन्न थे; जिनको देखकर वह विस्मयाभिभूत हो उठा। वह सोचने लगा कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? अथवा यह कोई माया है? या मेरे मनका यह विभ्रम है? वह ब्राह्मण इस प्रकारकी शंका कर ही रहा था कि वे चारों पुरुष उसको लेकर राजाके पास गये। स्वर्णजटित उस राजप्रासादके बीच स्थित राजाको वह ब्राह्मण एकटक देखता ही रह गया। वहाँपर एक महादिव्य सिंहासन था, जहाँ छत्र और चँवर डुलाये जा रहे थे। उसके ऊपर स्वर्णनिर्मित मुकुट धारण किया हुआ महान् शोभा-सम्पन्न राजा बैठा हुआ था। वन्दीजन उसका गुणगान कर रहे थे।

राजा उस ब्राह्मणको देखकर खड़ा हो गया और उसने मधुपर्क तथा आसनादि प्रदान कर उनकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर वह राजा उन विप्रदेवसे इस प्रकार कहने लगा—हे प्रभो! आज आप-जैसे धर्मपरायण विष्णुभक्तका दर्शन हुआ है, इससे मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा यह कुल भी पवित्र हो उठा। तदनन्तर राजाने उस ब्राह्मणको प्रणाम किया और बहुत प्रकारसे उनको संतुष्ट करके अपने दूतोंसे कहा—हे दूतो! ये ब्राह्मणदेव जहाँसे आये हुए हैं, पुनः तुम सब इन्हें वहीं ले जाकर पहुँचा आओ। ऐसा सुनकर उन ब्राह्मणश्रेष्ठने राजासे पूछा—

हे राजन्! यह कौन-सा देश है? यहाँपर ये उत्तम, मध्यम और अधम चरित्रवाले लोग कहाँसे आये हुए हैं? आप किस पुण्यके प्रभावसे यहाँ इन सबके बीच प्रधान पदपर विराजमान हैं? मुझको यहाँ किसलिये लाया गया और फिर क्यों वापस भेजा जा रहा है? यह सब स्वप्नके समान मुझे अनोखा दिखायी दे रहा है!

**इसपर राजाने कहा**—हे विप्रदेव! अपने धर्मका पालन करते हुए जो मनुष्य सदैव भगवान् हरिकी भक्तिमें अनुरक्त और इन्द्रियोंके विषयसे परे रहता है, वह मेरे लिये निश्चित ही पूज्य है। नित्य जो

प्राणी तीर्थोंकी यात्रा करनेमें ही लगा रहता है, जो वृषोत्सर्गके माहात्म्यको भलीभाँति जानता है और जो सत्य एवं दान-धर्मका पालक है, वह व्यक्ति देवताओंके लिये भी प्रणम्य है। हे परंतप! हे पूजार्ह! आपका दर्शन हम सभी प्राप्त कर सकें, इसलिये आपको यहाँ लाया गया था। हे देव! आप मुझपर प्रसन्न हों और मुझे इस साहसके लिये क्षमा करें। मैं स्वयं अपने सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। इस वृत्तान्तका वर्णन मेरा यह विपश्चित् नामवाला मन्त्री करेगा। राजाका वह मन्त्री सब वेदोंको जाननेवाला विद्वान् व्यक्ति था। अतः अपने स्वामीकी हार्दिक इच्छाको जानकर वह कहने लगा—

हे विप्र! यह राजा पूर्वजन्ममें द्विज और देवताओंसे सुशोभित विराधनगरमें विश्वम्भर नामका एक वैश्य था। ऐसा मैंने सुना है। वैश्य-वृत्तिसे जीवनयापन करते हुए वह अपने परिवारका पालन करता था। नित्य गायोंकी सेवा तथा ब्राह्मणोंकी पूजा भी करता था। सत्पात्रको दान, अतिथिसेवा तथा अग्निहोत्र करना उसका नित्य धर्म था। सत्यमेधा नामकी पत्नीके साथ उसने विधिवत् गृहस्थाश्रमका संचालन किया। उसने स्मार्त कर्मके अनुष्ठानसे सभी लोकों तथा श्रौत कर्मोंसे देवताओंको जीत लिया था।

किसी समय जब वह वैश्य अपने भाइयोंके साथ बहुत-से तीर्थोंकी यात्रा कर अपने घर लौट रहा था, तब मार्गमें ही उसे लोमश ऋषिका दर्शन हो गया। उसने महर्षिके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। हाथ जोड़कर विनयावनत खड़े उस वैश्यसे करुणाके सागर महर्षि लोमशने पूछा—

हे भद्रपुरुष! ब्राह्मणों और अपने भाई-बन्धुओंके साथ आप कहाँसे आ रहे हैं? धर्मप्राण! आपको देखकर मेरा मन आर्द्र हो उठा है।

**इसपर विश्वम्भर वैश्यने उत्तर दिया**—मुनिवर! यह शरीर नश्वर है। मृत्यु प्राणीके सामने ही खड़ी रहती है—ऐसा जानकर अपनी धर्मपरायणा पत्नीके साथ मैं तीर्थयात्रामें गया था। तीर्थोंका विधिवत् दर्शन एवं प्रचुर धन-दान कर मैं अपने घरकी ओर वापस जा रहा था कि सौभाग्यवश आपका दर्शन हो गया।

**लोमशने कहा**—इस भारतवर्षकी पावन भूमिमें बहुत-से तीर्थ हैं। आपने जिन तीर्थोंकी यात्रा की है, उनका वर्णन मुझसे करें।

**वैश्यने कहा**—हे ऋषिवर! जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती नामक पवित्रतम नदियाँ एक साथ मिलकर प्रवाहित होती हैं, जहाँ ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्रने दशाश्वमेध-यज्ञ किया था उस तीर्थराज प्रयाग; जहाँ करुणानिधान देवदेवेश्वर शिव प्राणियोंके कानमें 'तारकमन्त्र' का उपदेश देते हैं उस मोक्षदायिनी काशी; पुलहाश्रम, फल्गुतीर्थ, गण्डकी, चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य, शिवतीर्थ, अनन्तक, गोप्रतारक, नागेश्वर, विन्दुसरोवर, मोक्षदायक राजीवलोचन भगवान् रामसे सुशोभित अयोध्या; अग्नितीर्थ, वायुतीर्थ, कुबेरतीर्थ, कुमारतीर्थ, सूकरक्षेत्र, भगवान् कृष्णसे अलंकृत मथुरा; पुष्कर, सत्यतीर्थ, ज्वालातीर्थ, दिनेश्वरतीर्थ, इन्द्रतीर्थ, पश्चिमवाहिनी सरस्वती तथा कुरुक्षेत्र जाकर मैंने दर्शन किया। उसके बाद मैं ताप्ती, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मलय, कृष्णवेणी, गोदावरी, दण्डकवन, ताम्रचूड, सदोदक और द्यावाभूमीश्वर तीर्थको देखकर पर्वतराज श्रीशैल पहुँचा। तदनन्तर महातेजस्वी भगवान् हरि स्वयं जहाँ श्रीरङ्ग नामसे निवास करते हैं, जहाँ महिषासुरमर्दिनी दुर्गा वेंकटी नामसे पुकारी जाती हैं, उस वेंकटाचलकी यात्रा मेरे द्वारा की गयी। तत्पश्चात् चन्द्रतीर्थ, भद्रवट, कावेरी, कुटिलाचल, अवटोदा, ताम्रपर्णी, त्रिकूट, कोल्लकगिरि, वसिष्ठतीर्थ,

ब्रह्मतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, महोदधि, हृषीकेश, विराज, विशाल और नीलाद्रि (जगन्नाथपुरी), भीमकूट, श्वेतगिरि, रुद्रतीर्थ तथा जहाँ तपस्या करके पार्वतीने भगवान् शिवका पतिरूपमें वरण किया था, उस उमावन तीर्थकी मैंने यात्रा की। साथ ही वरुणतीर्थ, सूर्यतीर्थ, हंसतीर्थ तथा महोदधि तीर्थकी यात्रा हुई, जहाँ स्नान करके काकोला (पहाड़ी कौआ) भी राजहंस बन जाता है, जहाँ स्नान मात्र करके एक राक्षसने देवत्व पद प्राप्त कर लिया था। उसके बाद विश्वरूप, वन्दितीर्थ, रत्नेश तथा कुहकाचल तीर्थ गया, जहाँ नरनारायणका दर्शन करके मनुष्य करोड़ों पापसे मुक्त हो जाता है। सरस्वती, दृषद्वती और नर्मदा नामक मनुष्योंके लिये कल्याणकारिणी नदियोंकी मैंने यात्रा की। भगवान् नीलकण्ठ, महाकाल, अमरकण्टक, चन्द्रभागा, वेत्रवती, वीरभद्र, गणेश्वर, गोकर्ण, बिल्वतीर्थ, कर्मकुण्ड और सतारक तीर्थोंमें जाकर आपकी कृपासे मैं अन्य तीर्थोंमें भी गया जहाँ मात्र स्नान करके मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

हे मुने! साधुजनोंकी जो कृपा है, वह प्राणियोंमें कल्याणकारिणी बुद्धिको जन्म देती है। एक ओर तो सभी तीर्थ हैं और दूसरी ओर करुणापूर्ण साधुजन प्राणियोंके कल्याणका उनपर कृपा करनेका व्रत धारण कर वे इतस्ततः परिभ्रमण करते रहते हैं—

**उत्पद्यते शुभा बुद्धिः साधूनां यदनुग्रहः।**
**एकतः सर्वतीर्थानि करुणाः साधवोऽन्यतः॥**
**अनुग्रहाय भूतानां चरन्ति चरितव्रताः।**

(६।७७-७८)

हे प्रभो! आप सभी वर्णोंके गुरु हैं तथा विद्या एवं वयमें श्रेष्ठ हैं। अतः मैं आपसे उस आधिभौतिक स्वरूपके विषयमें पूछ रहा हूँ, जो चिरंतन कालसे चला आ रहा है। मैं क्या करूँ? किससे पूछूँ? मेरा मन अत्यन्त चञ्चल हो उठा है। यह ब्रह्मके विषयमें तो निस्पृह रहता है, पर विषयोंमें अति लालायित है। यह रंचमात्र भी उस अज्ञानरूपी अन्धकारका विछोह सहन नहीं कर सकता है। हे विप्रदेव! कर्मोंका जो श्रेष्ठतम क्षेत्र है, वह अनेक प्रकारके भावोंसे व्यामोहित है। ज्ञानसम्पन्न व्यक्तिके पास जिस प्रकारसे शान्ति आ जाती है, विवेकवान् श्रेष्ठ मनुष्य जिस प्रकार अन्तर्बाह्य दोनों स्थितियोंमें शुद्धताको प्राप्त कर लेता है वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

**ऋषिने कहा**—हे वैश्यवर्य! यह मन अत्यन्त बलवान् है। यह नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है। तथापि जैसे पीलवान मतवाले हाथीको भी वशमें कर लेता है वैसे ही सत्संगतिसे, आलस्यरहित होकर साधन करके, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्विचारके द्वारा अपने मनको वशमें कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें तुम्हें विश्वास हो जाय, इसलिये मैं एक इतिहास बता रहा हूँ, जो नारदके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे जुड़ा हुआ है, जिसको स्वयं उन्होंने ही मुझसे कहा था।

**नारदजीने मुझसे कहा**—हे मुने! मैं प्राचीनकालमें किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणका दासीपुत्र था। वहींपर मुझे महान् पुण्यात्माओंकी सत्संगति प्राप्त करनेका सुअवसर भी मिला। एक बार वर्षाकालमें भाग्यवश मेरे घर साधुजन ठहरे हुए थे। मेरे द्वारा विनम्रतापूर्वक बराबर की गयी सेवासे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन लोगोंने मुझे उपदेश दिया था, जिसके प्रभावसे मेरी बुद्धि निर्मल और हितैषिणी बन गयी, जिससे अब मैं अपनेमें ही सबको विष्णुमय देखता हूँ।

**मुनियोंने नारदजीसे कहा**—हे वत्स! तुम सुनो। हम सब तुम्हारे हितमें कह रहे हैं, जिसको स्वीकार कर तदनुसार जीवनयापन करनेवाला प्राणी इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख प्राप्त

करता है। इस संसारमें अनेक प्रकारके देवता, पक्षी तथा मनुष्यादिकी योनियाँ हैं, जो कर्मपाशमें बँधी हुई हैं। वे सदैव पृथक्-पृथक् रूपसे कर्मफलोंका भोग करते हुए सत्त्वगुणसे देवत्व, रजोगुणसे मनुष्यत्व और तमोगुणसे तिर्यक् योनि प्राप्त करते हैं। वासनामें आबद्ध बुद्धिहीन प्राणी माताके गर्भसे बार-बार जन्म लेकर मृत्युका वरण करता है। इस प्रकार उन असंख्य योनियोंमें जाकर वह कभी दैवयोगसे ही मनुष्यकी दुर्लभ योनिको प्राप्त कर, महात्माओंकी कृपासे भगवान् हरिको जानकर तथा अपार भवसागरको रोगरूपी ग्राह और मोहरूपी पाशसे युक्त समझकर मुक्त हो जाता है। इस भवसागरको पार करनेके इच्छुक प्राणीके लिये राम-नाम-स्मरणके अतिरिक्त अन्य कोई साधन हमें दिखायी नहीं देता है। जैसे दहीका मन्थन करनेसे नवनीत और काष्ठका मन्थन करनेसे अग्नि प्राप्त होती है, वैसे ही आत्ममन्थन कर उस परमात्माको जो प्राणी जान लेता है, वह सुखी हो जाता है।

यह आत्मा नित्य, अव्यय, सत्य, सर्वगामी, सभी प्राणियोंमें अवस्थित और महान् है। यह अप्रमेय है। यह स्वयंमें ज्योतिस्वरूप एवं मनसे भी अग्राह्य है। यह वह तत्त्व है, जो सच्चिदानन्दरूप है और सभी प्राणियोंके हृदयमें विराजमान रहता है। भावोंके विनष्ट हो जानेपर भी कभी विनष्ट नहीं होता है। जिस प्रकार आकाश सभी प्राणियोंमें, तेज जलमें तथा वायु सभी पार्थिव पदार्थोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्मा सर्वत्र व्याप्त और निर्लेप है। भक्तोंपर कृपादृष्टि रखनेवाले भगवान् हरि साधुओंकी रक्षा करनेके लिये अवतरित होते हैं। यद्यपि वे निर्गुण हैं, फिर भी अज्ञानियोंको गुणवान् प्रतीत होते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकारकी ज्ञानवती बुद्धिसे अपने हृदयमें उस परमात्माका चिन्तन करता है, उसके भक्तियोगसे संतुष्ट होकर वे अजन्मा पुरुष परमात्मा उसको अपना दर्शन देते हैं। तत्पश्चात् वह भक्त कृतार्थ हो जाता है और सर्वदा सर्वत्र निष्कामभावसे बना रहता है। अतः बन्धनयुक्त इस शरीरमें अहंकारका परित्याग करके स्वप्नप्राय संसारमें ममता और आसक्तिसे रहित होकर संचरण करे। स्वप्नमें धैर्य कहाँ स्थिर रहता है? इन्द्रजालमें कहाँ सत्यता होती है? शरत्कालके मेघमें कहाँ नित्यता रहती है? वैसे ही शरीरमें सत्यता कहाँ रहती है? यह दृश्यमान समस्त चराचर जगत् अविद्या-कर्मजनित है। ऐसा जानकर तुम्हें आचारवान् योगी बनना चाहिये। उससे तुम सिद्धि प्राप्त कर सकते हो।

इस प्रकारका उपदेश देकर वे सभी दीन-हीन प्राणियोंपर वात्सल्य-भाव रखनेवाले साधु वहाँसे चले गये। तदनन्तर मैं (नारद) उनके द्वारा बताये गये मार्गसे उसी प्रकारका आचरण प्रतिदिन करता रहा। कुछ ही समयके पश्चात् मैंने अपने अन्तःकरणमें यह एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा कि शरत्कालीन चन्द्रमाके समान निर्मल, प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करनेवाला अद्भुत प्रकाशपुञ्ज प्रज्वलित हो रहा है। वह महातेज मुझे प्रचुर सुखसे सींचकर (अपने प्रति) अधिक स्पृहायुक्त बनाकर आकाशमें विद्युत्की भाँति अन्तर्हित हो गया। भक्तिपूर्वक मैं उस अनोखे ज्योतिपुञ्जका ध्यान करता हुआ समय आनेपर अपना शरीर छोड़कर विष्णुलोक चला गया।

हे ब्रह्मन्! उन्हीं प्रभुकी इच्छासे पुनः मेरा जन्म ब्रह्मासे हुआ। उन भगवान्की कृपासे ही मैं आज अनासक्त रहकर तीनों लोकोंमें बार-बार वीणा बजाते और गीत गाते हुए घूमता रहता हूँ।

अपना ऐसा अनुभव बताकर मुनि नारद मेरे पाससे मनोनुकूल दिशामें चले गये। उनकी उस बातसे मुझको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और बहुत संतोष भी मिला।

अतः सत्संगति तथा भगवद्भक्तिसे तुम्हारा विशुद्ध, निर्मल और शान्त स्वभाववाला मन सुखी हो जायगा। हे धर्मज्ञ! साधुसंगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया गया पाप शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे शरत्कालके आनेपर बरसात समाप्त हो जाती है—

**अतस्ते साधुसङ्गत्या भक्त्या च परमात्मनः॥**
**विशुद्धं निर्मलं शान्तं मनो निर्वृतिमेष्यति।**
**अनेकजन्मजनितं पातकं साधुसङ्गमे॥**
**क्षिप्रं नश्यति धर्मज्ञ जलानां शरदो यथा।**

(६। १११—११३)

**वैश्यने कहा**—हे ऋषिराज! आपके इस वाक्यामृत-रसपानसे मेरे अन्तःकरणको शान्ति मिल गयी। आज आपके इस दर्शनसे मेरी समस्त तीर्थयात्राका फल प्रकट हो उठा है।

**यह सुनकर लोमशजीने कहा**—हे राजेन्द्र! धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गके फलकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे हितमें यह मानता हूँ कि वृषोत्सर्गके बिना जो बहुत-से सत्कर्म तुमने किये हैं, वे सब ओसकणोंके रूपमें पृथ्वीपर गिरे हुए जलके समान कुछ भी कल्याण करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते हैं। इस पृथ्वीतलपर वृषोत्सर्गके सदृश हितकारी कोई साधन नहीं है। इस श्रेष्ठकर्मको करनेवाले लोग अनायास पुण्यात्माओंकी सद्गति प्राप्त कर लेते हैं। वृषोत्सर्ग-कर्म जिसने किया है वह व्यक्ति और जो अश्वमेधयज्ञका कर्ता है, मेरी दृष्टिमें दोनों समान हैं। वे दोनों दिव्य शरीर प्राप्त करके इन्द्रदेवका सांनिध्य ग्रहण करते हैं। अतः तुम पुष्करतीर्थमें जाकर वृषोत्सर्ग-कर्मको सम्पन्न करो। हे साधु! उसके बाद ही तुम अपने घर जाओ, जिससे कि इस तीर्थ-यात्राका समस्त कृत्य भलीभाँति पूर्ण हो जाय।

**विपश्चित्ने कहा**—इसके बाद वह वैश्य यज्ञको पूर्ण करनेवाले वराहरूपी भगवान् जहाँ विद्यमान हैं, उस श्रेष्ठ पुष्करतीर्थमें गया और उसने कार्तिक पूर्णिमाके दिन ऋषिश्रेष्ठने जैसा कहा था, उस वृषोत्सर्ग-कर्मको विधिवत् सम्पन्न किया। इसके बाद लोमश ऋषिकी संगतिसे वह बहुत-से तीर्थोंमें गया। अधिक पुण्य नील (वृष)-विवाहसे उसको प्राप्त हुआ था। श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्य विषयोंको भोगनेके बाद उसका वीरसेनके राजकुलमें जन्म हुआ। इस जन्ममें उसको वीरपञ्चानन नामकी ख्याति प्राप्त हुई। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ चतुष्टयका एक अद्वितीय साधक था। वृषोत्सर्ग करते समय वहाँ जो नौकर-चाकर उपस्थित थे, वे भी गायकी पूँछके तर्पणके छींटोंका स्पर्श करके दिव्य रूप हो गये। जो दूरसे ही इस कार्यको देख रहे थे, वे लोग हृष्ट-पुष्ट हो गये और उनका स्वरूप कान्तिसे चमक उठा। इसके अतिरिक्त जो लोग इस सत्कर्मके भू-भागसे बहुत दूर थे, वे मलिन दिखायी दे रहे थे। वृषोत्सर्ग न देखते हुए जो लोग उसकी निन्दा करनेवाले थे, वे अभागे, दीन-हीन और व्यवहार आदिमें रूक्ष, कृश और वस्त्रविहीन हो गये। हे द्विज! मैंने भगवान् पराशरसे पूर्वजन्मसे सम्बद्ध इस राजाका अद्भुत और धार्मिक जो वृत्तान्त सुना था, उसका वर्णन आपसे कर दिया। इसलिये आप मेरे ऊपर कृपा करके अब अपने घर लौट जायँ। मन्त्रीके ऐसे वाक्योंको सुनकर वे ब्राह्मण अत्यधिक आश्चर्यचकित हो उठे। तदनन्तर राजसेवकोंके द्वारा उन्हें घरपर पहुँचा दिया गया।

**वसिष्ठने कहा**—हे राजन्! सभी कर्मोंमें वृषोत्सर्ग-कर्म श्रेष्ठतम है। अतः आप यदि यमराजसे भयभीत हैं तो यथाविधि वृषोत्सर्ग-कर्म ही करें।

हे राजश्रेष्ठ! वृषोत्सर्गके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा साधन नहीं है जो मनुष्यको

स्वर्ग-प्राप्तिकी सिद्धि प्रदान कर सके—

**वृषोत्सर्गसमं किञ्चित् साधनं न दिवः परम्।**

(६। १३०)

आपको मैंने धर्मका रहस्य बता दिया है। यदि पति-पुत्रसे युक्त नारी पतिके आगे मर जाती है तो उसके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं करना चाहिये, अपितु दूध देनेवाली गायका दान देना चाहिये*।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे खगेश! महर्षि वसिष्ठके उक्त वचनोंको सुनकर राजा वीरवाहनने मथुरामें जाकर विधिवत् वृषोत्सर्गका अनुष्ठान किया। तदनन्तर अपने घर पहुँचकर उसने अपनेको कृतार्थ माना। समय आनेपर जब उसकी मृत्यु हुई तब यमराजके दूत उसको लेकर कालपुरीकी ओर चले, किंतु उस नगरको पार करके मार्गमें जब वह अधिक दूर निकल गया तो उसने दूतोंसे पूछा कि श्राद्धदेवका नगर कहाँ है? तब दूतोंने उसको बताया कि जहाँ पापी लोग पापशुद्धिके लिये यमदूतोंके द्वारा नरकमें ढकेले जाते हैं, जहाँ धर्माधर्मकी विवेचना करनेवाले धर्मराज विराजमान रहते हैं, वहीं वह श्राद्धदेवपुर है। आप-जैसे पुण्यात्माओंके द्वारा वह नहीं देखा जाता है। उसी समय देव-गन्धर्वोंके सहित दिव्य रूपवाले धर्मराजने उस राजाके समक्ष अपनेको प्रकट किया। अपने सामने उपस्थित धर्मराजको देखकर राजाने बड़े ही आदरके साथ हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर उसने अनेक प्रकारसे गुण-कीर्तन करते हुए उन्हें संतुष्ट किया। धर्मराजने भी राजाकी प्रशंसा करके यही कहा—हे दूतो! तुम सब, इन्हें उस देवलोकमें ले जाओ, जहाँ प्रचुर भोगके साधन सुलभ हैं। राजा वीरवाहनने उस आदेशको सुनकर सामने ही स्थित धर्मराजसे पूछा—हे देव! मैं यह नहीं जानता हूँ कि आप मुझे किस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक ले जा रहे हैं।

**धर्मराजने कहा**—हे राजन्! तुमने दान-यज्ञादि अनेक पुण्यकार्योंको विधिवत् सम्पन्न किया है। वसिष्ठकी आज्ञा मान करके तुमने मथुरामें वृषोत्सर्ग भी किया है।

हे नरेश! यदि मनुष्य थोड़े भी धर्मका सम्यक्रूपसे पालन करता है तो वह ब्राह्मण और देवताओंकी कृपासे अधिकाधिक हो जाता है—

**धर्मः स्वल्पोऽपि नृपते यदि सम्यगुपासितः।**
**द्विजदेवप्रसादेन स याति बहुविस्तरम्॥**

(६। १४२)

ऐसा कहकर यमुनाके भ्राता उसी क्षण अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वीरवाहन स्वर्गमें जाकर देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिराज! मैंने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञका माहात्म्य विस्तारपूर्वक तुम्हें सुना दिया है। प्राणियोंके पापकर्मको समाप्त करनेवाले इस आख्यानको सुननेवाला व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है। (अध्याय ६)

## संतप्तक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा, सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! आपने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञसे प्राप्त होनेवाले फलसे सम्बन्धित जो आख्यान कहा, उसको मैंने सुन लिया है। अब आप पुनः किसी अन्य कथाका वर्णन करें, जिसमें आपकी अद्भुत महिमा निहित हो।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! अब मैं संतप्तक

* पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच्च पयस्विनीम्॥ (६। १३१)

नामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथाको बताता हूँ।

हे पक्षिन्! पूर्वकालमें संतप्तक नामक एक ब्राह्मण था, जिसने तपस्याके बलपर अपनेको पापरहित कर लिया था। यह संसार असार है, ऐसा जानकर वह वनोंमें वैखानस मुनियोंके द्वारा आचरित वृत्तिका पालन करते हुए अरण्यमें ही विचरण करता था। किसी समय उस ब्राह्मणने तीर्थ-यात्राको लक्ष्य बनाकर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। संसारके प्रति इन्द्रियाँ स्वतः आकृष्ट हो जाती हैं, इस कारणसे उसने अपनी बाह्य चित्तवृत्तियोंको भी रोक लिया था, किंतु पूर्व संस्कारोंके प्रभावसे वह मार्ग भूल गया और चलते-चलते मध्याह्नकाल हो गया, स्नानके लिये जलकी अभिलाषासे वह चारों ओर देखने लगा। उसे उस समय सैकड़ों गुल्म-लता और बाँसके वृक्षोंसे घिरा हुआ, वृक्षोंकी शाखाओंसे व्याप्त, घनघोर एक वन दिखायी पड़ा। वहाँ ताल, तमाल, प्रियाल, कटहल, श्रीपर्णी, शाल, शाखोट (सिहोरका वृक्ष), चन्दन, तिन्दुक, राल, अर्जुन, आमड़ा, लसोड़ा, बहेड़ा, नीम, इमली, बैर और कनैल तथा अन्य बहुत-से वृक्षोंकी सघनताके कारण पक्षियोंके लिये भी मार्ग नहीं दीखता था। फिर मनुष्यके लिये उस वनमें कहाँ मार्ग मिल सकता था? वह वन तो सिंह, व्याघ्र, तरक्षु (एक छोटी जातिका बाघ), नीलगाय, रीछ, महिष, हाथी, कृष्णमृग, नाग और बंदर तथा अन्यान्य प्रकारके हिंसक जीव-जन्तु, राक्षस एवं पिशाचोंसे परिव्याप्त था।

संतप्तक उस प्रकारके घनघोर भयावह वनको देखकर भयाक्रान्त हो उठा। भयभीत वह अब किस दिशामें जाय, इसका निर्णय नहीं कर सका। फिर जो होगा, देखा जायगा—यह सोचकर वह वहाँसे पुनः चल पड़ा। झींगुरोंकी झंकार तथा उल्लुओंकी धूतकार ध्वनियोंपर कान लगाये वह पाँच ही डग चला था कि सामने बरगदके वृक्षमें बँधा एक शव लटका हुआ उसे दिखायी दिया, जिसे पाँच महाभयंकर प्रेत खा रहे थे। हे खगेश! उन प्रेतोंके शरीरमें मात्र शिराओंसे युक्त हड्डी और चमड़ा ही शेष था। उनका पेट पीठमें धँसा हुआ था। नेत्ररूपी कुओंमें गिरनेके भयसे नासिकाने उनका साथ छोड़ दिया था। वसासे भरे हुए ताजे शवके मस्तिष्क-भागका स्वाद लेकर जो नित्य अपना महोत्सव मनाते थे और हड्डीकी गाँठोंको तोड़नेमें लगे हुए जिनके बड़े-बड़े दाँत किटकिटाते थे, ऐसे प्रेतोंको देखकर घबड़ाये हुए हृदयवाला वह ब्राह्मण वहीं ठिठक गया। उस निर्जन वनमें आ रहे ब्राह्मणको उन प्रेतोंने देख लिया था। अतः 'मैं उसके पास पहले जाऊँगा, मैं उसके पास पहले जाऊँगा'—इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धामें वे सभी प्रेत दौड़ पड़े। उनमेंसे दो प्रेतोंने इस ब्राह्मणके दोनों हाथ पकड़ लिये, दो प्रेतोंने दोनों पैर पकड़ लिये। एक प्रेत शेष बचा था, उसने इसका सिर पकड़ लिया। तदनन्तर वे सभी कहने लगे कि 'मैं इसे डकारूँगा, मैं इसे खाऊँगा।' ऐसा कहते हुए वे पाँचों प्रेत ब्राह्मणको खींचने लगे। फिर उसे साथ लेकर वे सहसा आकाशमें चले गये। किंतु उस बरगदपर शवका अभी कितना मांस शेष है और कितना नहीं, इस बातको भी वे सोच रहे थे। उसी समय उन लोगोंने देखा कि दाँतोंके द्वारा नोंचे जानेके कारण वह शव तो अभी फटी हुई आँतसे युक्त है। इसलिये वे आकाशसे नीचे उतर आये और शवको अपने पैरोंसे बाँधकर पुनः आकाशमें ही उड़ गये।

आकाशमें ले जाये जा रहे उस प्रेतरूपमें स्वयंको ही समझकर वह भयार्त ब्राह्मण पूर्ण मनसे मेरी शरणमें आ गया। देवाधिदेव, चिन्मय,

सुदर्शनचक्रधारी मुझ हरिको प्रणाम कर वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—

जिन भगवान्‌ने अपने चक्रके प्रहारसे ग्राहके मुखको विदीर्णकर उसके दुःखको नष्ट किया था, जो ग्राहके मुखमें फँसे हुए गजराजको मुक्त करानेवाले हैं, वे श्रीहरि मेरे कर्मपाशको काटकर मुझे मुक्त करें। मगधनरेश जरासन्धने निर्दोष राजाओंको बंदी बनाकर कारागारमें डाल दिया था, जिन मुरारि श्रीकृष्णने राजसूययज्ञके लिये पाण्डुपुत्र भीमसेनके द्वारा उस दुष्टको मल्लयुद्धमें मरवाकर राजाओंको मुक्त किया था। वे इस समय मेरे कर्मपाशको काटकर मेरा दुःख दूर करें।

हे गरुड! उस समय दत्तचित्त होकर जब वह मेरी स्तुतिमें लग गया तो उसे सुनते ही मैं भी उठ खड़ा हुआ और सहसा वहाँ जा पहुँचा, जहाँ प्रेत उसको लेकर जा रहे थे। उन लोगोंके द्वारा ले जाते हुए उस ब्राह्मणको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। कुछ कालतक बिना पूछे मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। मेरी संनिधिमात्रसे उस ब्राह्मणको पालकीमें सोये हुए राजाके समान सुख प्राप्त हुआ। इसके बाद मैंने मार्गमें सुमेरु पर्वतपर जा रहे मणिभद्र नामक यक्षराजको देखा। मैंने नेत्रोंके संकेतसे उन्हें अपने पास बुलाया और कहा—हे यक्षराज! तुम इस समय इन प्रेतोंको विनष्ट करनेके लिये प्रतिद्वन्द्वी योद्धा बन जाओ। युद्धमें इन्हें मारकर इस शवको अपने अधिकारमें करो।

ऐसा सुनते ही उस मणिभद्रने प्रेतोंको दुःख पहुँचानेवाले प्रेतरूपको धारण कर लिया। दोनों भुजाओंको फैलाकर ओठोंको जीभसे चाटते हुए और अपनी लम्बी-लम्बी निःश्वासोंसे उन प्रेतोंको दहलाते हुए वह मणिभद्र उनके सम्मुख जाकर डट गया। उसने दोको अपनी दोनों भुजाओंसे, दोको दोनों पैरोंसे और एकको सिरसे पकड़ लिया। उसके बाद अपने शक्तिशाली मुक्केसे उन प्रेतोंपर ऐसा प्रहार किया कि वे सभी विवर्णमुख हो गये। वे उस ब्राह्मण तथा शवको एक हाथ और एक पैरसे पकड़कर युद्ध करने लगे। उन लोगोंने अपने नख-थप्पड़, लात एवं दाँतोंसे उसपर प्रहार किये, पर मणिभद्रने उनके प्रहारको विफल कर उनसे शवको ले लिया। उस यक्षके द्वारा शवको छीन लिये जानेपर पारियात्र पर्वतपर उस ब्राह्मणको छोड़कर वे सभी प्रेत अत्यन्त उत्साहसे भरे हुए पुनः प्रेतरूप मणिभद्रकी ओर दौड़ पड़े। क्षणमात्रमें ही उन लोगोंने वायुके समान द्रुतगामी मणिभद्रको घेर लिया, किंतु वह अदृश्य हो गया। ऐसी स्थिति देखकर हताश होकर वे प्रेत उस ब्राह्मणके पास जा पहुँचे। उस पर्वतपर पहुँचकर उन लोगोंने ब्राह्मणको ज्यों ही मारना प्रारम्भ किया, त्यों ही मेरी उपस्थिति और ब्राह्मणके प्रभावसे तत्काल उनमें पूर्वजन्मकी स्मृति जाग्रत् हो उठी। इसके बाद ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके उन प्रेतोंने ब्राह्मणश्रेष्ठसे कहा—हे विप्रदेव! आप हमें क्षमा करें। उनके दीन वचनोंको सुनकर ब्राह्मणने पूछा—आप लोग कौन हैं? यह क्या कोई माया है अथवा यह मैं स्वप्न देख रहा हूँ या यह मेरे चित्तका विभ्रम है?

**प्रेतोंने कहा**—हम सब प्रेत हैं और पूर्वजन्मके

दुष्कर्मोंके प्रभावसे इस योनिको प्राप्त हुए हैं।

**ब्राह्मणने कहा**—हे प्रेतो! तुम्हारे क्या नाम हैं? तुम सब क्या करते हो? तुम्हें कैसे इस दशाकी प्राप्ति हुई? पहले मेरे प्रति तुम लोगोंका व्यवहार कैसे अविनयी था और इस समय कैसे विनयी हो गया है।

**प्रेतोंने कहा**—हे द्विजराज! आप यथाक्रम अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनें। हे योगिराज! हम आपके दर्शनसे निष्पाप हो गये हैं। हमारे नाम क्रमशः पर्युषित, सूचीमुख, शीघ्रग, रोधक और लेखक हैं।

**ब्राह्मणने कहा**—हे प्रेतो! पूर्वकर्मसे उत्पन्न प्रेतोंका नाम कैसे निरर्थक हो सकता है? तुम सब अपने इन विचित्र नामोंके विषयमें विस्तारसे मुझे बताओ।

**श्रीकृष्णने कहा**—ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर पृथक्-पृथक् रूपसे प्रेतोंने कहा—

**पर्युषितने कहा**—किसी समय मैंने श्राद्धके सुअवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित किया था, वह वृद्ध ब्राह्मण मेरे घर विलम्बसे पहुँचा। बिना श्राद्ध किये ही भूखके कारण मैंने उस पाकको खा लिया। कुछ पर्युषित (बासी) अन्न लाकर मैंने उस ब्राह्मणको दे दिया। मरनेपर मुझे उसी पापके कारण इस दुष्टयोनिकी प्राप्ति हुई। मैंने ब्राह्मणको जो बासी भोजन दिया था, उसीसे मेरा नाम पर्युषित हो गया।

**सूचीमुखने कहा**—किसी समय कोई ब्राह्मणी तीर्थस्नानके लिये भद्रवट तीर्थमें गयी। उसके साथ उसका पाँच वर्षीय पुत्र भी था, जिसके सहारे वह जीवित थी। मैं उस समय क्षत्रिय था। मैं उसके मार्गका अवरोधक बन गया और निर्जन वनमें मैंने राहजनी की। हे विप्र! उस लड़केके सिरपर मुष्टि-प्रहार कर मैंने दोनोंके वस्त्र और राहमें खाने योग्य सामान छीन लिया। वह लड़का प्याससे व्याकुल हो उठा था। अतः वह माताके पास स्थित जल लेकर पीने लगा। उस पात्रमें उतना ही जल था। मैंने उसको डाँटकर जल पीनेसे रोक दिया और स्वयं उस पात्रका सारा जल पी गया। भयसंत्रस्त, प्याससे व्याकुल उस बालककी वहींपर मृत्यु हो गयी। पुत्रशोकसे व्यथित उसकी माँने भी कुएँमें कूदकर अपना प्राण त्याग दिया। इसी पापसे मुझको यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है।

पर्वताकार शरीर होनेपर भी इस समय मैं सुईकी नोंकके समान मुखवाला हूँ। यद्यपि खाने योग्य पदार्थ मैं प्राप्त कर लेता हूँ, फिर भी यह मेरा सुईके छिद्रके समान मुख उसको खानेमें असमर्थ है। मैंने क्षुधाग्निसे जलते हुए ब्राह्मणीके बालकका मुँह बंद किया था, उसी पापसे मेरे मुँहका छिद्र भी सुईकी नोंकके समान हो गया है। इसी कारण मैं आज सूचीमुख नामसे प्रसिद्ध हूँ।

**शीघ्रगने कहा**—हे विप्रवर! मैं पहले एक धनवान् वैश्य था। उस जन्ममें अपने मित्रके साथ व्यापार करनेके लिये मैं एक दूसरे देशमें जा पहुँचा। मेरे मित्रके पास बहुत धन था। अतः उस धनके प्रति मेरे मनमें लोभ आ गया। अदृष्टके विपरीत होनेसे वहाँ मेरा मूल धन समाप्त हो चुका था। हम दोनोंने वहाँसे निकलकर मार्गमें स्थित नदीको नावसे पार करना प्रारम्भ किया। उस समय आकाशमें सूर्य लाल हो गया था। राहकी थकानसे व्याकुल मेरा वह मित्र मेरी गोदमें अपना सिर रखकर सो गया। उस समय लोभवश मेरी बुद्धि अत्यन्त क्रूर हो उठी। अतः सूर्यास्त हो जानेपर गोदमें सोये हुए अपने मित्रको मैंने जल-प्रवाहमें फेंक दिया। मेरे द्वारा नावमें किये गये उस कृत्यको अन्य लोग भी न जान सके। उस व्यक्तिके पास जो कुछ बहुमूल्य हीरे-जवाहरात, मोती तथा सोनेकी वस्तुएँ थीं, वह सब लेकर मैं शीघ्र ही उस

देशसे अपने घर लौट आया। घरमें वह सब सामान रखकर मैंने उस मित्रकी पत्नीके पास जाकर कहा कि मार्गमें डाकुओंने मेरे उस मित्रको मारकर सब सामान छीन लिया और मैं भाग आया हूँ। मैंने उससे फिर कहा कि हे पुत्रवती नारी! तुम रोना नहीं। शोकसे व्यथित उस स्त्रीने तत्काल घरके बन्धु-बान्धवोंकी ममताका परित्याग कर अपने प्राणोंकी भेंट अग्निको यथाविधि चढ़ा दिया। उसके बाद निष्कण्टक स्थिति देखकर मैं प्रसन्नचित्त अपने घर चला आया। घर आकर जबतक मेरा जीवन रहा, तबतक उस धनका मैंने उपभोग किया। मित्रको नदीके जल-प्रवाहमें फेंककर मैं शीघ्र ही अपने घर लौट आया था, उसी पापके कारण मुझे प्रेतयोनि मिली और मेरा नाम शीघ्रग हो गया।

**रोधकने कहा**—हे मुनीश्वर! मैं पूर्व-जन्ममें शूद्र जातिका था। राजभवनसे मुझे जीवन-यापनके लिये उपहारमें बहुत बड़े-बड़े सौ गाँवोंका अधिकार प्राप्त था। मेरे परिवारमें बूढ़े माता-पिता थे और एक छोटा सगा भाई था। लोभवश मैंने शीघ्र ही अपने उस भाईको अलग कर दिया जिसके कारण अन्न-वस्त्रसे रहित उस भाईको अत्यधिक दुःख भोगना पड़ा। उसके दुःखको देखकर मेरे माता-पिता लुक-छिपकर कुछ-न-कुछ उसको दे देते थे। जब मैंने भाईको माता-पिताके द्वारा दी जा रही उस सहायताकी बात विश्वस्त पुरुषोंसे सुनी तो एक सूने घरमें माता-पिताको जंजीरसे रुद्ध कर दिया। कुछ दिनोंके बाद दुःखी उन दोनोंने विष पीकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली। हे द्विज! माता-पितासे रहित होकर मेरा भाई भी इधर-उधर भटकने लगा। ग्राम तथा नगरमें भटकता हुआ एक दिन वह भी भूखसे पीड़ित होकर मर गया। हे ब्राह्मण! मरनेके बाद उसी पापके कारण मुझे यह प्रेतयोनि मिली। माता-पिताको मैंने बंदी बनाया था, इसी कारण मेरा नाम रोधक पड़ा।

**लेखकने कहा**—हे विप्रदेव! मैं पूर्वजन्ममें उज्जैन नगरका ब्राह्मण था। वहाँके राजाने मेरी नियुक्ति देवालयमें पुजारीके पदपर की थी। उस मन्दिरमें विभिन्न नामवाली बहुत-सी मूर्तियाँ थीं। स्वर्णनिर्मित उन प्रतिमाओंके अङ्गोंमें बहुत-सा रत्न भी लगा हुआ था। उनकी पूजा करते हुए मेरी बुद्धि पापासक्त हो गयी। अतः मैंने एक तेज धारवाले लोहेसे उन मूर्तियोंके नेत्रादिसे रत्नोंको निकाल लिया। क्षत-विक्षत और रत्नरहित नेत्रोंको देखकर राजा प्रज्वलित अग्निके समान क्रोधसे तमतमा उठा। उसके बाद राजाने यह प्रतिज्ञा की कि चोर चाहे श्रेष्ठ ब्राह्मण ही क्यों न हो यदि उसने मूर्तियोंसे रत्न और सोना चुराया होगा तो ज्ञात होनेपर निश्चित ही मेरे द्वारा मारा जायगा। वह सब सुनकर मैंने रात्रिमें तलवार उठायी और राजाके घरमें जाकर उसका पशुकी तरह वध कर दिया। तदनन्तर चुरायी गयी मणियों तथा सोनेको लेकर मैं रात्रिमें ही अन्यत्र जाने लगा, किंतु मार्गमें स्थित घनघोर जंगलमें एक व्याघ्रने मुझे मार डाला। मैंने लोहेसे प्रतिमा-छेदन एवं काटनेका जो कार्य किया था, उस पापसे आज मैं लेखक नामका प्रेत हूँ। नरकभोग करनेके पश्चात् मुझे यही प्रेत-योनि प्राप्त हुई।

**ब्राह्मणने कहा**—हे प्रेतगणो! आप लोगोंने अपनी जैसी दशाएँ बतायी हैं, वैसे ही आप सबके नाम भी हैं। वर्तमान समयमें तुम लोगोंका आचरण और आहार क्या है? उसको भी मुझे बताओ।

**प्रेतोंने कहा**—हे द्विजराज! जहाँपर वेदमार्गका अनुसरण होता है, जहाँ लज्जा, धर्म, दम, क्षमा, धृति और ज्ञान—ये सब रहते हैं, वहाँ हम सब वास नहीं करते। जिसके घरमें श्राद्ध तथा तर्पणका

कार्य नहीं किया जाता, उसके शरीरसे मांस और रक्त बलात् अपहृत करके हम उसे पीड़ा पहुँचाते हैं। मांस खाना और रक्त पीना यही हमारा आचरण है। हे निष्पाप! सभी लोगोंके द्वारा निन्दनीय हमारे आहारको सुनें। कुछ तो आपने देख लिया है और जो आपको मालूम नहीं है, उसको हम बता रहे हैं। हे विप्र! वमन, विष्ठा, कीचड़, कफ, मूत्र और आँसुओंके साथ निकलनेवाला मल, हमारा भक्ष्य और पान है। इसके आगे न पूछें, क्योंकि अपने आहारको बताते हुए हमें बहुत लज्जा आ रही है। हे स्वामिन्! हम सब अज्ञानी, तामसी, मन्दबुद्धि और भयसे भागनेवाले हैं। हे विप्र! हममें पूर्वजन्मकी स्मृति एकाएक आ गयी है। अपने विनय या अविनयके संदर्भमें हम कुछ नहीं जानते हैं।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! प्रेतोंके ऐसा कहने एवं ब्राह्मणके सुननेके समय मैंने उन्हें दर्शन दिया। हृदयमें निवास करनेवाले अन्तर्यामी पुरुषके स्वरूपको सामने देखकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और स्तुतियोंसे मुझे संतुष्ट किया। आश्चर्यसे उत्फुल्ल नेत्रवाले उन प्रेतोंने तपस्या की। हे खगराज! प्रेमाधिक्य होनेसे उनकी वाणी रुक गयी। उस समय उनके मुखसे कुछ भी नहीं निकल पा रहा था। स्खलित वाणीमें वह ब्राह्मण कहने लगा—

हे प्रभो! आप कृपा करके रजोगुणके कारण घोर चित्तवाले और तमोगुणसे मूढ चित्तवाले प्राणियोंका उद्धार करते हैं। आपको नमस्कार है।

ब्राह्मणने जैसे ही यह कहा, उसी समय मेरी इच्छासे अत्यन्त तेजस्वी, श्रेष्ठ आकाशचारी गन्धर्व एवं अप्सराओंसे युक्त छः विमान वहाँ आ पहुँचे। उन विमानोंकी प्रभासे वह पर्वत चतुर्दिक् आलोकित हो गया। उन पाँचोंके साथ वह ब्राह्मण विमानपर चढ़कर मेरे लोकको चला गया। (अध्याय ७)

# और्ध्वदैहिक क्रियाके अधिकारी तथा जीवित-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि

**गरुडने कहा**—हे स्वामिन्! इस सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कार्यको सम्पन्न करनेका अधिकारी कौन है? यह क्रिया कितने प्रकारकी है? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे खगेश! [जो मनुष्य मर जाता है, उसका और्ध्वदैहिक कार्य] पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सभीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातृकुल एवं पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। यदि मनुष्यने इच्छापूर्वक अपने सभी सगे-सम्बन्धियोंसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है तो उसका और्ध्वदैहिक कार्य राजाको कराना चाहिये।

यह क्रिया तीन प्रकारकी है, जिनको पूर्व, मध्यम एवं उत्तर क्रियाओंकी संज्ञा दी गयी है। हे पक्षिन्! इस क्रियाको प्रतिसंवत्सर एकोद्दिष्ट-विधानसे करना अपेक्षित है। इस श्राद्ध-क्रियाके फलको तुम मुझसे सुनो।

ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसु, मरुद्गण, विश्वेदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, मातृगण और इनके अतिरिक्त जो भी प्राणी इस संसारमें उत्पन्न हैं, उन सभीको श्रद्धापूर्वक किये जा रहे श्राद्धसे मनुष्य प्रसन्न कर सकता है। ऐसे श्राद्धसे तो सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हो

उठता है। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा किये गये श्राद्धसे संतृप्त हो जाते हैं, वे श्राद्धकर्ताको पुत्र, स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं। हे गरुड! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें अधिकार और क्रिया-भेदका निरूपण किया।

**गरुडने कहा**—हे देवश्रेष्ठ! यदि पहले कहे गये अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

**श्रीकृष्णने कहा**—जब अधिकारी व्यक्ति न हो और न तो किसीके अधिकारका निश्चय ही हो रहा हो तो वैसी स्थितिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें ही जीवित-श्राद्ध कर लेना चाहिये। उपवासपूर्वक स्नान करके भगवान् कृष्णके प्रति आसक्त-हृदय होकर मनुष्य एकाग्र मनसे उस कर्ता, भोक्ता, सर्वेश्वर विष्णुकी पूजा करे। उसके बाद वह अपने पितृगणोंके लिये तिल एवं दक्षिणाके सहित तीन जलधेनु* '**ॐ पितृभ्यः स्वधा**' कहकर निवेदित करे और धेनुदान करते समय '**ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः**' तथा '**ॐ सोमाय त्वा पितृमते स्वधा नमः**' ऐसा स्मरण करता हुआ वह दक्षिणाभिमुख होकर दक्षिणासहित तीसरी जलधेनु देते समय विशेषरूपसे '**यमायाङ्गिरसे स्वधा नमः**' यह स्मरण करता रहे। भगवान् विष्णुके यजन एवं जलधेनुदानके मध्य ही ब्राह्मणोंका आवाहन करके उन्हें भोजन कराना चाहिये। वह पहली जलधेनु उत्तर दिशामें तथा दूसरी जलधेनु दक्षिण दिशामें रखे और उन दोनों धेनुओंके मध्यमें तीसरी धेनु रखकर आवाहन आदि श्राद्धसम्बन्धी कार्य करे। इस आवाहनादि क्रियाके पूर्वमें सर्वप्रथम आवाहनपूर्वक विश्वेदेवोंके प्रतिनिधिभूत ब्राह्मणोंकी भलीभाँति पूजा कर वह यह कहे—

**वसुभ्यस्त्वामहं विप्र रुद्रेभ्यस्त्वामहं ततः।**
**सूर्येभ्यस्त्वामहं विप्र भोजयामीति तान्वदेत्॥**
(८।१७)

तदनन्तर आवाहनादिक जो शेष कार्य हैं, उन्हें पितृ-शेष कार्योंकी तरह सम्पादित करे। उसके बाद वह वसुके उद्देश्यसे ब्राह्मणको एक सुशील धेनुका दान दे। तत्पश्चात् आग्नेय कोणमें रुद्रदेव तथा दक्षिण दिशामें सूर्यदेवके निमित्त स्थित ब्राह्मणोंको भी एक-एक गाय देनी चाहिये तथा विश्वेदेवोंके लिये तिलपूर्ण पात्रका निवेदन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको अक्षयोदक दान करना चाहिये एवं ब्राह्मण '**ॐ स्वस्ति**' इस प्रतिवचनसे श्राद्धकृत्यकी सम्पूर्णताका आशीर्वाद दें। इसके बाद अष्टाक्षर-मन्त्रसे भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए उनका विसर्जन करे।

इसके पश्चात् स्वस्थचित्त होकर कुलदेवी, ईशानी, शिव तथा भगवान् नारायणका स्मरण करे। तदनन्तर चतुर्दशी तिथिको सुगमतासे उपलब्ध होनेवाली श्रेष्ठ नदीके तटपर जाय। वहाँ वस्त्र तथा लौहखण्डोंका दान करे एवं '**ॐ जितं ते**' इस मन्त्रका जप करता हुआ स्वयं दक्षिणाभिमुख होकर अग्निको प्रज्वलित करे। तदनन्तर वह पचास कुशोंसे ब्राह्मीप्रतिकृति (पुत्तल) बना करके उसका दाह करे। इसके बाद श्मशानमें विहित होम करके अन्तमें पूर्णाहुतिकी क्रिया सम्पन्न करे। तत्पश्चात् निरग्नि भूमि, यम तथा रुद्रदेवका स्मरण करे। हवन करनेके बाद प्रधान स्थानपर उक्त देवोंका आवाहन करना चाहिये। उसके बाद वह अग्निमें मूँगमिश्रित चरु पकाये। तदनन्तर तिल-तण्डुल-मिश्रित दूसरा चरु पकाये।

'**ॐ पृथिव्यै नमस्तुभ्यं०**'—इस मन्त्रसे प्रथम चरु निवेदित करे। '**ॐ यमाय नमश्च०**' इस

* दानके लिये कृत्रिम धेनुका विधान है। इसे गोदानप्रसंगमें वराहपुराण आदिमें जलधेनुदानविधिके अन्तर्गत देखना चाहिये।

मन्त्रसे यमको द्वितीय चरु निवेदित करे। '**ॐ नमश्चाथ रुद्राय श्मशानपतये नमः**'—इस मन्त्रसे श्मशानपति रुद्रको निवेदित करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता सात नामवाले यमराजके लिये निम्न मन्त्रोंसे सात जलाञ्जलियाँ छोड़े—'**ॐ यमाय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ धर्मराजाय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ मृत्यवे स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ अन्तकाय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ वैवस्वताय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ कालाय स्वधा तस्मै नमः**' और '**ॐ सर्वप्राणहराय स्वधा तस्मै नमः।**'

इसके बाद श्राद्धकर्ता 'तुम सब अमुक-अमुक गोत्रसे सम्बन्धित हो, यह तिलोदक तुम्हारे लिये होवे'। ऐसा कहते हुए अर्घ्य-पुष्पसे युक्त दस पिण्ड-दान दे। उसके बाद उन्हें धूप, दीप, बलि, गन्ध तथा अक्षय जल प्रदान करे। उक्त दस पिण्डोंका दान देनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके सुन्दर सुभग मुखका ध्यान करना चाहिये।

इस कृत्यको करनेके बाद आशौचके अन्तमें प्रतिमास मासिक श्राद्ध और सपिण्डीकरण करना चाहिये। श्राद्ध चाहे अपने लिये हो या दूसरेके लिये यही नियम है। शक्ति, आरोग्य, धन और आयु— ये चारों अस्थिर होते हैं, अतः ऐसा जानकर जीवित-श्राद्ध करना चाहिये। मैंने इस जीवित-श्राद्धके विषयमें तुम्हें सब कुछ बता दिया है। (अध्याय ८)

# राजा बभ्रुवाहनकी कथा, राजाद्वारा प्रेतके निमित्त की गयी और्ध्वदैहिक क्रिया एवं वृषोत्सर्गसे प्रेतका उद्धार

**गरुडने कहा**—हे निष्पाप देव! आपने यह कहा कि जब मनुष्यकी और्ध्वदैहिक क्रियाको करनेवाला कोई न हो तो उस आद्य क्रियाको राजा सम्पन्न कर सकता है। प्राचीनकालमें क्या किसी राजाने किसी ऐसे व्यक्तिकी और्ध्वदैहिक आदि क्रिया सम्पन्न की थी?

**श्रीकृष्णने कहा**—हे सुपर्ण! तुम सुनो! जिस राजाने इस क्रियाको किया था, मैं उसके विषयमें कहूँगा। कृतयुगमें वंग देशमें बभ्रुवाहन नामका एक राजा था। हे पक्षीन्द्र! वह समुद्रसे चारों ओर घिरी हुई अपनी पृथ्वीकी धर्मानुसार भलीभाँति रक्षा करता था। उसने अपने जीवनकालमें इस सम्पूर्ण पृथ्वीका विधिवत् भोग किया। उसके शासनकालमें कोई भी पापी नहीं था। प्रजाओंको न तो चोरका भय था और न तो दुष्टजनोंके द्वारा किये गये उपद्रवोंका आतंक था। उसके राज्यकालमें किसी भी प्रकारके रोगका भी भय नहीं था। सभी अपने-अपने धर्ममें अनुरक्त थे। वह राजा तेजमें सूर्यकी भाँति, अक्षुब्धता (शान्ति)-में पर्वतके समान और सहिष्णुतामें पृथ्वीके सदृश था। किसी समय उस राजाने एक सौ घुड़सवार सैनिकोंको साथ लेकर मृगयाके लिये एक घने वनकी ओर प्रस्थान किया। उस समय योद्धाओंके सिंहनाद, शङ्ख तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिलकर निकले किलकिलाहटभरे शब्दोंसे वातावरण गूँज रहा था। वहाँ स्थान-स्थानपर चारों ओर उस राजाकी स्तुति हो रही थी। चलते-चलते उस राजाको नन्दनवनके समान एक वन दिखायी पड़ा। वह वन बिल्व, मंदार, खदिर, कैथ तथा बाँसके वृक्षोंसे परिव्याप्त था। ऊँचे, नीचे पर्वतोंसे चारों ओर घिरा हुआ था। जलरहित तथा निर्जन उस वनका विस्तार कई योजनका था। मृग, सिंह तथा अन्य महाभयंकर हिंसक जीव-जन्तु उसमें भरे हुए थे। अपने सेवक एवं सैनिकोंके साथ नाना प्रकारके मृगोंको मारते

हुए उस नरशार्दूलने खेल-ही-खेलमें उस वनको विक्षुब्ध कर दिया।

इसके बाद राजाने किसी एक मृगके कुक्षिभागमें बाणका प्रहार किया। आहत होकर भी वह मृग बड़ी तेजीसे दौड़ पड़ा। राजाने भी उस मृगका पीछा किया। अकेला अत्यधिक दूरी तय करनेके कारण थका हुआ भूख-प्याससे पीड़ित वह राजा उस वनको पार कर एक दूसरे घनघोर वनमें जा पहुँचा। अत्यन्त प्याससे क्षुब्ध होकर वह उस वनमें इधर-उधर जल खोजने लगा। हंस और सारस पक्षियोंके शब्दसे सूचित किये गये पूरचक्र नामक सरोवरपर जाकर उसने अश्वके साथ वहाँ स्नान किया। तदनन्तर उस सरोवरके लाल एवं नीले कमलोंके परागसे सुगन्धित शीतल जलको पीकर वह जलसे बाहर आया। मार्गमें अत्यधिक चलनेके कारण थके हुए राजाने उसी सरोवरके किनारे एक छायादार वटवृक्षको देखकर उसमें अपने घोड़ेको बाँध दिया। तत्पश्चात् आस्तरणको बिछाकर तथा ढालकी तकिया लगाकर क्षणभरमें ही शीतल मन्द वायुके सुखकी अनुभूति करता हुआ वह सो गया।

राजाके सोते ही वहाँ सौ प्रेतोंके साथ घूमता हुआ प्रेतवाहन नामक एक प्रेत आ पहुँचा। उसके शरीरमें मात्र अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष थीं। वह खाने-पीनेको खोजता हुआ धैर्य नहीं धारण कर पा रहा था। आहट पाकर राजाकी नींद खुल गयी। पहले कभी न देखे गये उस दृश्यको देखकर राजाने शीघ्र ही अपने धनुषपर बाण चढ़ा लिया। अपने सामने राजाको देखकर वह प्रेत भी स्थाणुके सदृश खड़ा रहा। उसको अवस्थित देखकर राजाके मनमें कौतूहल हो उठा। उन्होंने प्रेतसे पूछा कि तुम कौन हो? यहाँ कहाँसे आये हो? तुम्हें यह विकृत शरीर कैसे प्राप्त हुआ है?

**प्रेतने कहा**—हे महाबाहो! आपके इस संयोगसे मैंने अपना प्रेतभाव त्याग दिया है। मुझे अब परमगति प्राप्त हो गयी है। मेरे समान धन्य अन्य कोई नहीं है।

**बभ्रुवाहनने कहा**—यह वन सर्वत्र अत्यन्त भयानक है। इसमें मैं यह क्या देख रहा हूँ? हे पिशाच! यहाँ यह वन भी आँधीके झोंकोंसे ग्रस्त है। यहाँ पतंग, मशक, मधुमक्खी, कबन्ध, शिरी, मत्स्य, कच्छप, गिरगिट, बिच्छू, भ्रमर, सर्प, अधोमुखी हवाएँ चलती हैं, बिजलीकी आग जलती है, वायुके झोंकोंसे इधर-उधर तिनके हिल-डुल रहे हैं। यहाँ नाना प्रकारके जीव-जन्तु, हाथी तथा टिड्डियोंके बहुत प्रकारके शब्द सुनायी पड़ रहे हैं, किंतु कहींपर भी कोई दिखायी नहीं दे रहा है। यह सब विकृत स्थिति देखकर मेरा हृदय काँप रहा है।

**प्रेतने कहा**—राजन्! जिन प्राणियोंका अग्नि-संस्कार, श्राद्ध, तर्पण, षट्पिण्ड, दशगात्र, सपिण्डीकरण नहीं हुआ है, जो विश्वासघाती, मद्यपी और स्वर्णचोर रहे हैं, जो लोग अपमृत्युसे मरे हैं, जो ईर्ष्या करनेवाले हैं, जो अपने पापोंका प्रायश्चित्त नहीं करते हैं, जो गुरु आदिकी पत्नीके साथ गमन करते हैं, वे सभी प्राणी अपने कर्मोंके कारण भटकते हुए प्रेतरूपमें यहाँपर निवास करते हैं। इनको खान-पान बड़ा दुर्लभ है। ये अत्यधिक पीड़ित रहते हैं। हे राजन्! कृपया आप इनका और्ध्वदैहिक संस्कार करें। जिनके माता-पिता, पुत्र और भाई-बन्धु नहीं हैं, उनका और्ध्वदैहिक संस्कार राजाको स्वयं करना चाहिये। राजा इससे अपने पारलौकिक शुभ कर्मको भी सम्पन्न कर सकता है और वह सभी दुःखोंसे विमुक्त हो जाता है। इस कर्मसे सम्मानित होकर राजा अपनी दुर्गति दूर कर सकता है। इस संसारमें कौन किसका भाई

है, कौन किसका पुत्र है और कौन किसकी स्त्री है, सभी स्वार्थके वशीभूत हैं। उनमें मनुष्यको विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह अपने कर्मोंका स्वयं ही भोग करता है। धन घरमें छूट जाता है, भाई-बन्धु श्मशानमें छूट जाते हैं, शरीर काष्ठको सौंप दिया जाता है। जीवके साथ पाप-पुण्य ही जाता है—

**गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशाने चैव बान्धवाः॥**
**शरीरं काष्ठमादत्ते पापं पुण्यं सह व्रजेत्।**

(९।३६-३७)

अतः राजन्! अपने कल्याणकी इच्छासे आप इस नश्वर शरीरसे अविलम्ब प्रेतोंका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करें।

**राजाने कहा**—हे प्रेतराज! कृशकाय भयंकर नेत्रवाले तुम प्रेतके समान दिखायी देते हो। तुम प्रसन्न होकर अपना जैसा वृत्तान्त हो, वैसा सब कुछ मुझसे कहो। इस प्रकार पूछे जानेपर प्रेतने अपना सारा वृत्तान्त राजासे कहा।

**प्रेतने कहा**—हे नृपश्रेष्ठ! मैं प्रारम्भसे लेकर आजतकका सम्पूर्ण वृत्तान्त आपसे कह रहा हूँ। हे राजन्! सभी सम्पदाओंको सुखपूर्वक वहन करनेवाला, विभिन्न जनपदोंमें उत्पन्न नाना प्रकारके रत्नोंसे परिव्याप्त, अनेकानेक पुष्पोंसे सुशोभित वनप्रान्तवाला तथा विभिन्न पुण्यजनोंसे आवृत विदिशा नामक एक नगर था। सदैव देवाराधनमें अनुरक्त रहता हुआ मैं उसी नगरमें निवास करता था। मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हुआ था, उस जन्ममें सुदेव मेरा नाम था। मेरे द्वारा दिये गये 'हव्य'से देवता और 'कव्य'से पितृगण संतुष्ट रहते थे। मैंने नाना प्रकारके दान देकर ब्राह्मणोंको संतृप्त किया था। मेरा आहार-विहार सुनिश्चित था। दीन-हीन, अनाथ और विशिष्ट सत्पात्रोंको मैंने अनेक प्रकारसे सहायता पहुँचायी थी; किंतु दैवयोगसे वह सब निष्फल हो गया। मेरे न तो कोई संतान हुई, न कोई सगे बन्धु-बान्धव हैं और न वैसा कोई मित्र ही है, जो मेरा और्ध्वदैहिक कर्म कर सके। हे श्रेष्ठ राजन्! उसीसे मेरा यह प्रेतत्व स्थिर हो गया है।

हे भूपते! एकादशाह, त्रिपाक्षिक, षाण्मासिक, वार्षिक तथा जो मासिक श्राद्ध होते हैं, इन सभी श्राद्धोंकी कुल संख्या सोलह है। जिस मृतकके लिये इन श्राद्धोंका अनुष्ठान नहीं किया जाता है, उसका प्रेतत्व अन्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी स्थिर ही रहता है। हे महाराज! ऐसा जानकर आप मुझे इस प्रेतत्वसे मुक्ति प्रदान करायें। इस संसारमें राजा सभी वर्णोंका बन्धु कहा गया है। इसलिये आप मेरा निस्तार करें। हे राजेन्द्र! मैं आपको यह मणिरत्न दे रहा हूँ। जिस प्रकार मेरा कल्याण हो, मुझपर कृपा करके आप वैसा ही कार्य करें। मेरे निष्ठुर सपिण्डों और सगोत्रियोंने मेरे लिये वृषोत्सर्ग नहीं किया है, उसीसे मैं इस प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ हूँ। भूख-प्याससे आक्रान्त मैं खाने-पीनेके लिये कुछ नहीं पा रहा हूँ। उसीसे मेरे शरीरमें यह विकृति आ गयी है। शरीर कृश हो गया है। इसमें मांसतक नहीं रह गया है। भूख-प्याससे उत्पन्न इस महान् दुःखको मैं बार-बार भोग रहा हूँ। वृषोत्सर्ग न करनेके कारण यह कष्टकारी प्रेतत्व मुझे प्राप्त हुआ है। हे राजन्! हे दयासिन्धो! इसीलिये मैं प्रेतत्वनिवृत्तिके निमित्त आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। आप मेरा कल्याण करें।

**राजाने कहा**—हे प्रेत! मेरे कुलका कोई प्रेत हुआ है, यह मनुष्य कैसे जान सकता है। प्राणी इस प्रेतत्वसे कैसे मुक्त हो सकता है? यह सब तुम मुझे बताओ।

**प्रेतने कहा**—हे राजन्! लिङ्ग (चिह्नविशेष) और पीड़ाके कारण प्रेतयोनिका अनुमान लगाना चाहिये। इस पृथ्वीपर प्रेतद्वारा उत्पन्न की गयी जो

पीड़ाएँ हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ। जब स्त्रियोंका ऋतुकाल निष्फल हो जाता है, वंशवृद्धि नहीं होती है। अल्पायुमें ही किसी परिजनकी मृत्यु हो जाती है तो उसे प्रेतोत्पन्न पीड़ा माननी चाहिये। अकस्मात् जब जीविका छिन जाती है, लोगोंके बीच अपनी प्रतिष्ठा विनष्ट हो जाती है, एकाएक घर जलकर नष्ट हो जाता है तो उसे प्रेतजन्य पीड़ा ही मानें। जब अपने घरमें नित्य कलह हो, मिथ्यापवाद हो, राजयक्ष्मा आदि रोग उत्पन्न हो जायँ तो उसे प्रेतोद्भूत पीड़ा समझे। जब अपने प्राचीन अनिन्दित व्यापार-मार्गमें प्रयत्न करनेपर भी मनुष्यको सफलता नहीं मिलती है, उसमें लाभ नहीं होता है, अपितु हानि ही उठानी पड़ती है तो उस पीड़ाको भी प्रेतजन्य ही मानें। जब अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषि विनष्ट हो जाती है, व्यापारमें प्राणीकी जीविका भी चली जाती है, अपनी स्त्री अनुकूल नहीं रह जाती है तो उस पीड़ाको भी प्रेतसमुद्भूत माननी चाहिये। हे राजन्! इसी प्रकारकी अन्य पीड़ाओंसे आप प्रेतत्वका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हे राजेन्द्र! जब मनुष्य वृषोत्सर्ग करता है, तब जाकर वह प्रेतत्वसे मुक्त होता है। आपका इस कार्यमें अधिकार है, इसलिये कृपया आप मेरे उद्देश्यसे वृषोत्सर्ग करें। आप इस मणिरत्नको ग्रहण करें। इसीके धनसे मेरे लिये वृषोत्सर्ग करें। यह कार्य कार्तिककी पूर्णिमा अथवा आश्विनमासके मध्यकालमें करना चाहिये। हे राजन्! मेरा यह संस्कार रेवतीनक्षत्रसे युक्त तिथिमें भी हो सकता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके विधिवत् अग्निस्थापन तथा वेद-मन्त्रोंके द्वारा यथाविधान होम करें। बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलाकर इस रत्नसे प्राप्त हुए धनके द्वारा उन्हें भोजन करायें। ऐसा करनेसे मुझे मुक्ति प्राप्त हो सकेगी।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे खगेश! इसके बाद राजाने उस प्रेतसे 'ऐसा ही होगा', यह कहकर मणि ले ली। जो व्यक्ति धन ले लेता है, वह भी उस दाताकी क्रिया करनेका अधिकारी हो जाता है। प्रेतविषयक इस प्रकारकी वार्ता उन दोनोंके मध्य जिस समय चल रही थी, उसी समय देखते-ही-देखते वहाँ घण्टा और भेरियोंकी ध्वनि करती हुई राजाकी चतुरंगिणी सेना आ गयी। उस सेनाके आते ही प्रेत अदृश्य हो गया। उसके बाद उस वनसे निकलकर राजा अपने नगर चला आया। तदनन्तर उसने कार्तिक-मासकी पूर्णिमा तिथि आनेपर उस प्राप्त हुई मणिके धनसे प्रेतत्वनिवृत्तिके लिये विधिवत् वृषोत्सर्ग किया। हे गरुड! उस संस्कारके पूर्ण होते ही वह प्रेत भी तत्काल सुवर्ण देहसे सुशोभित हो उठा और उसने राजाको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उस राजाकी प्रशंसा करते हुए प्रेतने कहा—हे देव! यह सब आपकी महिमा है। इस प्रकार राजाके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए वह स्वर्गलोकको चला गया। जिस प्रकार राजाके द्वारा किये गये संस्कारसे वह प्रेत अपने प्रेतत्वसे मुक्त हुआ था, वह सब वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ९)

# श्राद्धान्नका पितरोंके पास पहुँचना, दृष्टान्तरूपमें देवी सीताद्वारा भोजन करते हुए ब्राह्मणके शरीरमें महाराज दशरथ आदिका दर्शन करना, मृत्युके अनन्तर दूसरे शरीरकी प्राप्ति, सत्कर्मकी महिमा तथा पिण्डदानसे शरीरका निर्माण

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! सपिण्डीकरण और वार्षिक श्राद्ध करनेके पश्चात् मृत व्यक्ति स्वकर्मानुसार देवत्व, मनुष्यत्व अथवा पक्षित्वको प्राप्त करता है। फिर भिन्न-भिन्न आहारवाले उन लोगोंके लिये किये गये श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन और होमसे उन्हें कैसे संतृप्ति होती है? अपने शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा प्राप्त हुई प्रेतयोनिमें स्थित वह प्राणी अपने सम्बन्धियोंसे प्राप्त उस भोज्य पदार्थका उपभोग कैसे करता है? श्राद्धकी आवश्यकता तो मैंने अमावास्यादि तिथियोंमें सुनी है। [यह बतलानेकी कृपा करें।]

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे पक्षिराज! श्राद्ध प्रेतजनोंको जिस प्रकारसे तृप्ति प्रदान करता है, उसे सुनो। मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है तो श्राद्धान्न अमृत होकर उसे प्राप्त होता है तथा वही अन्न गन्धर्व-योनिमें भोगरूपसे और पशुयोनिमें तृणरूपमें प्राप्त होता है। वही श्राद्धान्न नागयोनिमें वायुरूपसे, पक्षीकी योनिमें फलरूपसे और राक्षसयोनिमें आमिष बन जाता है। वही श्राद्धान्न दानव-योनिके लिये मांस, प्रेतके लिये रक्त, मनुष्यके लिये अन्न-पानादि तथा बाल्यावस्थामें भोगरस हो जाता है*।

**गरुडने कहा**—हे स्वामिन्! इस लोकमें मनुष्योंके द्वारा दिये गये हव्य-कव्य पदार्थ पितृलोकमें कैसे जाते हैं? उनको प्राप्त करानेवाला कौन है? यदि श्राद्ध मरे हुए प्राणियोंके लिये भी तृप्ति प्रदान करनेवाला है तो बुझे हुए दीपकका तेल भी उसकी लौको बढ़ा सकता है। मरे हुए पुरुष अपने कर्मानुसार गति प्राप्त करते हैं तो अपने पुत्रके द्वारा दिये गये पुण्य कर्मोंके फल वे कैसे प्राप्त कर सकेंगे?

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे तार्क्ष्य! प्रत्यक्षकी अपेक्षा श्रुतिका प्रमाण बलवान् होता है। श्रुतिसे प्राप्त हुए ज्ञानका स्वरूप अमृतादिके समान होता है। श्राद्धमें उच्चरित पितरोंके नाम तथा गोत्र हव्य-कव्यके प्रापक हैं। भक्तिपूर्वक पढ़े गये मन्त्र श्राद्धके प्रापक होते हैं। हे सुपर्ण! ये अचेतन मन्त्र कैसे उस श्राद्धको प्राप्त करा सकते हैं, इस विषयमें तुम्हें संशय नहीं रखना चाहिये। अस्तु, इसे समझनेके लिये मैं तुम्हें दूसरा प्रापक बता रहा हूँ। अग्निष्वात्त आदि पितृगण उन पितरोंके राजपदपर नियुक्त हैं। समय आनेपर विधिवत् प्रतिपादित अन्न, अभीष्ट पितृपात्रमें पहुँच जाता है। जहाँ वह जीव रहता है, वहाँ ये अग्निष्वात्त आदि पितृदेव ही अन्न लेकर जाते हैं। नाम-गोत्र और मन्त्र ही उस दान दिये गये अन्नको ले जाते हैं। शतशः योनियोंमें जो जीव जिस योनिमें स्थित रहता है उस योनिमें उसे

* देवो यदपि जातोऽयं मनुष्यः कर्मयोगतः॥
तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुयाति च। गान्धर्व्ये भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्॥
श्राद्धं हि वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति। फलं भवति पक्षित्वे राक्षसेषु तथामिषम्॥
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरं तथा। मनुष्यत्वेऽन्नपानादि बाल्ये भोगरसो भवेत्॥ (१०।४—७)

नाम-गोत्रके उच्चारणसे तृप्ति प्राप्त होती है। संस्कार करनेवाले व्यक्तिके द्वारा कुशाच्छादित पृथ्वीपर दाहिने कन्धेपर यज्ञोपवीत करके दिये गये तीन पिण्ड उन पितरोंको संतुष्टि प्रदान करते हैं।

पितर जिस योनिमें, जिस आहारवाले होते हैं, उन्हें श्राद्धके द्वारा वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है। गायोंका झुंड तितर-बितर हो जानेपर भी बछड़ा अपनी माताको जैसे पहचान लेता है, वैसे ही वह जीव जहाँ जिस योनिमें रहता है, वहाँ पितरोंके निमित्त ब्राह्मणको कराया गया श्राद्धान्न स्वयं उसके पास पहुँच जाता है—

**यदाहारा भवन्त्येते पितरो यत्र योनिषु।**
**तासु तासु तदाहारः श्राद्धान्नेनोपतिष्ठति॥**
**यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम्।**
**तथान्नं नयते विप्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते॥**

(१०।१९-२०)

पितृगण सदैव विश्वेदेवोंके साथ श्राद्धान्न ग्रहण करते हैं। ये ही विश्वेदेव श्राद्धका अन्न ग्रहण कर पितरोंको संतृप्त करते हैं। वसु, रुद्र, देवता, पितर तथा श्राद्धदेवता श्राद्धोंमें संतृप्त होकर श्राद्ध करनेवालोंके पितरोंको प्रसन्न करते हैं। जैसे गर्भिणी स्त्री दोहद (गर्भावस्थामें विशेष भोजनकी अभिलाषा)-के द्वारा स्वयंको और अपने गर्भस्थ जीवको भी आहार पहुँचाकर प्रसन्न करती है, वैसे ही देवता श्राद्धके द्वारा स्वयं संतुष्ट होते हैं और पितरोंको भी संतुष्ट करते हैं—

**आत्मानं गुर्विणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा।**
**दोहदेन तथा देवाः श्राद्धैः स्वांश्च पितॄन् नृणाम्॥**

(१०।२३)

'श्राद्धका समय आ गया है'—ऐसा जानकर पितरोंको प्रसन्नता होती है। वे परस्पर ऐसा विचार करके उस श्राद्धमें मनके समान तीव्रगतिसे आ पहुँचते हैं। अन्तरिक्षगामी वे पितृगण उस श्राद्धमें ब्राह्मणोंके साथ ही भोजन करते हैं। वे वायुरूपमें वहाँ आते हैं और भोजन करके परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। हे पक्षिन्! श्राद्धके पूर्व जिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया जाता है, पितृगण उन्हींके शरीरमें प्रविष्ट होकर वहाँ भोजन करते हैं और उसके बाद वे पुनः वहाँसे अपने लोकको चले जाते हैं—

**निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग।**
**प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥**

(१०।२६)

यदि श्राद्धकर्ता श्राद्धमें एक ही ब्राह्मणको निमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपार्श्वमें प्रपितामह और पृष्ठभागमें पिण्डभक्षक पितर रहता है। श्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। हे काश्यप! नरक भोगनेवाले भूख-प्याससे पीड़ित पितृजन अपने पूर्वजन्मके किये गये पापका पश्चात्ताप करते हुए अपने पुत्र-पौत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाषा करते हैं। अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको संतृप्त करना चाहिये।

**गरुडने कहा**—हे स्वामिन्! उस लोकसे आकर इस पृथ्वीपर श्राद्धमें भोजन करते हुए पितरोंको किसीने देखा भी है?

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे गरुत्मन्! सुनो—देवी सीताका उदाहरण है। जिस प्रकार सीताने पुष्करतीर्थमें अपने ससुर आदि तीन पितरोंको श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट हुआ देखा था, उसको मैं कह रहा हूँ।

हे गरुड! पिताकी आज्ञा प्राप्त करके जब श्रीराम वन चले गये तो उसके बाद सीताके साथ श्रीरामने पुष्कर-तीर्थकी यात्रा की। तीर्थमें पहुँचकर उन्होंने श्राद्ध करना प्रारम्भ किया। जानकीने एक

पके हुए फलको सिद्ध करके रामके सामने उपस्थित किया। श्राद्धकर्ममें दीक्षित प्रियतम रामकी आज्ञासे स्वयं दीक्षित होकर सीताने उस धर्मका सम्यक् पालन किया। उस समय सूर्य आकाशमण्डलके मध्य पहुँच गये और कुतुपमुहूर्त (दिनका आठवाँ मुहूर्त) आ गया था। श्रीरामने जिन ऋषियोंको निमन्त्रित किया था, वे सभी वहाँपर आ गये थे। आये हुए उन ऋषियोंको देखकर विदेहराजकी पुत्री जानकी रामकी आज्ञासे अन्न परोसनेके लिये वहाँ आयीं; किंतु ब्राह्मणोंके बीच जाकर वे तुरंत वहाँसे दूर चली गयीं और लताओंके मध्य छिपकर बैठ गयीं। सीता एकान्तमें छिप गयी हैं, इस बातको जानकर श्रीरामने यह

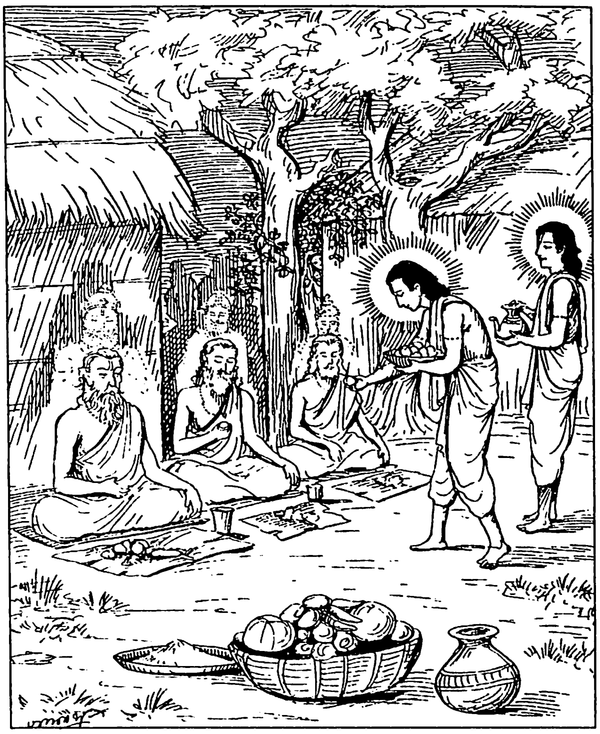

विचार किया कि ब्राह्मणोंको बिना भोजन कराये साध्वी सीता लज्जाके कारण कहीं चली गयी होंगी, पहले मैं इन ब्राह्मणोंको भोजन करा लूँ फिर उनका अन्वेषण करूँगा। ऐसा विचारकर श्रीरामने स्वयं उन ब्राह्मणोंको भोजन कराया। भोजनके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर श्रीरामने अपनी प्रियतमा सीतासे कहा कि ब्राह्मणोंको देखकर तुम लताओंकी ओटमें क्यों छिप गयी? हे तन्वङ्गी! तुम इसका समस्त कारण अविलम्ब मुझे बताओ। श्रीरामके ऐसा कहनेपर सीता मुँहको नीचे कर सामने खड़ी हो गयीं और अपने नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई रामसे बोलीं—

**सीताजीने कहा**—हे नाथ! मैंने यहाँ जिस प्रकारका आश्चर्य देखा उसे आप सुनें। हे राघव! इस श्राद्धमें उपस्थित ब्राह्मणके अग्रभागमें मैंने आपके पिताका दर्शन किया, जो सभी आभूषणोंसे सुशोभित थे। उसी प्रकारके अन्य दो महापुरुष भी उस समय मुझे दिखायी पड़े। आपके पिताको देखकर मैं बिना बताये एकान्तमें चली आयी थी। हे प्रभो! वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए मैं कैसे राजा (दशरथ)-के सम्मुख जा सकती थी। हे शत्रुपक्षके वीरोंका विनाश करनेवाले प्राणनाथ! मैं आपसे यह सत्य ही कह रही हूँ, अपने हाथसे राजाको मैं वह भोजन कैसे दे सकती थी, जिसके दासोंके भी दास कभी भी वैसा भोजन नहीं करते रहे? तृणपात्रमें उस अन्नको रखकर मैं कैसे उन्हें ले जाकर देती? मैं तो वही हूँ जो पहले सभी प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित रहती थी और राजा मुझे वैसी स्थितिमें देख चुके थे। आज वही मैं कैसे राजाके सामने जा पाती? हे रघुनन्दन! उसीसे मनमें आयी हुई लज्जाके कारण मैं वापस हो गयी।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे गरुड! अपनी पत्नीके ऐसे वचनोंको सुनकर श्रीरामका मन विस्मित हो उठा। यह तो आश्चर्य है; ऐसा कहकर वे अपने स्थानपर चले आये। सीताने जिस प्रकार अपने पितरोंका दर्शन किया था, उसी प्रकार तुम्हें मैंने सुना दिया। अब मैं संक्षेपमें श्राद्धका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो—

पितृगण अमावास्याके दिन वायुरूपमें घरके दरवाजेपर उपस्थित रहते हैं और अपने स्वजनोंसे

श्राद्धकी अभिलाषा करते हैं। जबतक सूर्यास्त नहीं हो जाता, तबतक वे वहीं भूख-प्याससे व्याकुल होकर खड़े रहते हैं। सूर्यास्त हो जानेके पश्चात् वे निराश होकर दु:खित मनसे अपने वंशजोंकी निन्दा करते हैं और लम्बी-लम्बी साँस खींचते हुए अपने-अपने लोकोंको चले जाते हैं। अत: प्रयत्नपूर्वक अमावास्याके दिन श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। यदि पितृजनोंके पुत्र तथा बन्धु-बान्धव उनका श्राद्ध करते हैं और गया-तीर्थमें जाकर इस कार्यमें प्रवृत्त होते हैं तो वे उन्हीं पितरोंके साथ ब्रह्मलोकमें निवास करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं। उन्हें भूख-प्यास कभी नहीं लगती। इसीलिये विद्वान्‌को प्रयत्नपूर्वक यथाविधि शाक-पातसे भी अपने पितरोंके लिये श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। समयानुसार श्राद्ध करनेसे कुलमें कोई दु:खी नहीं रहता। पितरोंकी पूजा करके मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री, पशु, सुख और धन-धान्य प्राप्त करता है। देवकार्यसे भी पितृकार्यका विशेष महत्त्व है। देवताओंसे पहले पितरोंको प्रसन्न करना अधिक कल्याणकारी है—

**कुर्वीत समये श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति।**
**आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्॥**
**पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्।**
**देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते॥**
**देवताभ्यः पितॄणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्।**

(१०।५७—५९)

जो लोग अपने पितृगण, देवगण, ब्राह्मण तथा अग्निकी पूजा करते हैं, वे सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मामें समाविष्ट मेरी ही पूजा करते हैं। शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य ब्रह्मपर्यन्त समस्त चराचर जगत्‌को प्रसन्न कर लेता है।

हे आकाशचारिन् गरुड! मनुष्योंके द्वारा श्राद्धमें पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरा जाता है, उससे जो पितर पिशाच-योनिमें उत्पन्न हुए हैं, वे संतृप्त होते हैं। श्राद्धमें स्नान करनेसे भीगे हुए वस्त्रोंद्वारा जो जल पृथ्वीपर गिरता है, उससे वृक्षयोनिको प्राप्त हुए पितरोंकी संतुष्टि होती है। उस समय जो गन्ध तथा जल भूमिपर गिरता है, उससे देवत्व-योनिको प्राप्त पितरोंको सुख प्राप्त होता है। जो पितर अपने कुलसे बहिष्कृत हैं, क्रियाके योग्य नहीं हैं, संस्कारहीन और विपन्न हैं, वे सभी श्राद्धमें विकिरान्न और मार्जनके जलका भक्षण करते हैं। श्राद्धमें भोजन करके ब्राह्मणोंके द्वारा आचमन एवं जलपान करनेके लिये जो जल ग्रहण किया जाता है, उस जलसे उन पितरोंको संतृप्ति प्राप्त होती है। जिन्हें पिशाच, कृमि और कीटकी योनि मिली है तथा जिन पितरोंको मनुष्य-योनि प्राप्त हुई है, वे सभी पृथ्वीपर श्राद्धमें दिये गये पिण्डोंमें प्रयुक्त अन्नकी अभिलाषा करते हैं, उसीसे उन्हें संतृप्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंके द्वारा विधिपूर्वक श्राद्ध किये जानेपर जो शुद्ध या अशुद्ध अन्न तथा जल फेंका जाता है, उससे जिन्होंने अन्य जातिमें जाकर जन्म लिया है, उनकी तृप्ति होती है। जो मनुष्य अन्यायपूर्वक अर्जित किये गये पदार्थोंसे श्राद्ध करते हैं, उस श्राद्धसे नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेवाले चाण्डाल पितरोंकी तृप्ति होती है।

हे पक्षिन्! इस संसारमें श्राद्धके निमित्त जो कुछ भी अन्न, धन आदिका दान अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दिया जाता है, वह सब पितरोंको प्राप्त होता है। अन्न, जल और शाक-पात आदिके द्वारा यथासामर्थ्य जो श्राद्ध किया जाता है, वह सब पितरोंकी तृप्तिका हेतु है। तुमने इस विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। तुम अब जो यह पूछ रहे हो कि मृत्युके बाद प्राणीको

तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है? अथवा विलम्बसे उसको दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है? वह मैं तुम्हें संक्षेपमें बता रहा हूँ।

हे गरुड! प्राणी मृत्युके पश्चात् दूसरे शरीरमें तुरंत भी प्रविष्ट हो सकता है और विलम्बसे भी। मनुष्य जिस कारण दूसरे शरीरको प्राप्त करता है, उस वैशिष्ट्यको तुम मुझसे सुनो। शरीरके अंदर जो धूमरहित ज्योतिके सदृश प्रधान पुरुष जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। जिस प्रकार एक तृणका आश्रय लेकर स्थित जोंक दूसरे तृणका आश्रय लेनेके बाद पहलेवाले तृणके आश्रयसे अपने पैरको आगे बढ़ाता है, उसी प्रकार शरीरी पूर्व-शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाता है। उस समय भोगके लिये वायवीय शरीर सामने ही उपस्थित रहता है। मरनेवाले शरीरके अंदर विषय ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ उसके निश्चेष्ट (निर्व्यापार) हो जानेपर वायुके साथ चली जाती हैं। वह जिस शरीरको प्राप्त करता है उसको भी छोड़ देता है। जैसे स्त्रीके शरीरमें स्थित गर्भ उसके अन्नादिक कोशसे शक्ति ग्रहण करता है और समय आनेपर उसे छोड़कर वह बाहर आ जाता है, वैसे ही जीव अपना अधिकार लेकर दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। उस एक शरीरमें प्रविष्ट होते हुए प्राणीके कालक्रम, भोजन या गुण-संक्रमणकी जो स्थिति है उसे मूर्ख नहीं, अपितु ज्ञानी व्यक्ति ही देखते हैं।

विद्वान् लोग इसको आतिवाहिक वायवीय शरीर कहते हैं। हे सुपर्ण! भूत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर तथा मनुष्योंका पिण्डज शरीर भी ऐसा ही होता है।

हे पक्षीन्द्र! पुत्रादिके द्वारा जो दशगात्रके पिण्डदान दिये जाते हैं, उस पिण्डज शरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज देहका साथ नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है। प्राणीके इस शरीरमें जैसे कौमार्य, यौवन और बुढ़ापेकी अवस्थाएँ आती हैं, वैसे ही दूसरे शरीरके प्राप्त होनेपर भी तुम्हें समझना चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंका परित्याग कर नये वस्त्रोंको धारण कर लेता है, उसी प्रकार शरीरी पुराने शरीरका परित्याग कर नये शरीरको धारण करता है। इस शरीरीको न शस्त्र छेद सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल आर्द्र कर सकता है और न वायु सुखा सकती है—

**देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।**
**तथा देहान्तरप्राप्तिः पक्षीन्द्रेत्यवधारय॥**
**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
**नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-**
**न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥**
**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
**न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥**

(१०।८३—८५)

जीव तत्काल वायवीय शरीरमें प्रवेश कर लेता है, यह तो मैंने तुम्हें बता दिया; अब जीवात्माको विलम्बसे जैसे दूसरा शरीर प्राप्त होता है, उसको तुम मुझसे सुनो।

हे गरुड! कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है; क्योंकि मृत्युके बाद वह स्वकर्मानुसार यमलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँ नरक भोगता है। वहाँकी यातनाओंको झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी आदिकी योनि प्राप्त होती है। मनुष्य जिस शरीरको ग्रहण करता है, उसी शरीरमें मोहवश उसकी ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगकर मनुष्य इससे मुक्त भी हो जाता है।

**गरुडने कहा**—हे दयानिधे! बहुत-से पापोंको

करनेके बाद भी इस संसारको पार करके प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है? उसे आप मुझे बतायें। हे लक्ष्मीरमण! जिस प्रकार मनुष्यका संसर्ग पुनः दुःखसे न हो उस उपायको बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिराज! प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर लेता है। अपने कर्ममें अनुरक्त रहकर वह उस सिद्धिको जिस प्रकार प्राप्त करता है, उसको तुम मुझसे सुनो—

**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।**
**स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तृच्छृणु॥**

(१०।९२)

हे कश्यपनन्दन! सत्कर्मसे जिसने अपने कालुष्यको नष्ट कर दिया है, वह व्यक्ति वासुदेवके निरन्तर चिन्तनसे विशुद्ध हुई बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है, जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर राग-द्वेषको छोड़कर विरक्तसेवी और यथाप्राप्त भोजनसे संतुष्ट रहता है, जिसका मन-वाणी-शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारणकर नित्य ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह—इन षड्विकारोंका परित्याग करके निर्भय होकर शान्त हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता—

**कर्मविभ्रष्टकालुष्यो वासुदेवानुचिन्तया।**
**बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च॥**
**शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।**
**विरक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः॥**
**ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।**
**अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥**
**विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।**
**अतः परं नृणां कृत्यं नास्ति कश्यपनन्दन॥**

(१०।९३—९६)

(अध्याय १०)

# जीवकी ऊर्ध्वगति एवं अधोगतिका वर्णन

**गरुडजीने कहा**—हे देवश्रेष्ठ! मनुष्ययोनि कैसे प्राप्त होती है? मनुष्य कैसे मृत्युको प्राप्त होता है? शरीरका आश्रय लेकर कौन मरता है? उसकी इन्द्रियाँ कहाँसे कहाँ चली जाती हैं? मनुष्य कैसे अस्पृश्य हो जाता है? यहाँ किये हुए कर्मको कहाँ और कैसे भोगता है और कहाँ कैसे जाता है? यमलोक और विष्णुलोकको मनुष्य कैसे जाता है? हे प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न हों। मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे विनतानन्दन! परायी स्त्री और ब्राह्मणके धनका अपहरण करके प्राणी अरण्य एवं निर्जन स्थानमें रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनिको प्राप्त करता है। रत्नोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य नीच जातिके घर उत्पन्न होता है। मृत्युके समय उसकी जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उन्हींके वशीभूत हो वह उन-उन योनियोंमें जाकर जन्म लेता है। इस जीवात्माका छेदन शस्त्र नहीं कर सकता, अग्नि इसको जलानेमें समर्थ नहीं है, जल इसे आर्द्र नहीं कर सकता और वायुके द्वारा इसका शोषण सम्भव नहीं है।

हे पक्षिन्! मुख, नेत्र, नासिका, कान, गुदा और मूत्रनली—ये सभी छिद्र अण्डजादि जीवोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। नाभिसे मूर्धापर्यन्त शरीरमें आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा हैं, उनके प्राण शरीरके ऊर्ध्व छिद्रोंसे निकलकर परलोक जाते हैं। मृत्युके दिनसे लेकर एक वर्षतक जैसी विधि पहले बतायी गयी है, उसीके अनुसार सभी और्ध्वदैहिक श्राद्धादि संस्कार

निर्धन होनेपर भी यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक करने चाहिये। जीव जिस शरीरमें वास करता है उसी शरीरमें वह अपने शुभाशुभ कर्मफलका भोग करता है। हे पक्षिराज! मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये दोषोंको वह भोगता है। जो [अनासक्तभावसे] सत्कर्ममें रत रहता है, वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फँसता। जो विकर्ममें निरत रहता है वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है।

(अध्याय ११)

# चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्यजन्मकी श्रेष्ठता, मनुष्यमात्रका एकमात्र कर्तव्य—धर्माचरण

**श्रीकृष्णजीने कहा**—हे ताक्ष्र्य! मनुष्योंके हित एवं प्रेतत्वकी विमुक्तिके लिये जीवित प्राणीके कर्म-विधानका निर्णय मैंने तुम्हें सुना दिया। इस संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। उनका विभाजन चार प्रकारके जीवोंमें हुआ है। उन्हें अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज कहा जाता है। इक्कीस लाख योनियाँ अण्डज मानी गयी हैं। इसी प्रकार क्रमशः स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज योनियोंके विषयमें भी कहा गया है। मनुष्यादि योनियाँ जरायुज कही जाती हैं। इन सभी प्राणियोंमें मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच इन्द्रियोंसे युक्त यह योनि प्राणीको बड़े ही पुण्यसे प्राप्त होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं। रजक, चमार, नट, बंसखोर, मछुआरा, मेद तथा भिल्ल—ये सात अन्त्यज जातियाँ मानी गयी हैं। म्लेच्छ और तुम्बु जातिके भेदसे अनेक प्रकारकी जातियाँ हो जाती हैं। जीवोंके हजारों भेद हैं। आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध—ये कर्म सभी प्राणियोंमें पाये जाते हैं, किंतु विवेक सभीमें परम दुर्लभ है। एक पाद, दो पाद आदिके भेदसे शारीरिक संरचनामें भी अनेक भेद प्राप्त होते हैं।

जिस देशमें कृष्णसार नामक मृग रहता है, वह धर्मदेश कहलाता है। सब प्रकारसे ब्रह्मा आदि देवता वहीं निवास करते हैं। पञ्चमहाभूतोंमें प्राणी, प्राणियोंमें बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें मनुष्य और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी इन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता, निश्चित ही उसने अपनेको ठग दिया। सौका मालिक एक हजार और एक हजारवाला व्यक्ति लाखकी पूर्तिमें लगा रहता है। जो लक्षाधिपति है वह राज्यकी इच्छा करता है। जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें रखना चाहता है। जो चक्रवर्ती नरेश है वह देवत्वकी इच्छा करता है। देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अभिलाषा देवराज इन्द्रके पदके लिये होती है और देवराज होनेपर वह ऊर्ध्वगतिकी कामना करता है; फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमें जाता है। जो लोग तृष्णासे मुक्त हैं, उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।*

इस संसारमें जो प्राणी आत्माके अधीन है, वह निश्चित ही सुखी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं, इनकी अधीनतामें रहनेवाला निश्चित ही दुःखी रहता है। मृग, हाथी, पतंग, भ्रमर और मीन—ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, रस—ये एक-एक विषयके सेवनसे मारे जाते हैं; फिर जो प्रमादी मनुष्य पाँचों इन्द्रियोंसे इन पाँचों विषयोंका सेवन करता है, वह इनके द्वारा कैसे नहीं

* इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते कर्तुम्। लक्षाधिपती राज्यं राजापि सकलां धरां लब्धुम्॥
चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरभावे सकलसुरपतिर्भवितुम्। सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्तते तृष्णा॥
तृष्णया चाभिभूतस्तु नरकं प्रतिपद्यते। तृष्णामुक्तास्तु ये केचित् स्वर्गवासं लभन्ति ते॥ (१२।१३—१५)

मारा जायगा? मनुष्य बाल्यावस्थामें अपने पिता-माताके अधीन होता है। युवावस्था आनेपर वह स्त्रीका हो जाता है और अन्त समय आनेपर पुत्र-पौत्रके व्यामोहमें फँस जाता है। वह मूर्ख कभी किसी अवस्थामें आत्माके अधीन नहींरहता। लौह और काष्ठके बने हुए पाशसे बँधा हुआ व्यक्ति मुक्त हो जाता है, किंतु पुत्र तथा स्त्री आदिके मोहपाशमें बँधा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं हो पाता।

पाप एक मनुष्य करता है, किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। भोक्ता तो अलग हो जाते हैं पर कर्ता दोषका भागी होता है। चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे युवा हो, कोई भी मृत्युपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। कोई अधिक सुखी हो अथवा अधिक दुःखी हो, वह बारम्बार आता-जाता है। मृत प्राणी सबके देखते-देखते सब कुछ छोड़कर चला जाता है। इस मर्त्यलोकमें प्राणी अकेला ही पैदा होता है, अकेले ही मरता है और अकेले ही पाप-पुण्यका भोग करता है। 'बन्धु-बान्धव मरे हुए स्वजनके शरीरको पृथ्वीपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलेकी भाँति फेंककर पराङ्मुख हो जाते हैं; धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव घरमें ही छूट जाता है। मित्र एवं बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं। शरीरको अग्नि ले लेती है। पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं।'

**मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ॥**
**बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।**
**गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानान्मित्रबान्धवाः॥**
**शरीरं वह्निरादत्ते सुकृतं दुष्कृतं व्रजेत्।**
**शरीरं वह्निना दग्धं पुण्यं पापं सह स्थितम्॥**

(१२। २४—२६)

'मनुष्यने जो भी शुभ या पाप-कर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है। हे पक्षिराज! सूर्यास्ततक जिसने याचकोंको अपना धन नहीं दे दिया तो न जाने प्रातः होनेपर उसका वह धन किसका हो जायगा? पूर्वजन्मके पुण्यसे जो थोड़ा या बहुत धन प्राप्त हुआ है, उसे यदि परोपकारके कार्यमें नहीं लगाया या श्रेष्ठ द्विजोंको दानमें नहीं दिया तो उसका वह धन यह रटता रहता है कि कौन मेरा भर्ता होगा? ऐसा विचार कर धर्मके कार्यमें अपना धन लगाना चाहिये। मनुष्य श्रद्धापूत शुद्ध मनसे दिये गये धनके द्वारा धर्मको धारण करता है। श्रद्धारहित धर्म इस लोक तथा परलोकमें फलीभूत नहीं होता। धर्मसे ही अर्थ और कामकी भी प्राप्ति होती है। धर्म ही मोक्षका प्रदायक है। अतः मनुष्यको धर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये। धर्मकी सिद्धि श्रद्धासे होती है, प्रचुर धनराशिसे नहीं। अकिञ्चन अर्थात् धन-वैभवसे रहित श्रद्धावान् मुनियोंको स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। श्रद्धारहित होकर किया गया होम, दान तथा तप असत् कहा जाता है। हे पक्षिन्! उसका फल न तो इस लोकमें मिलता है और न परलोकमें ही मिलता है'—

**शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः।**
**यदनस्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्॥**
**न जाने तस्य तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति।**
**रारटीति धनं तस्य को मे भर्ता भविष्यति॥**
**न दत्तं द्विजमुख्येभ्यः परोपकृतये तथा।**
**पूर्वजन्मकृतात् पुण्याद्यल्लब्धं बहु चाल्पकम्॥**
**तदीदृशं परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम्।**
**धनेन धार्यते धर्मः श्रद्धापूतेन चेतसा॥**
**श्रद्धाविरहितो धर्मो नेहामुत्र च तत्फलम्।**
**धर्माच्च जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽपि जायते॥**
**धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत्।**
**श्रद्धया साध्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः॥**
**अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः।**
**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।**
**असदित्युच्यते पक्षिन् प्रेत्य चेह न तत्फलम्॥**

(१२। २७—३३)

(अध्याय १२)

# वृषोत्सर्ग तथा सत्कर्मकी महिमा

**श्रीगरुडजीने कहा**—हे देवेश! इस भूलोकमें किस कर्मको करनेसे प्राणियोंको प्रेतयोनिकी प्राप्ति नहीं होती? उसे आप मुझे बतायें।

**श्रीकृष्णजीने कहा**—अब मैं संक्षेपमें क्षयाहसे लेकर आगे की जानेवाली और्ध्वदैहिक क्रियाको कह रहा हूँ, जिसे मोक्ष चाहनेवाले लोगोंको अपने ही हाथोंसे करना चाहिये। स्त्री और विशेषरूपसे पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर उनके प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्ग करना चाहिये। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्गके अतिरिक्त इस पृथ्वीपर अन्य कोई साधन नहीं है। जो मनुष्य जीवित रहते हुए वृषोत्सर्ग करता है अथवा मृत्युके पश्चात् भी जिसकी यह क्रिया सम्पन्न हो जाती है उसे दान, यज्ञ एवं व्रत किये बिना भी प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती।

**गरुडने कहा**—हे देवश्रेष्ठ मधुसूदन! जीवित रहते हुए अथवा मृत्युके पश्चात् भी किस कालमें यह वृषोत्सर्ग-क्रिया होनी चाहिये? आप इस बातको मुझे बतायें। सोलह श्राद्धोंको करनेसे अन्तमें क्या फल प्राप्त हो सकता है?

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिराज! यदि वृषोत्सर्ग किये बिना ही पिण्डदान दिया जाता है तो उसका श्रेय दाताको नहीं प्राप्त होता। प्रत्युत वह क्रिया प्रेतके लिये निष्फल हो जाती है। जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, सौ श्राद्ध करनेपर भी उसका प्रेतत्व सुस्थिर रहता है।*

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! सर्पदंशसे मरे हुए लोगोंकी अग्निदाहादि क्रिया नहीं की जाती है। यदि जलमें, सींगवाले पशु अथवा शस्त्रादिके प्रहारसे कोई मर जाता है, तो इस प्रकार असत् मृत्युको प्राप्त हुए लोगोंकी शुद्धि कैसे हो? हे देव! आप मेरे इस संशयको दूर करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे खगेश! उक्त प्रकारसे अपमृत्युको प्राप्त हुआ ब्राह्मण छः मास, क्षत्रिय ढाई मास, वैश्य डेढ़ मास एवं शूद्र एक मासमें शुद्ध हो जाता है। यदि तीर्थमें सभी प्रकारका दान देकर कोई ब्रह्मचारी मर जाता है तो वह शुद्ध होकर ऐहिक दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। वृषोत्सर्ग आदि करके यति-धर्मका आचरण करना चाहिये। यदि संन्यास-धर्मका पालन करते हुए किसी प्राणीकी मृत्यु हो जाती है तो वह शाश्वत ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति शिष्टाचाररहित धर्मविरुद्ध कर्म करता है, वह भी वृषोत्सर्ग आदिकी क्रिया करके यमराजके शासनमें नहीं जाता। पुत्र, सहोदर भाई, पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री अथवा सम्पत्ति लेनेवाला उत्तराधिकारी कोई भी हो, उसको मरे हुए स्वजनके लिये वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। पुत्रके अभावमें पत्नी, दौहित्र (नाती) और दुहिता (पुत्री) भी इस कर्मको कर सकती है। पुत्रोंके रहनेपर वृषोत्सर्ग अन्यसे नहीं कराना चाहिये।

**गरुडने कहा**—हे सुरेश्वर! चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष जिसके पुत्र नहीं है, उसका संस्कार किस प्रकारसे किया जाय? हे देव! इस विषयमें उत्पन्न हुई मेरी शंकाको आप भली प्रकारसे दूर करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं है, उसके लिये स्वर्गका सुख नहीं है। अतः ऐसे मनुष्यको सदुपायसे पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहिये। पुरुष स्वयं जो कुछ भी दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने ही उपस्थित रहते हैं।

* एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ ( १३।८)

अपने हाथोंसे जो नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं विविध व्यञ्जन खानेके लिये दिये जाते हैं, वे सभी मृत्युके पश्चात् अक्षय फल प्रदान करते हैं। जो गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोजन और पद-दान अपने हाथसे दिये जाते हैं, वे सभी दान जिस-जिस योनिमें जहाँ-जहाँ दानकर्ता जाते हैं, वहाँ-वहाँ उपस्थित रहते हैं[1]।

जबतक प्राणीका शरीर स्वस्थ रहता है, तबतक धर्मका सम्यक् पालन करना चाहिये। अस्वस्थ होनेपर दूसरोंकी प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर पाता है। यदि अपने जीवनकालमें व्यक्ति और्ध्वदैहिक कर्म नहीं कर लेता अथवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिकोंके द्वारा भी यह कर्म नहीं होता है तो वह वायुरूपमें भूख-प्याससे पीड़ित रात-दिन भटकता रहता है। वह कृमि, कीट अथवा पतिंगा होकर बार-बार जन्म लेता है और मर जाता है। वह कभी असत् मार्गसे गर्भमें प्रविष्ट होता है एवं जन्म लेते ही तत्काल विनष्ट हो जाता है।

जबतक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जबतक इससे बुढ़ापा दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति किसी भी प्रकारसे क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई है, तबतक अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये; क्योंकि घरमें महाभयंकर आगके लग जानेपर कुआँ खोदनेके उद्योगसे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है—

**यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो**
**यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।**
**आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्**
**संदीप्ते भवने तु कूपखनने प्रत्युद्यमः कीदृशः॥**

(१३। २५)

(अध्याय १३)

# और्ध्वदैहिक क्रिया, गोदान एवं वृषोत्सर्गका माहात्म्य

**गरुडने कहा**—हे विभो! मृत्युको प्राप्त कर रहे दुःखित व्यक्तिके द्वारा जो दान दिया जाता है, उसका क्या फल है? स्वस्थ अवस्थामें और विधिहीन जो दान दिया जाता है, उसका क्या फल है?

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वस्थ चित्तवाले मनुष्यके द्वारा दानमें दी गयी एक गौ, रोगी पुरुषके द्वारा दानमें दी गयी एक सौ गाय, मर रहे प्राणीके द्वारा दानमें धनको छोड़कर दी गयी हजार गाय तथा व्यक्तिके मर जानेपर विधिवत् पुत्र-पौत्रादिके द्वारा दानमें दी गयी एक लाख गायोंके बराबर होती है। तीर्थ एवं पात्रके समायोगसे यथाविधि एक ही गोदान कर दिया जाय तो वह अकेली गौ दाताको एक लाख गोदानका पुण्य प्रदान करती है।

[1] व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। स्वहस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम्॥
गोभूहिरण्यवासांसि भोजनानि पदानि च। यत्र यत्र वसेज्जन्तुस्तत्रतत्रोपतिष्ठति॥ (१३। २०-२१)

हे खगराज! सत्पात्रको दिया गया दान दिन-दिन बढ़ता है। दाताके दिये हुए दानको यदि ज्ञानी ग्रहण करता है तो उसे पाप नहीं लगता। विष और शीतका अपहरण करनेवाले मन्त्र और अग्नि क्या दोषभाजन होते हैं? अतः प्रतिदिन सत्पात्रको विशेष उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये दान देना चाहिये। अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको अपात्रको कुछ भी नहीं देना चाहिये। यदि कदाचित् अपात्रके लिये गौका दान दिया जाता है तो वह दाताको नरकमें ले जाता है और अपात्र ग्रहीताको इक्कीस पीढ़ियोंके सहित नरकमें ढकेल देता है।

हे खगेश! जिस प्रकारसे अपने हाथसे भूमिमें निवेश किया गया धन मनुष्यके आवश्यकतानुसार वह जब चाहे काममें आ सकता है, उसी प्रकार अपने हाथसे किया गया दान भी देहान्तरमें प्राप्त होता है। निर्धन होनेके बाद भी अपुत्र व्यक्तिको मोक्षकी कामनासे अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया अवश्य कर लेनी चाहिये। थोड़े धनसे भी अपने हाथसे की गयी अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया उसी प्रकारसे अक्षय फल देनेवाली होती है, जिस प्रकार अग्निमें डाली हुई आज्याहुति। दान लेनेके योग्य व्यक्तिको ही शय्या, कन्या एवं गौका दान देना चाहिये और यह भी ध्यान रखना चाहिये कि दो शय्याएँ एकको न दी जायँ, दो कन्याएँ एकको न दी जायँ तथा दो गायें भी एकको न दी जायँ। इसका आशय यह है कि भलीभाँति गोपालनमें समर्थ, गोपालनके प्रति आस्थावान् तथा दान लेने योग्य प्रतिग्रहीताको ही गोदान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी विशेषरूपमें ज्ञातव्य है कि दो दान लेने योग्य व्यक्तियोंको भी एक गौ कदापि न दी जाय; क्योंकि यदि वह किसीके हाथ बेची जाती है अथवा उसका किन्हीं दो या दोसे अधिक लोगोंके बीच विभाजन होता है तो ऐसा करनेवाले मनुष्यको सात पीढ़ियोंके सहित वह दान जला देता है। अतः इस नश्वर जीवनमें समस्त और्ध्वदैहिक कर्म स्वयं सम्पन्न कर लेना चाहिये। पाथेयके रूपमें दिये गये दानादिको प्राप्त करके प्राणी उस महाप्रयाणके मार्गमें सुखपूर्वक जाता है, अन्यथा पाथेयरहित जीवात्मा अनेक प्रकारका कष्ट झेलता है। ऐसा जानकर मनुष्य विधिवत् वृषोत्सर्ग करे। जो पुत्रहीन वृषोत्सर्ग किये बिना ही मर जाता है, उसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। अतः पुत्रविहीन मनुष्य इस धर्मका पालन विधिवत् करे। ऐसा करनेसे यमके उस महापथमें वह सुखपूर्वक गमन करता है। अग्निहोत्र, विभिन्न प्रकारके यज्ञ और दानादिसे प्राणीको वह सद्गति नहीं प्राप्त होती है, जो गति वृषोत्सर्गसे प्राप्त होती है। समस्त यज्ञोंमें वृषोत्सर्ग यज्ञ श्रेष्ठतम है, इसलिये प्रयास करके मनुष्यको भलीभाँति वृषोत्सर्ग सम्पन्न करना चाहिये।

**गरुडने कहा**—हे गोविन्द! आप मुझे क्षयाह और और्ध्वदैहिक क्रियाके विषयमें उपदेश दें कि इस क्रियाको किस काल, किस तिथि और किस प्रकारकी विधिसे सम्पन्न करना चाहिये। इसको करके मनुष्य क्या फल प्राप्त करता है, इसे भी आप मुझे बतायें। हे गोविन्द! आपकी कृपासे तो प्राणी मुक्त हो जाता है।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिन्! कार्तिक आदि मासमें सूर्यके दक्षिणायन हो जानेपर शुक्लपक्षकी द्वादशी आदि शुभ तिथियोंमें, शुभ लग्न और मुहूर्तमें तथा पवित्र देशमें समाहितचित्त होकर विधिज्ञ, शुभलक्षणोंसे युक्त सत्पात्र ब्राह्मणको बुलाकर जप, होम तथा दानसे अपने शरीरका सर्वप्रथम शोधन करे। उसके बाद वह अभिजित् नक्षत्रमें ग्रहों और देवताओंकी विधिवत् पूजा करके विभिन्न वैदिक मन्त्रोंसे यथाशक्ति अग्निमें आहुति प्रदान करे। हे खगेश्वर! तदनन्तर ग्रहस्थापन-कार्य

करके मातृका-पूजनका कार्य करना चाहिये। तत्पश्चात् वह वसुधारा हवन सम्पन्न करे। अग्नि-स्थापन करके पूर्णाहुतिका कार्य करे। इसके बाद शालग्रामको स्थापित कर वैष्णव श्राद्ध करे। वस्त्राभूषणोंसे वृषको सुसज्जित करके उसकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पहले चार बछियोंको सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित करे। वस्त्र और अलंकारसे विभूषित कर उन्हें उस यज्ञमें वृषके साथ स्थान दे। उसके बाद उनकी प्रदक्षिणा एवं होम करके अन्तमें विसर्जन करे। तत्पश्चात् उत्तराभिमुख होकर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

**धर्म त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥**
**तवोत्सर्गप्रभावान्मामुद्धरस्व भवार्णवात्।**

(१४। २६-२७)

'हे धर्म! पुराकालमें ब्रह्माने आपको वृषके रूपमें निर्मित किया है। आपके उत्सर्गके प्रभावसे मेरा भवसागरसे उद्धार हो।'

इसके बाद पवित्र करनेवाले शुभ मन्त्रोंसे विधिपूर्वक वृषको अभिषिक्त करके **'तेन क्रीडन्ति०'** इस मन्त्रसे वृषोत्सर्ग करे। पुनः रुद्र नामक कुम्भके जलसे उस नील वृषका अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद उस नील वृषके नाभिभागमें घटको स्पर्श कराके वह जल अपने सिरपर भी डालना चाहिये। हे पक्षिराज! तदनन्तर अन्नश्राद्ध कर द्विजोत्तमको दान देना चाहिये। इन कार्योंको करके जलाशयपर पहुँचे और वहाँ जलाञ्जलि क्रिया करे। मनुष्यको अपने जीवनमें जो वस्तु प्रिय हो, उसका यथाशक्ति वहाँपर दान करना चाहिये। वृषोत्सर्ग करनेपर न्यूनता पूरी हो जाती है। मृत व्यक्ति इससे भलीभाँति तृप्त होकर यमलोकके कठिन मार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है, इसमें संदेह नहीं है। सदैव दानादिकी क्रियाओंमें अनुरक्त मनुष्य यमलोकका दर्शनतक नहीं करते हैं। जबतक प्राणीका एकादशाह श्राद्ध नहीं किया जाता है, तबतक अपने द्वारा दिया गया दान अथवा दूसरेके हाथसे दिया गया दान न इस लोकमें प्राप्त होता है और न परलोकमें ही।

हे गरुड! श्रद्धाभावपूर्ण प्राणीको क्रमशः तेरह, सात, पाँच तथा तीन पद-दान करना चाहिये। अतः दाता पहले यथाक्रम सात एवं पाँच तिलपात्रोंका दान करे। वह ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें एक गौका दान भी दे। तत्पश्चात् **'वृषं हि शं नो देवी०'** इस वेदमन्त्रसे यथाविधि चार बछियोंके साथ वृषका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर उसके शरीरमें बायीं ओर चक्र और दाहिनी ओर त्रिशूलका चिह्न अंकित करके और जिसको वृषदान किया गया है, उसको उसका मूल्य देकर विसर्जन कर दे।

बुद्धिमान् व्यक्तिको एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार क्रमशः प्रयत्नपूर्वक एकादशाह तथा द्वादशाह श्राद्ध करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पहले षोडश श्राद्ध सम्पन्न करे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें पद-दान दे। उसके बाद ताम्रपात्रमें कार्पास (सूती) वस्त्रपर भगवान् विष्णुकी मूर्तिको स्थापित करे और वस्त्रसे आच्छादित करके शुभ फलसे अर्घ्य समर्पित करे। तत्पश्चात् ईखके पेड़ोंसे नौकाका निर्माण करके रेशमी सूत्रसे उसको लपेट दिया जाय। वैतरणीके निमित्त कांस्यपात्रमें घृत रखकर नौकारोहणकी क्रिया हो और भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करे। सामर्थ्यके अनुसार किया गया दान अनन्त फलोंको देनेवाला है। भगवान् जनार्दन इस संसार-सागरमें डूब रहे शोक-संतापसे दुःखित तथा धर्मरूपी नौकासे रहित जनोंके उद्धारक हैं।

हे तार्क्ष्य! तिल, लौह, सुवर्ण, कार्पास वस्त्र, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पवित्र माने गये हैं। श्राद्धमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका दान देकर शय्यादान देना चाहिये।

दीन-अनाथ एवं विशिष्टजनोंको सामर्थ्यानुसार दक्षिणा भी प्रदान करे। पुत्रहीन अथवा पुत्रवान् जो भी इसे करता है, उसको वही सिद्धि प्राप्त होती है, जो एक ब्रह्मचारीको प्राप्त होती है। मनुष्य इस पृथ्वीपर जबतक जीवित रहता है, तबतक उसे नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। जो कोई जीवित-श्राद्ध करता है, तीर्थयात्रा, व्रत एवं सांवत्सरिक श्राद्धादि धर्मकार्य करता है, उसका अक्षय फल उसे प्राप्त होता है। देवता, गुरु और माता-पिताके निमित्त पुरुषको प्रयत्नपूर्वक दान करना चाहिये। वह दान प्रतिदिन अभिवृद्धिको प्राप्त होता है।

इस यज्ञमें जिसके द्वारा प्रचुर धन दानमें दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है, जिस प्रकार इस संसारमें संन्यासी और ब्रह्मचारी अत्यधिक पूज्य हैं, उसी प्रकार वृषोत्सर्गादि कर्मोंको करनेवाले सभी पुण्यात्मा भी इस संसारमें पूजे जाते हैं। उन पुण्यात्माओंको मैं, चतुर्मुख ब्रह्मा और शिव सदैव वरदान देते हैं। वे सभी परम लोककी गति प्राप्त करते हैं। मेरा यह वचन सत्य है।

छोड़ा गया वृषभ जिस जलाशयमें जलपान करता है अथवा सींगसे जिस भूमिको नित्य खोद-खोदकर प्रसन्न होता है, उससे पितरोंके लिये अन्न और पेय पदार्थ अत्यधिक मात्रामें उत्पन्न होता है।

पूर्णिमा अथवा अमावास्या तिथिमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका दान देना चाहिये। हजार संक्रान्तियों और सैकड़ों सूर्यग्रहणके पर्वोंपर दान देकर जो पुण्य अर्जित होता है, वह मात्र नील वृषको छोड़कर ही मनुष्य प्राप्त कर सकता है*। ब्राह्मणोंको बछिया, पद-दान तथा शिव-भक्तोंको तिलसे पूर्ण पात्रोंका दान देना चाहिये। उस समय उमा-महेश्वरको भी परिधानसे अलंकृत कर दान करना चाहिये। अतसी (तीसी) पुष्पके सदृश कान्तिवाले पीताम्बरधारी भगवान् अच्युतकी प्रतिमाको वस्त्राच्छादित कर प्रदान करना चाहिये। जो लोग भगवान् गोविन्दको नमन करते हैं, उनके लिये भय नहीं रहता है। प्रेतत्वसे मोक्ष चाहनेवाले जो प्राणी इस सत्कर्मको करेंगे, वे श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करेंगे। मेरा यह कथन सत्य ही है।

हे गरुड! मैंने तुमसे जो सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रिया कही है, इसे सुनकर मनुष्य अपने समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है।

इस प्रकारका अनुपम माहात्म्य सुनकर गरुड अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उन्होंने मनुष्योंके हितमें पुनः भगवान् केशवसे पूछा। (अध्याय १४)

## मरनेके समय तथा मृत्युके अनन्तर किये जानेवाले कर्म, पापात्माओंको रौद्ररूपमें तथा पुण्यात्माओंको सौम्यरूपमें यम-दर्शन, यमदूतोंद्वारा दी जानेवाली यातनाका स्वरूप, शवके निमित्त प्रदत्त छः पिण्डोंका प्रयोजन, शवदाहकी विधि, संक्षेपमें दशाहसे त्रयोदशाहतकके कृत्य, यममार्गमें पड़नेवाले सोलह पुर तथा प्रेतका विलाप

**गरुडने कहा**—हे भगवन्! जीवात्माके प्रयाण-कालसे लेकर यमलोकके मार्गविस्तारतकका वर्णन एवं माहात्म्य मुझे सुनायें।

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे तार्क्ष्य! मैं यथाक्रम यममार्गका और जीवात्माके गमनमार्गमें पड़नेवाले सोलह पुरोंका वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो।

हे गरुड! प्रमाणतः यमलोक और मृत्युलोकके मध्य छियासी हजार योजनकी दूरी है। हे खगेश!

* संक्रान्तीनां सहस्राणि सूर्यपर्वशतानि च। दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तद्वै नीलविसर्जने॥ (१४।५४)

इस संसारमें पूर्वार्जित सुकृत और दुष्कृत कर्मोंका फल भोगकर अपने कर्मके अनुसार ही किसी व्याधिका जन्म होता है और अपने द्वारा किये गये कर्मोंके आधारपर निमित्तमात्र बनकर कोई व्याधि उत्पन्न होती है। जिसकी जिस निमित्तसे मृत्यु निश्चित है, वह निमित्त किये गये कर्मोंके अनुसार उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है।

जीवात्मा कर्मभोगके कारण जब अपने वर्तमान शरीरका परित्याग करता है, तब भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर तिल और कुशासन बिछाकर उसीपर उसे लिटा दे। तदनन्तर उस प्राणीके मुखमें सुवर्ण डाले और उसके समीप तुलसीका वृक्ष एवं शालग्रामकी शिलाको भी लाकर रखे। तत्पश्चात् यथाविधान विभिन्न सूक्तोंका पाठ करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु मुक्तिदायक होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न स्थानोंमें सोनेकी शलाकाओंको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमशः एक शलाका मुख, एक-एक शलाका नाकके दोनों छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान, एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डमें रखनी चाहिये। उसके दोनों हाथ एवं कण्ठभागमें तुलसी रखें। उसके शवको दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके कुंकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसको पुष्पोंकी मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवों तथा पुत्र, पुरवासियोंके साथ अन्य द्वारसे ले जाय। उस समय अपने बान्धवोंके साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शवको कन्धेपर रखकर स्वयं ले जाना चाहिये।

श्मशान देशमें पहुँचकर पुत्र, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण कराये, जो पहलेसे जली न हो। उस चितामें चन्दन, तुलसी और पलाश आदिकी लकड़ीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन्न व्यक्तिकी इन्द्रियोंका समूह व्याकुल हो उठता है, चेतन शरीर जब जडीभूत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोड़कर यमराजके दूतोंके साथ चल देते हैं। उस समय मृतकको दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है, जिसके द्वारा वह समस्त संसारको देखता है। जब मृतकके प्राण कण्ठमें आकर अटक जाते हैं, उस कालमें उस आतुर व्यक्तिका रूप बड़ा बीभत्स और कठोर हो जाता है। कोई मरता हुआ प्राणी मुखसे फेन उगलता है, किसीका मुख लाला (लार)-से भर जाता है। उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हें यमदूत अपने पाशबन्धनोंसे जकड़कर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनको स्वर्गके पार्षद अपने लोकको सुखपूर्वक ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमें पापियोंको दुःख झेलते हुए जाना पड़ता है।

यमराज अपने लोकमें शङ्ख, चक्र तथा गदा अदिसे विभूषित चतुर्भुज रूप धारण कर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषोंके साथ मित्रवत् आचरण करते हैं। वे सभी पापियोंको संनिकट बुलाकर उन्हें अपने दण्डसे तर्जना देते हैं। वह यमराज प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करनेवाला है। अञ्जनगिरिके सदृश उसका कृष्णवर्ण है। वह एक बहुत बड़े भैंसेपर सवार रहता है। अत्यन्त साहस करके ही लोग उसकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वह विद्युत्के तेजके समान विद्यमान है। उसके शरीरका विस्तार तीन योजन है। वह महाक्रोधी एवं अत्यन्त भयंकर है। भीमकाय दुराकृति यमराज अपने हाथमें लोहेका दण्ड और पाश धारण करता है। उसके मुख तथा नेत्रोंको देखनेसे ही पापियोंके मनमें भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोंको दिखायी पड़ता है, तब हाहाकार करता हुआ

अंगुष्ठमात्रका मृत पुरुष अपने घरकी ओर देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणोंसे मुक्त शरीर चेष्टाहीन हो जाता है। उसको देखनेसे मनमें घृणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरंत अस्पृश्य एवं दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तमें कीट, विष्ठा या राखमें परिवर्तित हो जाता है। हे तार्क्ष्य! क्षणभरमें विध्वंस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत् शरीरसे होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कीर्ति, धर्म, आयु और परोपकार यही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदूत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डाँटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल। तुझे यमराजके घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें ले चलेंगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोंका रुदन सुनकर ऊँचे स्वरमें हा-हा करके विलाप करता हुआ वह मृतक यमदूतोंके द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है।

हे गरुड! एकादशाहके दिन उचित स्थानपर श्राद्ध करना चाहिये। प्राणोत्क्रमणसे लेकर क्रमशः छः पिण्डदान करने चाहिये। उन पिण्डोंका दान यथाक्रम मृतस्थान, द्वार, चत्वर (चौराहा), विश्राम-स्थल, काष्ठचयन (चिता) और अस्थिचयनके स्थानपर करना चाहिये। हे पक्षिन्! इन छः पिण्डोंकी परिकल्पनाका कारण तुम सुनो।

हे तार्क्ष्य! जिस स्थानमें मनुष्य मरता है, उस स्थानपर मृतकके नामसे 'शव' नामका पिण्ड दिया जाता है। उस पिण्डदानको देनेसे गृहके वास्तुदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और उससे भूमि तथा भूमिके अधिष्ठातृ देवता प्रसन्न होते हैं। द्वारपर जो दूसरा पिण्डदान दिया जाता है, उसका नाम 'पान्थ' है। उसे देनेसे द्वारस्थ गृहदेवता प्रसन्न होते हैं। चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डदान होता है। इस पिण्डदानको देनेसे भूत आदि देवयोनियाँ बाधा नहीं करतीं। विश्राम-स्थलपर होनेवाला पिण्डदान 'भूत' संज्ञक है। इसको देनेसे पिशाच, राक्षस और यक्ष आदि जो अन्य दिग्वासी योनियाँ हैं, वे जलाये जाने योग्य उस मृतक शरीरको अयोग्य नहीं बनातीं। हे खगेश्वर! चिता-स्थलपर पिण्डदान देनेसे प्रेतत्वकी उत्पत्ति होती है। एक मतमें चितापर दिये जानेवाले पिण्डदानका नाम साधक है और प्रेतकल्पके विद्वानोंने इस श्राद्धको प्रेतके नामसे अभिहित किया है। चितामें पिण्डदानके बाद ही 'प्रेत' नामसे पिण्डदान देना चाहिये। इस प्रकार इन पाँचों पिण्डोंसे शव आहुतिके योग्य होता है अन्यथा पूर्वोक्त उपघातक होते हैं।

प्राणोत्क्रमणके स्थानपर पहला पिण्डदान देना चाहिये। उसके बाद दूसरा पिण्डदान आधे मार्गमें और तीसरा चितापर देना चाहिये। पहले पिण्डमें विधाता, दूसरेमें गरुडध्वज तथा तीसरेमें यमदूत—इस प्रकारका प्रयोग कहा गया है। तीसरा पिण्डदान देते ही मृत व्यक्ति शरीरके दोषोंसे मुक्त हो जाता है।

इसके बाद चिता प्रज्वलित करनेके लिये वेदिका निर्माण करके उसका उल्लेखन, उद्धरण और अभ्युक्षण आदि करके विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके पुष्प और अक्षतसे क्रव्याद नामके अग्निदेवकी पूजा करके यह प्रार्थना करनी चाहिये—

**त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः॥**
**उपसंहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय।**

(१५।४४-४५)

'हे क्रव्याद अग्निदेव! आप महाभूततत्त्वोंसे बने हुए इस जगत्के कारण, पालनहार एवं संहारक हैं। अतः इस मृत व्यक्तिको आप स्वर्ग पहुँचायें।'

इस प्रकार क्रव्याद नामक अग्निदेवकी विधिवत्

पूजा करके शवको जलानेका कार्य करे। मृतकका आधा शरीर जल जानेपर घृतकी आहुति देनी चाहिये। **'लोमभ्यः स्वाहा०'**इस मन्त्रसे यथाविधि होम करना चाहिये। चितापर उस प्रेतको रखकर आज्याहुति देनी चाहिये। यम, अन्तक, मृत्यु, ब्रह्मा, जातवेदस्के नामसे आहुति देकर एक आहुति प्रेतके मुखपर दे। सबसे पहले अग्निको ऊपरकी ओर प्रज्वलित करे। तदनन्तर चिताके पूर्वभागको उसी अग्निसे जलाये। इस प्रकार चिताको जलाकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित तिलमिश्रित आज्याहुति पुनः प्रदान करे—

**अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।**
**असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलितपावकः॥**
(१५। ४९)

'हे अग्निदेव! आप इससे उत्पन्न हुए हैं। पुनः आपसे यह उत्पन्न हुआ है। इस मृतककी स्वर्गकामनाके लिये आपके निमित्त यह स्वाहा है।'

इस प्रकार तिलमिश्रित समन्त्रक आज्याहुति देकर पुत्रको दाह करना चाहिये। उस समय उसे तेज रुदन करना चाहिये। ऐसा करनेसे मृतकको सुख प्राप्त होता है। दाह-संस्कारके पश्चात् वहींपर अस्थि-संचयन करना चाहिये। उसके बाद प्रेतके दाहजन्य क्लेशकी शान्तिके लिये पिण्डदान दे।

दाह-संस्कारके पश्चात् मृत व्यक्तिके पुत्रोंको वस्त्रके सहित स्नान करना चाहिये। तदनन्तर नामगोत्रोच्चार करते हुए वे तिलाञ्जलि दें। उसके बाद गाँव या जनपदके सभी लोग ताली बजा-बजाकर विष्णु-नाम-संकीर्तन और मृतकके गुणोंकी चर्चा करें। सभी लोग उस मृत व्यक्तिके घर आकर द्वारके दक्षिण भागमें गोमय और श्वेत सरसोंको रखें। अपने मनमें वरुणदेवका ध्यान कर नीमकी पत्तियोंका भक्षण तथा घीका प्राशन करके वे सभी अपने-अपने घर जायँ।

हे खगेश्वर! कुछ लोग चितास्थानको दूधसे सींचते हैं। मृतकको जलाञ्जलि देते हुए अश्रुपात नहीं करना चाहिये। बन्धु-बान्धवोंके जो उस समय रोते हुए मुँहसे कफ और नेत्रोंसे आँसू गिराया जाता है, उसको ही वह प्रेत विवश होकर खाता है। अतः उन सभीको उस समय रोना नहीं चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार क्रिया करनी चाहिये।

हे तार्क्ष्य! सूर्यके अस्त हो जानेके बाद घरके बाहर अथवा कहीं एकान्तमें चौराहेपर दाह-क्रियाके दिनसे लेकर तीन दिनतक मिट्टीके पात्रमें दूध और जल देना चाहिये; क्योंकि मरनेके बाद जो मूढ-हृदय जीवात्मा है, वह पुनः उस शरीरको प्राप्त करनेकी इच्छासे यमदूतोंके पीछे-पीछे श्मशान, चौराहा तथा घरका दर्शन करता हुआ यमलोकको जाता है। प्रतिदिन दशाहतक प्रेतके लिये पिण्डदान और जलाञ्जलि देनी चाहिये। जबतक दशाह-संस्कार न हो जाय, तबतक एक जलाञ्जलि प्रतिदिन अधिक बढ़ाना अनिवार्य है। यह और्ध्वदैहिक संस्कार पुत्रके द्वारा अपेक्षित है। उसके अभावमें पत्नीको करना चाहिये। पत्नीके न होनेपर शिष्य, उसके न होनेपर सहोदर भाई कर सकता है। श्मशान अथवा अन्य किसी तीर्थमें मृतकके लिये जल और पिण्डदान देना चाहिये। पहले दिन शाक-मूल और फल, भात या सत्तू आदिमेंसे जिस-किसीद्वारा पिण्डदान दिया जाय, उसीके द्वारा बादके दिनोंमें भी पिण्डदान देना चाहिये।

हे खगेश! दस दिनोंतक प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रगण पिण्डदान देते हैं। दिये गये पिण्डका प्रतिदिन चार भाग हो जाता है, उसके दो भागसे मृतकका शरीर बनता है, तीसरा भाग यमदूत ले लेते हैं और चौथा भाग मृतकको खानेके लिये मिलता है। नौ दिन-रातमें प्रेत पुनः शरीरयुक्त हो जाता है। शरीर बन जानेपर दसवें पिण्डसे प्राणीको अत्यधिक भूख लगती है।

दस दिनके पिण्डमें विधि[1], मन्त्र, स्वधा, आवाहन और आशीर्वादका प्रयोग नहीं होता है, केवल नाम तथा गोत्रोच्चारपूर्वक पिण्डदान दिया जाता है। हे पक्षिन्! मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात् पुनः शरीर उत्पन्न होता है। पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे मूर्धा, दूसरे दिनके पिण्डदानसे ग्रीवा और दोनों स्कन्ध, तीसरे दिनके पिण्डदानसे हृदय, चौथे दिनके पिण्डदानसे पृष्ठ, पाँचवें दिनके पिण्डदानसे नाभि, छठे दिनके पिण्डदानसे कटिप्रदेश, सातवें दिनके पिण्डदानसे गुह्यभाग, आठवें दिनके पिण्डदानसे ऊरु, नौवें दिनके पिण्डदानसे तालु-पैर और दसवें दिनके पिण्डदानसे क्षुधाकी उत्पत्ति होती है। जीवात्मा शरीर प्राप्त करनेके पश्चात् भूखसे पीड़ित हो करके घरके दरवाजेपर रहता है। दसवें दिन जो पिण्डदान होता है, उसको मृतकके प्रिय भोज्य-पदार्थसे बना करके देना चाहिये, क्योंकि शरीर-निर्माण हो जानेपर मृतकको अत्यधिक भूख लग जाती है, प्रिय भोज्य-पदार्थके अतिरिक्त अन्य किसी अन्नादिक पदार्थोंसे बने हुए पिण्डका दान देनेसे उसकी भूख दूर नहीं होती है।

एकादशाह और द्वादशाहके दिन प्रेत भोजन करता है। मरे हुए स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये प्रेत शब्दका उच्चारण करना चाहिये। उन दिनों दीप, अन्न, जल, वस्त्र जो कुछ भी दिया जाता है, उसको प्रेत शब्दके द्वारा देना चाहिये, क्योंकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है[2]।

त्रयोदशाहको पिण्डज शरीर धारण करके भूख-प्याससे पीड़ित वह प्रेत यमदूतोंके द्वारा महापथपर लाया जाता है। जो प्रेत पापी होते हैं, उनका मार्ग शीत, ताप, शंकुके आकारका चुभनेवाला, मांस खानेवाले जन्तु तथा अग्निसे परिव्याप्त रहता है। जो सुकृती हैं उनका मार्ग सब प्रकारसे सौम्य है, उनको उस मार्गमें कोई कष्ट नहीं होता है। असिपत्रवनसे व्याप्त उस मार्गमें इतने दुःख हैं कि क्षुधा-प्याससे पीड़ित उस प्रेतको नित्य यमदूत अत्यधिक संत्रास देते हैं। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ सैंतालिस योजन चलता है। यमदूतोंके पाशसे बँधा, हा-हा करके विलाप करता हुआ वह प्रेत अपने घरको छोड़कर दिन और रात चलकर यमलोक पहुँचता है। उस महापथमें पड़नेवाले प्रसिद्ध पुरोंके शुभाशुभ भोग प्राप्त करते हुए वह यमलोकको जाता है। इस मार्गमें क्रमशः— याम्यपुर, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वनगर, शैलागम, क्रौञ्चपुर, क्रूरपुर, विचित्रभवन, बह्वापद, दुःखद, नानाक्रन्दनपुर, सुतप्तभवन, रौद्रनगर, पयोवर्षण, शीताढ्य और बहुधर्म-भीतिभवन नामक प्रसिद्ध पुर हैं।

त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवींके दिन यमदूत प्रेतको उस मार्गपर उसी प्रकारसे पकड़कर ले जाते हैं, जिस प्रकार मनुष्य बंदरको पकड़कर ले जाता है। उस प्रकारसे बँधा हुआ वह प्रेत चलते हुए नित्य 'हा पुत्र, हा पुत्र' का करुण विलाप करता है। वह कहता है कि मैंने किस प्रकारका कर्म किया है जो ऐसा कष्ट मैं भोग रहा हूँ। वह यह भी कहते हुए चलता है कि यह मनुष्य-योनि कैसे प्राप्त होती है। मैंने इसको व्यर्थमें गँवा दिया है। प्राणी इस मनुष्य-योनिको बहुत बड़े पुण्यसे प्राप्त करता है। उसको पाकर मैंने याचकोंको स्वार्जित धन दानमें नहीं दिया। आज वह भी पराधीन हो गया है। ऐसा कहकर वह गद्‌गद हो उठता है[3]। जब यमदूत

---

१-पार्वणादि श्राद्धोंमें निर्दिष्ट पिण्डदानविधि।

२-दीपमन्नं जलं वस्त्रं यत्किञ्चिद्वस्तु दीयते। प्रेतशब्देन तद्देयं मृतस्यानन्ददायकम्॥

३-मानुष्यं लभ्यते कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति। महता पुण्ययोगेन मानुष्यं जन्म लभ्यते॥
न तत् प्राप्य प्रदत्तं हि याचकेभ्यः स्वकं धनम्। पराधीनं तदभवदिति ब्रूते (रौति) सगद्गदः॥

उसको अत्यधिक पीड़ित करते हैं तो वह बार-बार अपने पूर्व-शरीरजन्य कर्मोंका स्मरण करता हुआ इस प्रकार कहता है—

सुख-दुःखका दाता कोई दूसरा नहीं है। जो लोग सुख-दुःखका दाता दूसरेको समझते हैं, वे कुबुद्धि ही हैं। जीवात्मा सदैव पहले किये गये कर्मका भोग करता है। हे देही! तुमने जो कुछ किया है, उसमें निस्तार करो[1]। मैंने न दान दिया है, न अग्निमें आहुति डाली है, न हिमालय पर्वतकी गुफामें जाकर तपस्या ही की है और न तो गङ्गाके परम पवित्र जलका ही सेवन किया है। हे जीव! तुमने जो कुछ भी किया है, उसीका फल भोग करो। हे देही! पहले तुमने नित्य न दान दिया है, न गोदान किया है, न आह्निक कृत्य किया है, न तो वेदका दान किया, न शास्त्रको देखा और न शास्त्रबोधित मार्गका सेवन किया, इसलिये हे जीव! जैसा तुमने किया है, अब उसीमें अपना निस्तार करो। हे देही! तुमने जलरहित देशमें मनुष्य और पशु-पक्षियोंके लिये जलाशयका निर्माण नहीं करवाया है, न गायोंकी क्षुधा-शान्ति लिये गोचर-भूमि ही छोड़ी है। हे देही! जो कुछ किया है, अब उसका फल भोग करो।[2]

हे पक्षिन्! पुरुष प्रेतके द्वारा कहे गये उक्त वचनोंको मैंने सुनाया। अब स्त्रीका शरीर लेकर देही पूर्व किये हुए कर्मोंके सम्बन्धमें जैसा कहता है, उसे सावधान होकर सुनो—'हे देहिन्! मैंने पतिके साथ रहकर उन्हें सुख नहीं दिया है। उनके मरनेपर मैं उनके साथ चितामें भी नहीं प्रविष्ट हुई हूँ और न तो उनके मर जानेपर उस वैधव्य-व्रतका ही पालन किया है, अतएव जो कुछ नहीं किया है उसका फलभोग मैं कर रही हूँ। मैंने मासोपवास अथवा चान्द्रायणव्रतके नियमोंसे इस शरीरका शोधन भी नहीं किया है। हे जीव! स्त्रीका शरीर बहुत-से दुःखोंका पात्र है, पहले किये गये बुरे कर्मोंके अनुसार मैंने इसे प्राप्त किया और इसे भी व्यर्थ ही गँवा दिया। (अध्याय १५)

# यममार्गके सोलह पुरोंका वर्णन

**श्रीभगवान्‌ने कहा—**हे खगेश! इस प्रकार करुण-क्रन्दन और विलाप करते हुए अत्यधिक दुःखित प्रेतको सत्रह दिनतक अकेले वायुमार्गमें ही यमदूतोंके द्वारा निर्दयतापूर्वक खींचा जाता है। अट्ठारहवाँ दिन-रात पूर्ण होनेपर पहले वह 'याम्यपुर' पहुँचता है। उस रमणीक नगरमें प्रेतोंके महान् गण रहते हैं। वहाँ पुष्पभद्रा नदी तथा देखनेमें सुन्दर लगनेवाला एक वटवृक्ष है। यमदूत वहाँ पहुँचकर उस प्रेतको विश्राम करनेका समय देते हैं। वहाँ प्रेत दुःखित होकर अपनी स्त्री और पुत्रादि सगे-सम्बन्धियोंसे प्राप्त होनेवाले सुखका स्मरण करता है। मार्गमें पड़नेवाले परिश्रमसे थका एवं भूख-प्यासके व्याकुल वह प्रेत वहाँ करुण विलाप करता है। उस समय वह धन, स्त्री, पुत्र, घर, सुख, नौकर और मित्रके विषयमें तथा अन्य सभीके विषयमें सोचता है। उस नगरमें भूख-प्यासके

१-सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुरा कृतं कर्म सदैव भुज्यते देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ (१५।८९)

२-मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे। न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम्। पुरा न दृष्टं न च सेवितोऽध्वा देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे। गोतृप्तिहेतोर्न कृतं हि गोचरं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(१५।९०—९२)

पीड़ित उस प्रेतको देखकर यमदूत कहते हैं।

**यमदूतोंने कहा**—'हे प्रेत! कहाँ धन है, कहाँ पुत्र है, कहाँ स्त्री है, कहाँ घर है और कहाँ तू इस प्रकारका दु:ख झेल रहा है! चिरकालतक अब तू अपने कर्मोंसे अर्जित पापोंका भोग कर और इस महापथपर चल। हे परलोकके पथिक! तुम जानते हो कि राहगीरोंका बल पाथेयके वशमें है। निश्चित ही तुझे उस मार्गसे चलना होगा, जहाँ कुछ क्रय-विक्रय करना भी सम्भव नहीं है।'

हे पक्षिराज! यमदूतोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेके बाद वह यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे मारा जाता है। तत्पश्चात् स्नेहवश अथवा कृपा करके भूलोकमें पुत्रोंके हाथोंसे दिये गये मासिक पिण्डको वह खाता है। उसके बाद वहाँसे वह 'सौरिपुर'के लिये चल देता है। उस नगरमें कालरूपधारी जंगम नामका राजा है। उसको देखकर प्रेत भयभीत हो उठता है और विश्राम करना चाहता है। त्रैपाक्षिक श्राद्धमें दिये गये अन्न और जलका वह उसी नगरमें उपभोग करके दिन और रात चलकर सुन्दर बसे हुए 'नगेन्द्रभवन' नामक नगरकी ओर जाता है। उस महापथपर चलते हुए महाभयंकर वन देखकर वह करुण विलाप करता है। वहाँके कष्टोंसे दु:खित होकर वह बार-बार रोता है। दो मास बितानेके पश्चात् वह उस नगरमें पहुँचता है। यहाँ वह अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दिये गये अन्न और जलको खाता-पीता है। उसके बाद यमदूत पाशमें बाँधकर उसे दु:ख देते हुए पुन: आगेकी ओर ले जाते हैं। तीसरे मासमें वह 'गन्धर्वनगर' पहुँच जाता है। तीसरे मासमें दिये गये श्राद्ध-पिण्डका यहाँ भक्षण करके चौथे मासमें वह 'शैलागम' नामक नगर पहुँचता है। यहाँ प्रेतके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा होती है। वहाँ वह चौथे मासमें दिये गये श्राद्ध-पिण्डको खाकर संतुष्ट होता है। इसके बाद प्रेत पाँचवें मासमें 'क्रौञ्चपुर' जाता है। उस पुरमें पुत्रोंके द्वारा दिये गये पाँचवें मासके श्राद्धके पिण्डको खाता है। तदनन्तर छठे मासमें प्रेत 'क्रूरपुर' नामक नगरकी यात्रा करता है। उस पुरमें छठे मासमें पुत्रोंद्वारा दिये गये श्राद्ध-पिण्डको खाकर उसकी संतृप्ति होती है; किंतु आधे मुहूर्तभर विश्राम करनेके बाद उसका हृदय पुन: दु:खसे काँपने लगता है। यमदूतोंसे तर्जित होकर वह प्रेत उस पुरको लाँघकर 'विचित्रभवन'की ओर प्रस्थान करता है जहाँका राजा विचित्र है। यमराजका छोटा भाई सौरि ही यहाँके राज्यपर शासन करता है।

हे पक्षिराज! पाँच मास और पंद्रह दिनपर ऊनषाण्मासिक श्राद्ध होता है। अत: यमदूतोंके द्वारा संत्रस्त वह प्रेत उसी 'विचित्रभवन'में ऊनषाण्मासिक श्राद्ध-पिण्डका उपभोग करता है। मार्गमें बार-बार उसको भूख पीड़ा पहुँचाती है। अत: यमदूतोंके द्वारा रोके जानेपर भी वह उस मार्गमें विलाप करता है कि क्या कोई पुत्र या बान्धव है? जो मेरे मरनेपर शोक-सागरमें गिरते हुए मुझे सुखी नहीं कर रहा है? इसी समय वहाँपर उसके सामने हजारों मल्लाह आते हैं और कहते हैं कि 'सौ योजन विस्तृत मवाद और रक्तसे पूर्ण नाना प्रकारकी मछलियोंसे व्याप्त, नाना पक्षिगणोंसे आवृत महावैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छा करनेवाले तुम्हें हम लोग सुखपूर्वक तारेंगे। किंतु हे पथिक! यदि उस मर्त्यलोकमें तुम्हारे द्वारा गोदान दिया गया है तो उस नावसे तुम पार जाओ।' मनुष्योंका अन्त समय आनेपर वैतरणी-गोदान ही हितकारी होता है। अत: शरीर स्वस्थ रहनेपर वैतरणी-व्रत करना चाहिये और वैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छासे विद्वान् ब्राह्मणको गोदान करना चाहिये। वह पापीके समस्त पापोंको विनष्ट करके उसे विष्णुलोक ले जाता है। जिसने वैतरणी-दान नहीं किया है, वह प्रेत उसी नदीमें जाकर डूबने लगता है। डूबते हुए स्वयं अपनी

निन्दा करता हुआ कहता है कि 'मैंने पाथेय-हेतु ब्राह्मणको कुछ भी दान नहीं दिया है। न मैंने दान किया है, न तो मैंने अग्निमें आहुति दी है, न भगवन्नामका जप ही किया है, न तीर्थमें जाकर स्नान ही किया है और न भगवान्‌की स्तुति ही की है। हे मूर्ख! जैसा कर्म तुमने किया है, अब वैसा ही भोग कर।' ऐसा कहनेके बाद यमदूतोंसे हृदयमें मारा जाता हुआ वह प्रेत उसी समय किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है और वैतरणीके दूसरे तटपर दिये गये षाण्मासिक श्राद्धके घटादिक दान एवं पिण्डका भोजन करके आगेकी ओर बढ़ता है। अतः हे तार्क्ष्य! षाण्मासिक श्राद्धपर सत्पात्र ब्राह्मणको विशेषरूपसे भोजन कराना चाहिये।

हे गरुड! इसके बाद वह प्रेत एक दिन-रातमें दो सौ सैंतालीस योजनकी गतिसे चलता है। सातवाँ मास आनेपर वह 'बह्वापद' नामक पुरमें पहुँचता है। सप्तम मासिक श्राद्धमें जो कुछ दान दिया गया है, उसको खाकर आठवें मासकी समाप्तिपर उसकी यात्रा 'दुःखदपुर' तथा 'नानाक्रन्दनपुर'की ओर होती है। अत्यन्त दारुण क्रन्दन करते हुए नानाक्रन्दगणोंको देखकर वह प्रेत स्वयं शून्यहृदय एवं दुःखित होकर बहुत जोर-जोरसे रोने लगता है। वहाँ आठवें मासके श्राद्धको खाकर वह सुखी होता है। नगरको छोड़कर वह 'तप्तपुर' चला जाता है। 'सुतप्तभवन'में पहुँचकर प्रेत नवें मासके श्राद्धमें पुत्रके द्वारा किये गये पिण्डदान एवं कराये गये ब्राह्मण-भोजनको खाता है। दसवें मासमें वह 'रौद्रनगर' जाता है। वहाँ वह दसवें मासके श्राद्धका भोजन करके आगे स्थित 'पयोवर्षण' नामक पुरके लिये चल देता है। वहाँ पहुँचकर वह ग्यारहवें मासके श्राद्धका भोजन करता है। वहाँ मेघोंकी ऐसी जलवर्षा होती है, जिससे प्रेतको बहुत ही कष्ट होता है। तदनन्तर आगेकी ओर बढ़ता हुआ वह प्रेत अत्यन्त कड़कती हुई धूप और प्याससे व्यथित हो उठता है। बारहवें मासमें पुत्रने श्राद्धमें जो कुछ दान दिया है, उसका ही वह दुःखित प्रेत वहाँपर भोग करता है। इसके बाद वर्ष-समाप्तिके कुछ दिन शेष रहनेपर अथवा ग्यारह मास पंद्रह दिन बीत जानेपर वह 'शीताढ्यपुर' जाता है, जहाँ प्राणियोंको अत्यन्त कष्ट देनेवाली ठंडक पड़ती है। वहाँकी ठंडीसे व्यथित, भूखसे व्याकुल वह प्रेत इस आशाभरी दृष्टिसे दसों दिशाओंको देखने लगता है कि 'क्या मेरा कोई बन्धु-बान्धव है जो मेरे इस दुःखको दूर कर दे?' उस समय यमदूत उस प्रेतसे यह कहते हैं कि 'तेरा पुण्य वैसा कहाँ है, जो इस कष्टमें सहायता कर सके।' उनके उस वचनको सुनकर वह प्रेत 'हाय दैव!' ऐसा कहता है। निश्चित ही पूर्वजन्ममें किया गया पुण्य दैव है। उसको 'मैंने संचित नहीं किया है', ऐसा मन-ही-मन अनेक प्रकारसे विचार करके वह प्रेत पुनः धैर्यका सहारा लेता है।

इसके बाद वहाँसे चौवालीस योजन परिक्षेत्रमें फैला हुआ गन्धर्व और अप्सराओंसे परिव्याप्त अत्यन्त मनोरम 'बहुधर्मभीतिपुर' पड़ता है, जहाँ चौरासी लाख मूर्त एवं अमूर्त प्राणी निवास करते हैं। इस पुरमें तेरह प्रतीहार हैं, जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं और श्रवण कहलाते हैं। वे प्राणियोंके शुभाशुभकर्मका बार-बार विचार करके उसका वर्णन करते हैं। मनुष्य जो कहते और करते हैं, उन सभी बातोंको ये ही ब्रह्माजीके पुत्र श्रवणदेव चित्रगुप्त तथा यमराजसे बताते हैं। वे दूरसे ही सब कुछ सुनने और देखनेमें समर्थ हैं। इस प्रकारकी चेष्टावाले एवं स्वर्गलोक और भूलोक तथा पातालमें संचरण करनेवाले वे श्रवण आठ हैं। उन्हींके समान उनकी पृथक्-पृथक् श्रवणी नामक उग्र पत्नियाँ हैं। उनकी भी शक्ति वैसी ही है, जैसी उनके पतियोंकी है। वे मर्त्यलोकके अधिकारीके रूपमें हैं। व्रत, दान, स्तुतिसे जो उनकी पूजा करता है, उसके लिये वे सौम्य और सुखद मृत्यु देनेवाले हो जाते हैं। (अध्याय १६)

# समस्त शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी ब्रह्माके पुत्र श्रवणदेवोंका स्वरूप

**श्रीगरुडने कहा**—हे देव! यह एक संदेह मेरे हृदयको बाधित कर रहा है कि श्रवण किसके पुत्र हैं, यमलोकमें वे किस प्रकारसे रहते हैं? हे प्रभो! किस शक्तिके प्रभावसे वे मानव-कर्मको जान लेते हैं? वे कैसे किसी बातको सुन लेते हैं? उनको यह ज्ञान किससे प्राप्त हुआ है? हे देवेश्वर! उन्हें भोजन कहाँसे प्राप्त होता है? आप प्रसन्न होकर मेरे इस समस्त संदेहको नष्ट करें। पक्षिराज गरुडके इस कथनको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—

**श्रीकृष्णने कहा**—हे तार्क्ष्य! सभी प्राणियोंको सुख देनेवाले मेरे इस वचनको तुम सुनो। श्रवणसे सम्बन्धित उन समस्त बातोंको तुम्हें मैं बताऊँगा। प्राचीनकालमें जब समस्त स्थावर-जंगमात्मक सृष्टि एकाकार हो गयी थी और मैं समस्त सृष्टिको आत्मलीन करके क्षीरसागरमें सो रहा था। उस समय मेरे नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। उन्होंने एकाकार उस सृष्टिको चार प्रकारके प्राणियोंमें विभक्त किया। तदनन्तर ब्रह्मासे ही बनी सृष्टिके पालनका भार विष्णुने स्वीकार किया। तत्पश्चात् ब्रह्माके द्वारा संहारमूर्ति रुद्रका निर्माण हुआ। उसके बाद समस्त चराचर जगत्‌में प्रवाहित होनेवाले वायु, अत्यन्त तेजस्वी सूर्य तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराजकी सृष्टि हुई।

इन सभीकी रचना करके ब्रह्मा पुनः तपस्यामें निमग्न हो गये। विष्णुके नाभिपङ्कजमें तपस्या करते हुए उनको बहुत वर्ष बीत गये। वहींपर लोकसृष्टिमें लगे हुए ब्रह्माने कहा कि जिन लोगोंकी उत्पत्ति पहले हुई है, उन सभीको अपनी योग्यताके अनुसार कर्ममें लग जाना चाहिये। अतः रुद्र, विष्णु तथा धर्म पृथ्वीके शासन-कार्यमें लग गये, किंतु उन लोगोंने कहा कि हम सभी लोगोंको लोक-व्यवहारका कुछ भी ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्धमें आप ही कुछ बतायें। इस विषयमें चिन्तित होकर सभी देवताओंने उस समय परस्पर विचार-विमर्श किया। तत्पश्चात् देवताओंने हाथमें पत्र-पुष्प लेकर ब्रह्म-मन्त्रका ध्यान किया। उसके बाद देवताओंकी प्रेरणासे ब्रह्माने अत्यन्त तेजस्वी एवं बड़े-बड़े नेत्रोंवाले बारह पुत्रोंको जन्म दिया। इस संसारमें जो कोई जैसा भी शुभ या अशुभ बोलता है, उसे वे अत्यन्त शीघ्र ब्रह्माके कानोंतक पहुँचाते हैं। हे पक्षिन्! दूरसे ही सुनने एवं दूरसे ही देख लेनेका विशेष ज्ञान उन्हें प्राप्त है। चूँकि वे सब कुछ सुन लेते हैं, उसीके कारण उन्हें 'श्रवण' कहा गया है। वे आकाशमें रहकर प्राणियोंकी जो भी चेष्टा होती है, उसको जानकर धर्मराजके सामने मृत्युकालके अवसरपर कहते हैं। उनके द्वारा प्राणियोंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंकी विवेचना उस समय धर्मराजसे की जाती है। हे वैनतेय! संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी अभिलषित याचककी इच्छाको संतुष्ट करनेवाले हैं। वे अश्वोंपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोक्षकी आकाङ्क्षा रखते हैं, वे हंसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्राणी जो धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटों तथा पत्थरोंके बीचसे कष्ट झेलता हुआ 'असिपत्रवन'में जाता है।

हे पक्षिराज! इस मनुष्यलोकमें जो कोई भी पक्वान्न, वर्धनी और जलपात्रके द्वारा मेरे सहित

इन श्रवण देवोंकी पूजा करता है, उसको मैं वह प्रदान करता हूँ, जिसकी प्राप्ति देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। भक्तिपूर्वक शुभ एवं पवित्र ग्यारह ब्राह्मण तथा बारहवें सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराकर मेरी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। ऐसा मनुष्य सभी देवताओंसे पूजित होकर सुख प्राप्त करता है। उनकी पूजासे मैं और चित्रगुप्तके सहित धर्मराज प्रसन्न होते हैं। उन्हींकी संतुष्टिसे धर्मपरायण लोग मेरे विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं।

हे खगेश्वर! जो प्राणी इन श्रवणदेवोंके माहात्म्य, उत्पत्ति और शुभ चेष्टाओंको सुनता है, वह पापसे संलिप्त नहीं होता है। वह इस लोकमें सुख भोगकर स्वर्गमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है।

(अध्याय १७)

# विविध दानादि कर्मोंका फल प्रेतको प्राप्त होना, पददानका माहात्म्य, जीवको अवान्तर-देहकी प्राप्तिका क्रम

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिन्! इन श्रवणदेवोंके वचनोंको सुनकर चित्रगुप्त पुनः क्षणभर स्वयं ध्यान करके मनुष्य जो कुछ भी दिन-रात पाप-पुण्य करते हैं, उन्हें धर्मराजसे निवेदन करते हैं।

हे तार्क्ष्य! मनुष्य वाणी, शरीर और मनसे जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, उन सबका वह भोग करता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रेतमार्गका निर्णय सुना दिया। मृत्युके पश्चात् प्रेत कहाँ रुकते हैं, उन सभी स्थानोंका भी वर्णन तुमसे कर दिया। जो

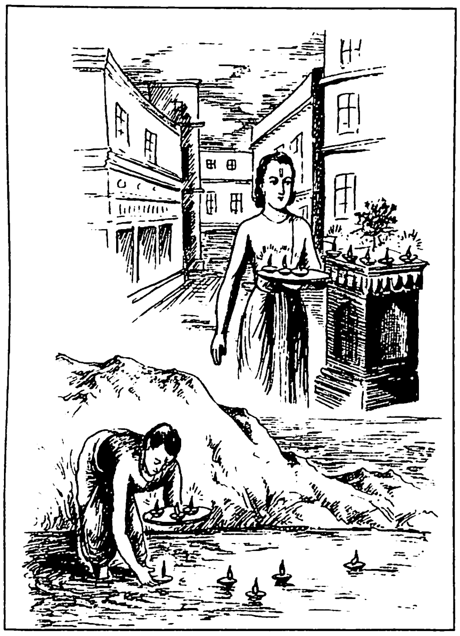

मनुष्य यह सब समझकर अन्नदान तथा दीपदान करता है, वह उस महामार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है।

जो दीपदान करते हैं, वे कुत्तोंसे परिव्याप्त लक्ष्यहीन मार्गमें पूर्ण प्रकाशके साथ गमन करते हैं। कार्तिकमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको रात्रिमें किया गया दीपदान प्राणियोंके लिये सुखकारी होता है।

अब मैं संक्षेपमें तुम्हें प्राणियोंके यममार्गके निस्तारका उपाय बताऊँगा।

हे गरुड! वृषोत्सर्गके पुण्यसे मनुष्य पितृलोकको जाता है, एकादशाहमें पिण्डदानसे देहशुद्धि होती है। जलसे परिपूर्ण घड़ेका दान करनेसे यमदूत संतुष्ट होते हैं। उस दिन शय्यादान करनेसे मनुष्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको जाता है। विशेषतः द्वादशाहके दिन सभी प्रकारका दान देना चाहिये और तेरह पददानके लिये विहित श्रेष्ठ वस्तुओंको द्वादशाहके दिन अथवा जो जीवित रहते हुए अपने कल्याणके निमित्त दान देता है, वह उसीके सहारे महामार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है।

हे खगराज! उस यममार्गमें सर्वत्र एक-जैसा ही व्यवहार होता है। उत्तम, मध्यम और अधमरूपमें किसी भी प्रकारका वर्गीकरण वहाँ वर्जित है।

जिसका भाग्य जैसा होता है, उसको उस मार्गमें वैसा ही भोग प्राप्त होता है। प्राणी स्वयं अपने लिये स्वस्थचित्तसे श्रद्धापूर्वक जो कुछ दान देता है, उसको वहाँपर प्राप्त करता है। मरनेपर जो बन्धु-बान्धवोंके द्वारा उसके लिये दिया जाता है, उसका आश्रय ले करके वह सुखी होता है।

**गरुडने कहा**—हे देवेश! तेरह पददान किसलिये करना चाहिये? यह दान किसे देना चाहिये? यह सब यथोचित रूपसे मुझे बतायें।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे पक्षिराज! छत्र, पादुका, वस्त्र, मुद्रिका, कमण्डलु, आसन और भोजनपात्र—ये सात प्रकारके पद माने गये हैं। पूर्ववर्णित महापथमें जो महाभयंकर 'रौद्र' नामक आतप (धूप) है, उसके द्वारा मनुष्य जलता है। छत्रका दान देनेसे प्रेतको तुष्टि देनेवाली शीतल छाया प्राप्त होती है। पादुका दान देनेसे मृतप्राणी अश्वारूढ़ होकर घोर असिपत्रवनको निश्चित ही पार कर जाते हैं। मृतप्राणीके उद्देश्यसे ब्राह्मणको आसन और भोजन देकर स्वागत करनेपर प्रेत महापथमें धीरे-धीरे चलता हुआ उस दान दिये गये अन्नको सुखपूर्वक ग्रहण करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्राणी उस यमलोकके महापथमें फैले हुए बहुत धूपवाले, वायुरहित और जलहीन मार्गमें निश्चित ही यथेच्छ जल एवं वायु प्राप्तकर सुखपूर्वक गमन करता है। मृतकके उद्देश्यसे जो व्यक्ति जलपूर्ण कमण्डलुका दान करता है, उसको निश्चित ही हजार पौसलोंके दानका फल प्राप्त होता है।

उदारतापूर्वक वस्त्रका दान देनेसे प्रेतात्माको महाक्रोधी काले और पीले वर्णवाले अत्यन्त भयंकर यमदूत कष्ट नहीं देते हैं। मुद्रिका दान देनेसे उस महापथमें अस्त्र-शस्त्रसे युक्त दौड़ते हुए यमदूत दिखायी नहीं देते हैं। पात्र, आसन, कच्चा अन्न, भोजन, घृत तथा यज्ञोपवीतके दानसे पददानकी पूर्णता होती है। यममार्गमें जाता हुआ भूख-प्याससे व्याकुल एवं थका हुआ प्रेत भैंसके दूधका दान करनेसे निश्चित ही सुखका अनुभव करता है।

**गरुडने कहा**—हे विभो! मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान अपने घरमें किया जाता है, वह प्रेततक किसके द्वारा पहुँचाया जाता है?

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे पक्षिन्! सर्वप्रथम वरुण दानको ग्रहण करते हैं, उसके बाद वे उस दानको मेरे हाथमें दे देते हैं। मैं सूर्यदेवके हाथोंमें सौंप देता हूँ और सूर्यदेवसे वह प्रेत उस दानको लेकर सुखका अनुभव करता है*।

बुरे कर्मके प्रभावसे वंशका विनाश हो जाता है और उस कुलके सभी प्राणियोंको नरकमें तबतक रहना पड़ता है, जबतक पापका क्षय नहीं हो जाता है।

इन नरकोंकी संख्या बहुत है। पर इनमेंसे इक्कीस नरक मुख्यरूपसे उल्लेख्य हैं—तामिस्र, लौहशंकु, महारौरव, शाल्मली, रौरव, कुड्‌वल, कालसूत्र, पूतिमृत्तिका, संघात, लोहतोद, सविष, सम्प्रतापन, महानरक, कालोल, सजीवन, महापथ, अवीचि, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक, असिपत्रवन और पतन नामवाले हैं। घोर यातना भोगते हुए जिनके बहुत-से वर्ष बीत जाते हैं और यदि संतति नहीं है तो वे यमके दूत बन जाते हैं। यमके द्वारा भेजे गये वे दूत मरे हुए मनुष्यके लिये प्रतिदिन बन्धु-बान्धवोंसे दानस्वरूप प्राप्त अन्न और जलका सेवन करते हैं। मार्गके मध्यमें जब वे भूख-प्याससे व्याकुल हो जाते हैं तो मरे हुए प्राणीका हिस्सा ही लूटकर खा-पी जाते हैं। मासके अन्तमें जो भोजन और पिण्डदान देते हैं, जब उसकी प्राप्ति उन्हें हो जाती है तो वे सभी उसको खाकर संतुष्ट हो जाते

* गृह्णाति वरुणो दानं मम हस्ते प्रयच्छति। अहं च भास्करे देवे भास्करात् सोऽश्नुते सुखम्॥ (१८। २७)

हैं। इसीसे उन्हें प्रतिदिन वर्षभर तृप्ति मिलती है।

इस प्रकार किये गये पुण्यके प्रभावसे प्रेत 'सौरिपुर'की यात्रा करता है। तदनन्तर एक वर्ष बीतनेपर वह प्रेत, यमराजके भवनके संनिकट स्थित 'बहुभीतिकर' नामक नगरमें पहुँचकर दशगात्रके पिण्डसे निर्मित हस्तमात्र परिमाणके शरीरको छोड़ देता है। जिस प्रकार रामको देखकर परशुरामका तेज उनके शरीरसे निकलकर राममें प्रविष्ट हो गया था, उसी प्रकार कर्मज शरीरका आश्रय लेकर वह पूर्व शरीरका परित्याग कर देता है, अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला वायुरूप वह शरीर शमीपत्रपर चढ़कर आश्रय लेता है। 'जिस प्रकार मनुष्य चलते हुए एक पैर भूमिपर रखकर दूसरे पैरको आगे बढ़ानेके लिये उठाता है, जैसे तृणजलौका (तृण जोंक) एक पाँवपर स्थिर होकर दूसरे पाँवको आगे बढ़ाती है, वैसे ही जीव भी कर्मानुसार एक देहसे दूसरे देहको धारण करता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रका परित्याग कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका त्याग करके नये शरीरको धारण करता है'—

**व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।**
**यथा तृणजलौकेव देही कर्मानुगोऽवशः॥**
**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
**नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-**
**न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥**

(१८।४१-४२)

(अध्याय १८)

# जीवका यमपुरीमें प्रवेश, वहाँ शुभाशुभ कर्मोंका फलभोग, कर्मानुसार अन्य देहकी प्राप्ति, मनुष्य-जन्म पाकर धर्माचरण ही मुख्य कर्तव्य

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—वायुरूप होकर भूखसे पीड़ित, कर्मजन्य शरीरका आश्रय लेकर जीव यमके साथ चित्रगुप्तपुरकी ओर जाता है। चित्रगुप्तपुर बीस योजन विस्तृत है। वहाँ रहनेवाले कायस्थ* सभी प्राणियोंके पाप-पुण्यका भली प्रकारसे सर्वेक्षण करते हैं। महादान करनेपर वहाँ गया हुआ व्यक्ति सुखका भोग करता है। चौबीस योजन विस्तृत वैवस्वतपुर है। लौह, लवण, कपास और तिलसे पूर्ण पात्रका दान करनेपर इस दानके फलस्वरूप यमपुरमें निवास करनेवाले दाताके पितर लोग संतृप्त होते हैं। वहाँपर धर्मध्वज नामका प्रतीहार सदैव द्वारपर अवस्थित रहता है। सप्तधान्यका दान देनेसे धर्मध्वज प्रसन्न हो जाता है। वहाँ जाकर

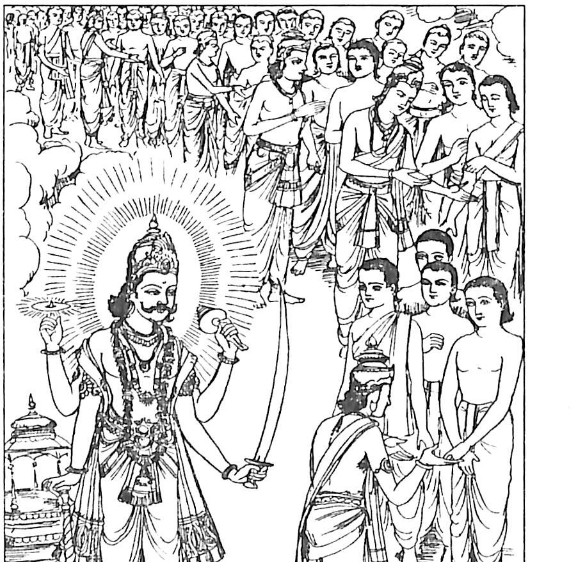

प्रतीहार प्रेतके शुभाशुभका वर्णन करता है। धर्मराजका

* कायस्थ नामकी एक देवयोनि विशेष है।

जो प्रशस्त एवं सुन्दर स्वरूप है, उस स्वरूपका दर्शन सज्जन और सुकृतियोंको प्राप्त होता है। जो दुराचारी जन हैं, वे अत्यन्त भयंकर यमके स्वरूपको देखकर भयभीत होकर हाहाकार करते हैं।

जिन मनुष्योंने दान किया है, उनके लिये वहाँपर कहीं भी भय नहीं है। आये हुए सुकृती जनको देखकर यमराज अपने आसनका इसलिये परित्याग कर देते हैं कि यह सुकृती मेरे इस मण्डलका भेदन करके ब्रह्मलोकको जायगा।[१] दानसे धर्म सुलभ हो जाता है और यममार्ग सुखावह हो जाता है। इस यमलोकका मार्ग अत्यन्त विशाल है, इसकी दुर्गमताके कारण इसका अनुगमन कोई नहीं करना चाहता। हे वत्स! बिना दान-पुण्य किये प्राणीका धर्मराजके भवनमें पहुँचना सम्भव नहीं है। उस रौद्र मार्गमें महाभयंकर यमके सेवक रहते हैं। एक-एक पुरके आगे एक-एक हजार सेवकोंकी उपस्थिति रहती है। यातना देनेवाले यमदूत पापीको प्राप्त करके पकाते हैं। वहाँपर यमदूत उसको एक मासतक रखते हैं। उस मासके बीतते ही वह एक चौथाई शेष रह जाता है।

हे कश्यपपुत्र! जिन लोगोंने और्ध्वदैहिक क्रियामें विहित दानोंको नहीं किया है, वे लोग बहुत कष्ट झेलते हुए उस मार्गमें चलते हैं। अतः प्राणीको यथाशक्ति दान देना चाहिये। दान न देनेपर प्राणी पशुके समान यमदूतोंके द्वारा पाशमें बाँधकर ले जाया जाता है। मनुष्य जैसा-जैसा कर्म करता है, उसी प्रकारकी योनिमें उसको जाना पड़ता है। वैसा ही उन योनियोंमें भोग भोगता हुआ वह सभी प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। जब मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, तब भी लौकिक सुखोंको अनित्य जानकर प्राणीको धर्माचरण करना चाहिये।

कृमि, भस्म अथवा विष्ठा ही शरीरकी परिणति है। जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी धर्माचरण नहीं करता, वह हाथमें दीपक रखता हुआ भी महाभयंकर अन्धकूपमें गिरता है। मनुष्य-जन्म प्राणीको बहुत बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। जो जीव इस योनिको पाकर धर्मका आचरण करता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। धर्मको व्यर्थ माननेवाला प्राणी दुःखपूर्वक जन्म-मरण प्राप्त करता है। हे पक्षिन्! सैकड़ों बार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेनेके बाद प्राणीको मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, उसमें भी द्विज होना अत्यन्त दुर्लभ है। जो व्यक्ति द्विज होकर धर्मका पालन करता है और विभिन्न व्रतोंका आदर एवं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करता है, वह उस धर्मकी ही कृपासे अमरत्व हस्तगत कर लेता है।[२] (अध्याय १९)

# प्रेतबाधाका स्वरूप तथा मुक्तिके उपाय

**श्रीगरुडने कहा—**हे प्रभो! प्रेतयोनिमें जो कोई भी प्राणी जाते हैं, वे कहाँ वास करते हैं? प्रेतलोकसे निकलकर वे कैसे और किस स्थानमें चले जाते हैं? चौरासी लाख योनियोंसे परिव्याप्त, यम तथा हजारों भूतोंसे रक्षित होनेपर भी प्राणी नरकसे निकलकर कैसे इस संसारमें विचरण करते

१-प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति सूर्यजः। एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥ (१९।९)

२-यथा यथा कृतं कर्म तां तां योनिं व्रजेन्नरः। तत्तथैव च भुञ्जानो विचरेत् सर्वलोकगः॥
अशाश्वतं परिज्ञाय सर्वलोकोत्तरं सुखम्। यदा भवति मानुष्यं तदा धर्मं समाचरेत्॥
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहानां प्रकृतिः सदा। अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतेत्तु वै॥
महापुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते। यस्तत् प्राप्य चरेद्धर्मं स गच्छेत् परमां गतिम्॥
अपि जानन् वृथा धर्मं दुःखमायाति याति च॥
जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम्।
यस्तत्र पालयति लालयति व्रतानि तस्यामृतं भवति हस्तगतं प्रसादात्॥ (१९।१६—२१)

हैं? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिराज! जहाँ प्रेतगण निवास करते हैं, उसको तुम सुनो। छलसे पराये धन और परायी स्त्रीका अपहरण तथा द्रोहसे मनुष्य निशाचर-योनिको प्राप्त होते हैं। जो लोग अपने पुत्रके हितचिन्तनमें ही अनुरक्त रहते हैं तथा सभी प्रकारका पाप करते हैं, वे शरीररहित होकर भूख-प्यासकी अथाह पीड़ाको सहन करते हुए यत्र-तत्र भटकते रहते हैं। वे प्रेत चोरके समान उस महापथके लिये पितृभागमें दिये गये जलका अपहरण करते हैं। तदनन्तर पुनः अपने घरमें आकर वे मित्रके रूपमें प्रविष्ट हो जाते हैं और वहींपर रहते हुए स्वयं रोग-शोक आदिकी पीड़ासे ग्रसित होकर सब कुछ देखते रहते हैं। वे एक दिनका अन्तराल देकर आनेवाले ज्वरका रूप धारण करके अपने सम्बन्धियोंको पीड़ा पहुँचाते हैं अथवा तिजरिया ज्वर बनकर और शीत-वातादिसे उन्हें कष्ट देते हैं। उच्छिष्ट अर्थात् जूठे अपवित्र स्थानोंमें निवास करते हुए उन प्रेतोंके द्वारा सदैव अभिलक्षित प्राणियोंको कष्ट देनेके लिये शिरोवेदना, विषूचिका तथा नाना प्रकारके अन्य बहुत-से रोगोंका रूप धारण कर लिया जाता है। इस प्रकार वे दुष्कर्मी प्रेत नाना दोषोंमें प्रवृत्त होते हैं।

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! वे प्रेत किस रूपसे किसका क्या करते हैं? किस विधिसे उनकी जानकारी प्राप्त की जा सकती है? क्योंकि वे न कुछ कहते हैं, न बोलते हैं? हे हृषीकेश! यदि आप मेरा कल्याण चाहते हों तो मेरे मनके इस व्यामोहको दूर कर दें। इस कलिकालमें प्रायः बहुत-से लोग प्रेतयोनिको ही प्राप्त होते हैं।

**श्रीविष्णुने कहा**—हे गरुड! प्रेत होकर प्राणी अपने ही कुलको पीड़ित करता है, वह दूसरे कुलके व्यक्तिको तो कोई आपराधिक छिद्र प्राप्त होनेपर ही पीड़ा देता है। जीते हुए तो वह प्रेमीकी तरह दिखायी देता है, किंतु मृत्यु होनेपर वही दुष्ट बन जाता है। जो भगवान् श्रीरुद्रके मन्त्रका जप करता है, धर्ममें अनुरक्त रहता है, देवता और अतिथिकी पूजा करता है, सत्य तथा प्रिय बोलनेवाला है, उसको प्रेत पीड़ा नहीं दे पाते हैं। जो व्यक्ति सभी प्रकारकी धार्मिक क्रियाओंसे परिभ्रष्ट हो गया है, नास्तिक है, धर्मकी निन्दा करनेवाला है और सदैव असत्य बोलता है, उसीको प्रेत कष्ट पहुँचाते हैं*। हे ताक्ष्र्य! कलिकालमें अपवित्र क्रियाओंको करनेवाला प्राणी प्रेतयोनिको प्राप्त होता है। हे काश्यप! इस संसारमें उत्पन्न एक ही माता-पितासे पैदा हुए बहुत-से संतानोंमें एक सुखका उपभोग करता है, एक पाप कर्ममें अनुरक्त रहता है, एक संतानवान् होता है, एक प्रेतसे पीड़ित रहता है और एक पुत्र धनधान्यसे सम्पन्न रहता है, एकका पुत्र मर जाता है, एकके मात्र पुत्रियाँ ही होती हैं। प्रेतदोषके कारण बन्धु-बान्धवोंके साथ विरोध होता है। प्रेतयोनिके प्रभावसे मनुष्यको संतान नहीं होती है। यदि संतान उत्पन्न भी होती है तो वह मर जाती है। प्रेतबाधाके कारण तो व्यक्ति पशुहीन और धनहीन हो जाता है। उसके कुप्रभावसे उसकी प्रकृतिमें परिवर्तन आ जाता है, वह अपने बन्धु-बान्धवोंसे शत्रुता रखने लगता है। अचानक प्राणीको जो दुःख प्राप्त होता है, वह प्रेतबाधाके कारण होता है। नास्तिकता, जीवन-वृत्तिकी समाप्ति, अत्यन्त लोभ तथा प्रतिदिन होनेवाले कलह—यह प्रेतसे पैदा होनेवाली पीड़ा है। जो पुरुष माता-पिताकी हत्या करता है, जो

* रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजकः। सत्यवाक् प्रियवादी च न प्रेतैः स हि पीड्यते॥
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको धर्मनिन्दकः। असत्यवादनिरतो नरः प्रेतैः स पीड्यते॥ (२०।१६-१७)

देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, उसे हत्याका दोष लगता है। यह पीड़ा प्रेतसे पैदा होती है। नित्य-कर्मसे दूर, जप-होमसे रहित और पराये धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य दु:खी रहता है, इन दु:खोंका कारण भी प्रेतबाधा ही है। अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषिका नाश होता है, व्यवहार नष्ट हो जाता है, समाजमें कलह उत्पन्न होता है, ये सभी कष्ट प्रेतबाधासे ही होते हैं। हे पक्षिराज! मार्गमें चलते हुए पथिकको जो बवंडरसे पीड़ा होती है, उसको भी तुम्हें प्रेतबाधा समझना चाहिये। यह बात मैं सत्य ही कह रहा हूँ।

प्राणी जो नीच जातिसे सम्बन्ध रखता है, हीन कर्म करता है और अधर्ममें नित्य अनुरक्त रहता है, वह प्रेतसे उत्पन्न पीड़ा है। व्यसनोंसे द्रव्यका नाश हो जाता है, प्राप्तव्यका विनाश हो जाता है। चोर, अग्नि और राजासे जो हानि होती है, यह प्रेतसम्भूत पीड़ा है। शरीरमें महाभयंकर रोगकी उत्पत्ति, बालकोंकी पीड़ा तथा पत्नीका पीड़ित होना—ये सब प्रेतबाधाजनित हैं। वेद, स्मृति-पुराण एवं धर्मशास्त्रके नियमोंका पालन करनेवाले परिवारमें जन्म होनेपर भी धर्मके प्रति प्राणीके अन्त:करणमें प्रेमका न होना प्रेतजनित बाधा ही है। जो मनुष्य प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे देवता, तीर्थ और ब्राह्मणकी निन्दा करता है, यह भी प्रेतोत्पन्न पीड़ा है। अपनी जीविकाका अपहरण, प्रतिष्ठा तथा वंशका विनाश भी प्रेतबाधाके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे सम्भव नहीं है। स्त्रियोंका गर्भ विनष्ट हो जाता है, जिनमें रजोदर्शन नहीं होता और बालकोंकी मृत्यु हो जाती है, वहाँ प्रेतजन्य बाधा ही समझनी चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध भावसे सांवत्सरादिक श्राद्ध नहीं करता है, वह भी प्रेतबाधा है। तीर्थमें जाकर दूसरेमें आसक्त हुआ प्राणी जब अपने सत्कर्मका परित्याग कर दे तथा धर्मकार्यमें स्वार्जित धनका उपयोग न करे तो उसको भी प्रेतजन्य पीड़ा ही समझना चाहिये। भोजन करनेके समय कोपयुक्त पति-पत्नीके बीच कलह, दूसरोंसे शत्रुता रखनेवाली बुद्धि—यह सब प्रेत-सम्भूत पीड़ा है। जहाँ पुष्प और फल नहीं दिखायी देते तथा पत्नीका विरह होता है, वहाँ भी प्रेतोत्पन्न पीड़ा है।

जिन लोगोंमें सदैव उच्चाटनके अत्यधिक चिह्न दिखायी देते हैं, अपने क्षेत्रमें उसका तेज निष्फल हो जाता है तो उसे प्रेतजनित बाधा ही माननी चाहिये। जो व्यक्ति सगोत्रीका विनाशक है, जो अपने ही पुत्रको शत्रुके समान मार डालता है, जिसके अन्त:करणमें प्रेम और सुखकी अनुभूतियोंका अभाव रहता है, वह दोष उस प्राणीमें प्रेतबाधाके कारण होता है। पिताके आदेशकी अवहेलना, अपनी पत्नीके साथ रहकर भी सुखोपभोग न कर पाना, व्यग्रता और क्रूर बुद्धि भी प्रेतजन्य बाधाके कारण होती है।

हे तार्क्ष्य! निषिद्ध कर्म, दुष्ट-संसर्ग तथा वृषोत्सर्गके न होने और अविधिपूर्वक की गयी और्ध्वदैहिक क्रियासे प्रेत होता है। अकालमृत्यु या दाह-संस्कारसे वञ्चित होनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है, जिससे प्राणीको दु:ख झेलना पड़ता है। हे पक्षिराज! ऐसा जानकर मनुष्य प्रेत-मुक्तिका सम्यक् आचरण करे। जो व्यक्ति प्रेत योनियोंको नहीं मानता है, वह स्वयं प्रेतयोनिको प्राप्त होता है। जिसके वंशमें प्रेत-दोष रहता है, उसके लिये इस संसारमें सुख नहीं है। प्रेतबाधा होनेपर मनुष्यकी मति, प्रीति, रति, लक्ष्मी और बुद्धि—इन पाँचोंका विनाश होता है। तीसरी या पाँचवीं पीढ़ीमें प्रेतबाधाग्रस्त कुलका विनाश हो जाता है। ऐसे वंशका प्राणी जन्म-जन्मान्तर दरिद्र, निर्धन और पापकर्ममें अनुरक्त रहता है। विकृत मुख तथा नेत्रवाले, क्रुद्ध स्वभाववाले, अपने गोत्र, पुत्र-पुत्री, पिता, भाई, भौजाई अथवा बहूको नहीं माननेवाले लोग भी विधिवश प्रेत-शरीर धारण कर सद्गतिसे रहित हो 'बड़ा कष्ट है', यह चिल्लाते हुए अपने पापको स्मरण करते हैं। (अध्याय २०)

# प्रेतबाधाजन्य दीखनेवाले स्वप्न, उनके निराकरणके उपाय तथा नारायणबलिका विधान

**श्रीगरुडने कहा**—हे भगवन्! प्रेत किस प्रकारसे मुक्त होते हैं? जिनकी मुक्ति होनेपर मनुष्योंको प्रेतजन्य पीड़ा पुनः नहीं होती। हे देव! जिन लक्षणोंसे युक्त बाधाको आपने प्रेतजन्य कहा है, उनकी मुक्ति कब सम्भव है और क्या किया जाय कि प्राणीको प्रेतत्वकी प्राप्ति न हो सके? प्रेतत्व कितने वर्षोंका होता है? चिरकालसे प्रेतयोनिको भोग रहा प्राणी उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है? यह सब आप बतलानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! प्रेत जिस प्रकार प्रेतयोनिसे मुक्त होते हैं, उसे मैं बतला रहा हूँ। जब मनुष्य यह जान ले कि प्रेत मुझको कष्ट दे रहा है तो ज्योतिर्विदोंसे इस विषयमें निवेदन करे। प्रेतग्रस्त प्राणीको बड़े ही अद्भुत स्वप्न दिखायी देते हैं। जब तीर्थ-स्नानकी बुद्धि होती है, चित्त धर्मपरायण हो जाता है और धार्मिक कृत्योंको करनेकी मनुष्यकी प्रवृत्ति होती है तब प्रेतबाधा उपस्थित होती है एवं उन पुण्य कार्योंको नष्ट करनेके लिये चित्त-भंग कर देती है। कल्याणकारी कार्योंमें पग-पगपर बहुत-से विघ्न होते हैं। प्रेत बार-बार अकल्याणकारी मार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये प्रेरणा देते हैं। शुभकर्मोंमें प्रवृत्तिका उच्चाटन और क्रूरता—यह सब प्रेतके द्वारा किया जाता है। जब व्यक्ति समस्त विघ्नोंको विधिवत् दूर करके मुक्ति प्राप्त करनेके लिये सम्यक् उपाय करता है तो उसका वह कर्म हितकारी होता है और उसके प्रभावसे शाश्वत प्रेतनिवृत्ति हो जाती है।

हे पक्षिन्! दान देना अत्यन्त श्रेयस्कर है, दान देनेसे प्रेत मुक्त हो जाता है। जिसके उद्देश्यसे दान दिया जाता है, उसको तथा स्वयंको वह दान तृप्त करता है। हे तार्क्ष्य! यह सत्य है कि जो दान देता है वही उसका उपभोग करता है। दानदाता दानसे अपना कल्याण करता है और ऐसा करनेसे प्रेतको भी चिरकालिक संतृप्ति प्राप्त होती है। संतृप्त हुए वे प्रेत सदैव अपने बन्धु-बान्धवोंका कल्याण चाहते हैं। यदि विजातीय दुष्ट प्रेत उसके वंशको पीड़ित करते हैं तो संतृप्त हुए सगोत्री प्रेत अनुग्रहपूर्वक उन्हें रोक देते हैं। उसके बाद समय आनेपर अपने पुत्रसे प्राप्त हुए पिण्डादिक दानके फलसे वे मुक्त हो जाते हैं। हे पक्षिराज! यथोचित दानादिके फलसे संतृप्त प्रेत बन्धु-बान्धवोंको धन्य-धान्यसे समृद्धि प्रदान करते हैं।*

जो व्यक्ति स्वप्नमें प्रेत-दर्शन, भाषण, चेष्टा और पीड़ा आदिको देखकर भी श्राद्धादिद्वारा उनकी मुक्तिका उपाय नहीं करता, वह प्रेतोंके द्वारा दिये गये शापसे संलिप्त होता है। ऐसा व्यक्ति जन्म-जन्मान्तरतक निःसन्तान, पशुहीन, दरिद्र, रोगी, जीविकाके साधनसे रहित और निम्नकुलमें उत्पन्न होता है। ऐसा वे प्रेत कहते हैं और पुनः यमलोक जाकर पापकर्मोंका भोगद्वारा नाश हो जानेके अनन्तर अपने समयसे प्रेतत्वकी मुक्ति हो जाती है।

**गरुडने कहा**—हे देवेश्वर! यदि किसी प्रेतका नाम और गोत्र न ज्ञात हो सके, उसके विषयमें

* स भवेत् तेन मुक्तस्तु दत्तं श्रेयस्करं परम् । स्वयं तृप्यति भोः पक्षिन् यस्योद्देश्येन दीयते॥
श्रृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यद्ददाति भुनक्ति सः। आत्मानं श्रेयसा युञ्ज्यात् प्रेतस्तृप्तिं चिरं व्रजेत्॥
ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति निजबन्धुषु सर्वदा। अज्ञातयस्तु ये दुष्टाः पीडयन्ति स्ववंशजान्॥
निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुकम्पकाः। पश्चात् ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते स्वपुत्रतः॥ (२१।१२—१५)

विश्वास न हो रहा हो, कुछ ज्योतिषी पीड़ाको प्रेतजन्य कहते हों, कभी भी मनुष्यको प्रेत स्वप्नमें न दिखायी दे, उसकी कोई चेष्टा न होती हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये? उस उपायको मुझे बतायें।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे खगराज! पृथ्वीके देवता ब्राह्मण जो कुछ भी कहते हैं, उस वचनको हृदयसे सत्य समझकर भक्ति-भावपूर्वक पितृभक्तिनिष्ठ हो पुरश्चरणपूर्वक नारायणबलि करके जप, होम तथा दानसे देह-शोधन करना चाहिये। उससे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। यदि वह प्राणी भूत, प्रेत, पिशाच अथवा अन्य किसीसे पीड़ित होता है तो उसको अपने पितरोंके लिये नारायणबलि करनी चाहिये। ऐसा कर वह सभी प्रकारकी पीड़ाओंसे मुक्त हो जाता है। यह मेरा सत्य वचन है। अतः सभी प्रयत्नोंसे पितृभक्तिपरायण होना चाहिये।

नवें या दसवें वर्ष अपने पितरोंके निमित्त प्राणीको दस हजार गायत्री-मन्त्रोंका जप करके दशांश होम करना चाहिये। नारायणबलि करके वृषोत्सर्गादि क्रियाएँ करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके उपद्रवोंसे रहित हो जाता है, समस्त सुखोंका उपभोग करता है तथा उत्तम लोकको प्राप्त करता है और उसे जाति-प्राधान्य प्राप्त होता है। इस संसारमें माता-पिताके समान श्रेष्ठ अन्य कोई देवता नहीं है। अतः सदैव सम्यक् प्रकारसे अपने माता-पिताकी पूजा करनी चाहिये। हितकर बातोंका उपदेष्टा होनेसे पिता प्रत्यक्ष देवता है। संसारमें जो अन्य देवता हैं वे शरीरधारी नहीं हैं—

**पितृमातृसमं लोके नास्त्यन्यद्दैवतं परम्।**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् पितरौ सदा॥**
**हितानामुपदेष्टा हि प्रत्यक्षं दैवतं पिता।**
**अन्या या देवता लोके न देहप्रभवो हि ताः॥**

(२१।२८-२९)

प्राणियोंका शरीर ही स्वर्ग एवं मोक्षका एकमात्र साधन है। ऐसा शरीर जिसके द्वारा प्राप्त हुआ है, उससे बढ़कर पूज्य कौन है?

हे पक्षिन्! ऐसा विचार करके मनुष्य जो-जो दान देता है उसका उपभोग वह स्वयं करता है, ऐसा वेदविद् विद्वानोंका कथन है। पुन्नामका जो नरक है उससे पिताकी रक्षा पुत्र करता है। उसी कारणसे इस लोक और परलोकमें उसे पुत्र कहा जाता है—

**पुन्नामनरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।**
**तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त इह चापि परत्र च॥**

(२१।३२)

हे खगराज! किसीके माता-पिताकी अकालमृत्यु हो जाय तो उसे व्रत, तीर्थ, वैवाहिक माङ्गलिक कार्य संवत्सरपर्यन्त नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य प्रेत-लक्षण बतानेवाले इस स्वप्नाध्यायका अध्ययन अथवा श्रवण करता है, वह प्रेतका एक चिह्न नहीं देखता है। (अध्याय २१)

# प्रेतयोनि दिलानेवाले निन्दित कर्म, पञ्चप्रेतोपाख्यान तथा प्रेतत्वप्राप्ति न करानेवाले श्रेष्ठ कर्म

**श्रीगरुडने कहा**—हे प्रभो! प्रेतोंकी उत्पत्ति कैसे होती है? वे कैसे चलते हैं? उनका कैसा रूप और कैसा भोजन होता है? वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं और उनका कहाँ निवास होता है? हे प्रसन्नचित्त देवेश! कृपा कर मेरे इन प्रश्नोंका समाधान करें।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे पक्षिराज! सुनो। जो पूर्वजन्मसंचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममें

अनुरक्त रहते हैं, वे मृत्युके पश्चात् प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं। जो मनुष्य बावली, कूप, जलाशय, उद्यान, देवालय, प्याऊ, घर, आम्रादिक फलदार वृक्ष, रसोईघर, पितृ-पितामहके धर्मको बेच देता है, वह पापका भागी होता है। ऐसा व्यक्ति मरनेके बाद प्रलयकालतक प्रेतयोनिमें रहता है। जो लोग लोभवश गोचारणकी भूमि, ग्रामकी सीमा, जलाशय, उपवन और गुफाभागको जोत लेते हैं, वे प्रेत होते हैं।[1] पापियोंकी मृत्यु चण्डाल, जल, सर्पदंश, ब्राह्मण-शाप, विद्युत्-निपात, अग्नि, दन्त-प्रहार तथा पशुके आक्रमणसे होती है। जो लोग फाँसी लगानेसे, विषद्वारा और शस्त्रसे मरते हैं, जो आत्मघाती हैं, जिनकी विषूचिका (हैजा) आदि रोगोंसे मृत्यु होती है, जो क्षयादिक महारोग, पापजन्य रोग और चोर-डकैतोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनका मरनेपर संस्कार नहीं हुआ है, विहित आचारसे रहित, वृषोत्सर्गादिसे रहित और मासिक पिण्डदान जिनका लुप्त हो गया है, जिस मरे हुए प्राणीके लिये तृण, काष्ठ, हविष्य तथा अग्नि शूद्र लाता है, पर्वतों अथवा दीवालके ढहनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, निन्दित दोषोंसे जिनकी मृत्यु होती है, जिनकी मृत्यु भूमिमें नहीं होती, जिनकी मृत्यु अन्तरिक्षमें होती है, जो भगवान् विष्णुका स्मरण न करते हुए मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु सूतक और श्वानादि निकृष्ट योनियोंके संसर्गमें होती है, वे प्रेतयोनिमें जाते हैं।[2] इसी प्रकारके अन्य कारणोंसे जो प्राणी दुर्मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनको प्रेतयोनिमें मरुस्थल प्रदेशमें भटकना पड़ता है।

हे तार्क्ष्य! जो व्यक्ति निर्दोष माता, बहन, पत्नी, पुत्रवधू तथा कन्याका परित्याग करता है, वह निश्चित ही प्रेत होता है। जो भ्रातृद्रोही, ब्रह्मघाती, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवाला, स्वर्ण और रेशमका चोर है, वह प्रेतत्वको प्राप्त होता है। घरमें रखी हुई धरोहरका अपहारक, मित्रद्रोही, परस्त्रीरत, विश्वासघाती एवं क्रूर व्यक्ति अवश्य प्रेतयोनिमें जन्म लेता है। जो वंशपरम्परागत धर्मपथका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करनेवाला है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है, वह भी निस्संदेह प्रेत ही होता है।[3]

हे सुव्रत! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जो पितामह भीष्म और युधिष्ठिरके संवादमें कहा गया था। मैं उसीको कहता हूँ, उसे सुन करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है।

**युधिष्ठिरने कहा**—हे पितामह! प्राणी किस कर्मफलसे प्रेत होता है? उसकी कैसे और किस उपायसे मुक्ति होती है? इस बातको आप मुझे बतानेकी कृपा करें, जिसको सुन करके मैं पुनः

१-पापकर्मरता ये वै पूर्वकर्मवशानुगाः। जायन्ते ते मृताः प्रेतास्ताञ्छृणुष्व वदाम्यहम्॥
वापीकूपतडागांश्च आरामं सुरमन्दिरम्। प्रपां सद्म सुवृक्षांश्च तथा भोजनशालिकाः॥
पितृपैतामहं धर्मं विक्रीणाति स पापभाक्। मृतः प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्॥
गोचरं ग्रामसीमां च तडागारामगह्वरम्। कर्षयन्ति च ये लोभात् प्रेतास्ते वै भवन्ति हि॥ (२२।३—६)

२- असंस्कृतप्रमीता ये विहिताचारवर्जिताः॥
वृषोत्सर्गादिलुप्ताश्च लुप्तमासिकपिण्डकाः। यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि सः॥
पतनात् पर्वतानां च भित्तिपातेन ये मृताः। रजस्वलादिदोषैश्च न च भूमौ मृताश्च ये॥
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः। सूतकैः श्वादिसम्पर्कैः प्रेतभावा इह क्षितौ॥ (२२।९—१२)

३-मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषां त्यजति स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। हेमक्षौमहरस्तार्क्ष्य स वै प्रेतत्वमाप्नुयात्॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् परदाररतस्तथा। विश्वासघाती क्रूरस्तु स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥
कुलमार्गांश्च संत्यज्य परधर्मरतस्तथा। विद्यावृत्तविहीनश्च स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥ (२२।१४—१७)

भ्रमित न हो सकूँ।

**भीष्मने कहा**—हे वत्स! मनुष्यको जैसे प्रेतयोनि प्राप्त होती है, वह जैसे उस योनिसे मुक्त होता है, जैसे वह दुस्तर घोर नरकमें जाता है, नरकमें जाकर दुःख झेल रहे प्राणियोंको जिसका नाम, गुण, कीर्तन और श्रवण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है, वह सब मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

हे पुत्र! ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकालमें एक ख्यातिलब्ध संतप्तक नामक सुव्रत तपस्वी ब्राह्मण वनमें रहता था। दयावान्, योगयुक्त, स्वाध्यायरत, अग्निहोत्री उस द्विजश्रेष्ठका समय सदैव यज्ञादिक धार्मिक कृत्योंमें बीतता था। परलोकका भय उसे बहुत था, अतः ब्रह्मचर्य, सत्य, शौचका पालन करते हुए और निर्मलचित्त होकर वह तपस्यामें संलग्न रहता था। श्रद्धापूर्वक गुरुके उपदेश, अतिथि-पूजन तथा आत्मतत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त वह तपस्वी सांसारिक द्वन्द्वोंसे रहित था। इस संसारको जीतनेकी इच्छासे योगाभ्यासमें सदैव अपनेको वह समर्पित रखता था। इस प्रकारका आचरण करते हुए उस जितेन्द्रिय मुमुक्षु ब्राह्मणको वनमें ही बहुत-से वर्ष बीत गये। एक दिन तपस्वी संतप्तकके मनमें तीर्थाटनकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसने मनमें यह संकल्प किया कि अब मैं तीर्थोंके पवित्र जलसे इस शरीरको पवित्र बनाऊँगा, अनन्तर वह स्नान तथा जप-नमस्कारादि कृत्योंको सम्पन्न कर सूर्योदय होनेपर वह तीर्थ-यात्रापर निकल पड़ा।

चलते-चलते वह महातपस्वी ब्राह्मण मार्ग भूल गया। भ्रान्त मार्गमें चलते हुए उसे अत्यन्त भयानक पाँच प्रेत दिखायी पड़े। उस निर्जन वनमें विकृत शरीरवाले भयंकर प्रेतोंको देखकर ब्राह्मणका हृदय कुछ भयभीत हो उठा। अतः वहींपर खड़े होकर वह विस्फारित नेत्रोंसे उसी ओर देखता रहा। तत्पश्चात् ब्राह्मणने अपने भयको दूरकर धैर्यका सहारा लिया और मधुर भाषामें पूछा—'हे विकृत मुखवालो! तुम सब कौन हो? कैसा पापकर्म तुम लोगोंने किया है, जिसके फलस्वरूप तुम्हें यह विकृति प्राप्त हुई है? तुम सब कहाँ जानेका निश्चय कर रहे हो?'

**प्रेतराजने कहा**—हे द्विजश्रेष्ठ! हम सभीने अपने-अपने कर्मके कारण प्रेतयोनिको प्राप्त किया है। परद्रोहमें रत होनेके कारण हम पाप और मृत्युके वशमें हुए। नित्य भूख-प्याससे पीड़ित रहकर यह प्रेत-जीवन बिता रहे हैं। हम लोगोंकी वाणी उसी पापसे विनष्ट हुई है, शरीर कान्तिहीन हो गया है, हम संज्ञाहीन और विकृत चित्तवाले हो गये हैं। हे तात! हमें दिशाओं तथा विदिशाओंका कोई ज्ञान नहीं है। पाप-कर्मसे पिशाच बने हुए हम मूढ प्राणी कहाँ जा रहे हैं, इसका भी ज्ञान हमें नहीं है। हम लोगोंके न माता हैं और न पिता हैं। अपने कर्मोंके फलस्वरूप, अत्यन्त दुःखदायी यह प्रेतयोनि हम सभीको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्! आपके दर्शनसे हम लोग अत्यधिक प्रसन्न हैं। आप मुहूर्तभर रुकें। आपसे हम अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रारम्भसे कहेंगे। उनमेंसे एक प्रेतने कहा—

हे विप्रदेव! मेरा नाम पर्युषित है, यह दूसरा सूचीमुख है, तीसरा शीघ्रग, चौथा रोधक और पाँचवाँ लेखक है।

**ब्राह्मणने कहा**—हे प्रेत! प्राणीको कर्मफलानुसार प्रेतयोनि मिलती है यह तो ठीक बात है, पर अपने जो नाम तुम बताते हो, उसके प्राप्त होनेका क्या कारण है?

**प्रेतराजने कहा**—हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने सदैव सुस्वादु भोजन किया और ब्राह्मणको बासी अन्न दिया है, इस कारण मेरा नाम पर्युषित (बासी) है। भूखे ब्राह्मणकी याचनाको सुनकर यह शीघ्र ही वहाँसे

हट जाता था, इसलिये यह शीघ्रग नामका प्रेत हुआ। अन्नादिकी आकांक्षासे इसने बहुत-से ब्राह्मणोंको पीड़ित किया था, इस कारण यह सूचीमुख नामक प्रेत हो गया। इसने पोष्यवर्ग एवं ब्राह्मणोंको दिये बिना अकेले ही मिष्टान्न खाया था, इसलिये इसको रोधक कहा गया है। यह कुछ माँगनेपर मौन धारण करके पृथ्वी कुरेदने लगता था, अतः उस कर्मफलके अनुसार यह लेखक कहलाया।

हे ब्राह्मण! कर्मभावसे ही प्रेतत्व और इस प्रकारके नामकी प्राप्ति हुई है। यह लेखक मेषमुख, रोधक पर्वताकार मुखवाला, शीघ्रग पशुकी तरह मुखवाला और सूचक सुईके समान मुखवाला है, इसके बेढंगे रूपको देखें। हे नाथ! हम अत्यन्त दुःखित हैं। मायावी रूप बनाकर हम लोग पृथ्वीपर विचरण करते हैं। हम सभी अपने ही कर्मसे विकृत आकारवाले, लम्बे ओठवाले, विकृत मुखवाले और बृहद् शरीरवाले तथा भयावह हो गये हैं। हे विप्र! यह सब मैंने आपसे प्रेतत्वका कारण बता दिया है। आपके दर्शनसे हम सभीमें ज्ञान उत्पन्न हो गया है, आपकी जिस बातको सुननेकी अभिरुचि हो, वह आप पूछें, उसे मैं आपको बतानेके लिये तैयार हूँ।

**ब्राह्मणने कहा**—हे प्रेतराज! पृथ्वीपर जो भी जीव जीते हैं, वे सब आहारसे ही जीवित रहते हैं। यथार्थरूपमें तुम लोगोंके भी आहारको सुननेकी मेरी इच्छा है।

**प्रेतोंने कहा**—हे द्विजराज! यदि आपकी श्रद्धा हमारे आहारको जाननेकी है तो सावधान हो करके आप सुनें।

हम सभीका आहार समस्त प्राणियोंके लिये निन्दनीय है, जिसको सुनकर आप बार-बार निन्दा करेंगे। प्राणियोंके शरीरसे निकले हुए कफ, मूत्र और पुरीषादि मल एवं अन्य प्रकारसे उच्छिष्ट भोजन प्रेतोंका आहार है। जो घर अपवित्र रहते हैं, जिनकी घरेलू सामग्रियाँ इधर-उधर बिखरी रहती हैं, जिन घरोंमें प्रसूतादिके कारण मलिनता बनी रहती है, वहींपर प्रेत भोजन करते हैं। जिस घरमें सत्य, शौच और संयम नहीं होता, पतित एवं दस्युजनोंका साथ है, उसी घरमें प्रेत भोजन करते हैं। जो घर भूतादिक बलि, देवमन्त्रोच्चार, अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा व्रतपालनसे हीन है, प्रेत उसमें ही भोजन करते हैं। जो घर लज्जा एवं मर्यादासे रहित है, जिसका स्वामी स्त्रीसे जीत लिया गया है, जहाँ माता-पिता और गुरुजनोंकी पूजा नहीं होती है, प्रेत वहाँ ही भोजन करते हैं। जिस घरमें नित्य लोभ, क्रोध, निद्रा, शोक, भय, मद, आलस्य तथा कलह— ये सब दुर्गुण विद्यमान रहते हैं, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं। हे दृढ़व्रत तपोनिधि विप्रदेव! हम सब इस प्रेतभावसे दुःखित हैं, जिससे प्रेतयोनि प्राप्त न हो वह हमें बतायें। प्राणीकी नित्य मृत्यु हो वह अच्छा है पर उसे कभी भी प्रेतयोनि न प्राप्त हो।

**ब्राह्मणने कहा**—नित्य उपवास रखकर कृच्छ्र एवं चान्द्रायणव्रतमें लगा हुआ तथा अनेक प्रकारसे अन्य व्रतोंसे पवित्र मनुष्य प्रेत नहीं होता है। जो व्यक्ति जागरणसहित एकादशीव्रत करता है और अन्य सत्कर्मोंसे अपनेको पवित्र रखता है, वह प्रेत नहीं होता है। जो प्राणी अश्वमेधादि यज्ञोंको सम्पन्न करके नाना प्रकारके दान देता है तथा क्रीडा, उद्यान, वापी एवं जलाशयका निर्माता है, ब्राह्मणकी कन्याओंका यथाशक्ति विवाह कराता है, विद्यादान और अशरणको शरण देनेवाला है, वह प्रेत नहीं होता है।*

* उपवासपरो नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणे रतः। व्रतैश्च विविधैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥
एकादश्यां व्रतं कुर्वञ्जागरेण समन्वितम्। अपरैः सुकृतैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥
इष्ट्वा वै वाश्वमेधादीन् दद्याद् दानानि यो नरः। आरामोद्यानवाप्यादेः प्रपायाश्चैव कारकः॥
कुमारीं ब्राह्मणानां तु विवाहयति शक्तितः। विद्यादोऽभयदश्चैव न प्रेतो जायते नरः॥ (२२।६४—६७)

खाये हुए शूद्रान्नके जठरस्थित रहते हुए जिसकी मृत्यु हो जाती है या जो दुर्मृत्युसे मरता है, वह प्रेत होता है। जो अयाज्यका याजक तथा मद्यपीका साथ करके मदिरा पीनेवाली स्त्रीका संसर्ग करता है और अज्ञानवश भी मांस खाता है, वह प्रेत होता है। जो देवता, ब्राह्मण और गुरुके धनका अपहारक है, जो धन लेकर अपनी कन्या देता है, वह प्रेत होता है। जो माता, भगिनी, स्त्री, पुत्रवधू तथा पुत्रीका बिना कोई दोष देखे परित्याग कर देता है, उसे भी प्रेत होना पड़ता है। जो विश्वासपर रखी हुई परायी धरोहरका अपहर्ता है, मित्रद्रोही है, सदैव परायी स्त्रीमें अनुरक्त रहता है, विश्वासघाती और कपटी है, वह प्रेतयोनिमें जाता है, जो प्राणी भ्रातृद्रोही, ब्रह्महन्ता, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीगामी, इनका संसर्गी और वंशपरम्पराका परित्याग करके सदा झूठ बोलता रहता है, स्वर्णकी चोरी तथा भूमिका अपहरण करता है, वह प्रेत होता है।*

**भीष्मने कहा**—हे युधिष्ठिर! इस प्रकार ब्राह्मण संतप्तक ऐसा कह ही रहा था कि आकाशमें दुन्दुभि बजने लगी। देवोंने उस ब्राह्मणके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। प्रेतोंके लिये वहाँ पाँच देवविमान आ गये। विधिवत् उस ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर वे सभी प्रेत

दिव्य विमानोंमें बैठकर स्वर्ग चले गये। इस प्रकार ब्राह्मणके द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं उसके साथ सम्भाषण एवं पुण्य-संकीर्तनके प्रभावसे उन सभी प्रेतोंका पाप विनष्ट हो गया और उन्हें परम पदकी प्राप्ति हुई।

**सूतजीने कहा**—इस आख्यानको सुनकर गरुडजी पीपल-पत्रके समान काँप उठे। उन्होंने पुनः मनुष्योंके कल्याणके लिये श्रीभगवान् विष्णुसे पूछा।

(अध्याय २२)

# प्रेतबाधाजन्य विविध स्वप्न तथा उसका प्रायश्चित्तविधान

**श्रीगरुडने कहा**—हे देवेश! पिशाचयोनिमें रहनेवाले प्रेत क्या-क्या करते हैं? वे क्या कहते हैं? उसे आप कहिये।

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे पक्षिराज! उनका जैसा स्वरूप है, जो उनकी पहचान है और जिस प्रकार वे स्वप्न दिखाते हैं, वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ। भूख-प्याससे दुःखित वे अपने घरमें प्रवेश करते हैं। उसी वायुरूपी देहमें प्रविष्ट होकर अपने वंशजोंको अपना चिह्न दिखाते हैं। प्रेत अपने पुत्र, अपनी स्त्री तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके पास जाता

* देवद्रव्यं च ब्रह्मस्वं गुरुद्रव्यं तथैव च । कन्यां ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नरः॥
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषास्त्यजति स प्रेतो जायते नरः॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक्परदाररतः सदा। विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः॥
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतोक्तौ सदा रतः।
हर्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः॥ (२२।७१—७४)

है और अश्व, हाथी, बैल अथवा मनुष्यका विकृत रूप धारण करके वह स्वप्नमें दिखायी देता है। जो व्यक्ति सोकर उठनेपर अपनेको शय्यापर विपरीत स्थितिमें देखता है, वह अवस्थिति प्रेतयोनिके कारण हुई है, ऐसा मानना चाहिये। यदि स्वप्नमें अपने-आपको जंजीरमें बँधा हुआ देखे और मरा हुआ पूर्वज निन्दनीय वेषमें दिखायी दे, खाते हुए व्यक्तिका अन्न लेकर भाग जाय और प्याससे पीड़ित वह अपना या परायेका जलपान कर ले तो उसे पिशाचयोनिमें गया हुआ मानें।

यदि स्वप्नमें वह बैलकी सवारी करता है, बैलोंके साथ कहीं जाता है, डरकर आकाश या भूखसे व्याकुल होकर तीर्थमें चला जाता है, अपनी वाणीसे गौ, बैल, पक्षी और घोड़ेकी भाषामें बोलता है, उसे हाथी, देव, भूत, प्रेत तथा निशाचरके चिह्न दिखायी देते हैं तो उसे पिशाच योनि प्राप्त हुआ ही मानें।

हे पक्षीन्द्र! प्राणीको स्वप्नमें प्रेतयोनिसे सम्बन्धित बहुत-से चिह्न दिखायी देते हैं। जो स्वप्नमें अपनी जीवित स्त्री, अपने जीवित भाई, पुत्र या पुत्रीको मरा हुआ देखे तो उसे प्रेतदोष समझना चाहिये। प्रेतदोषसे ही व्यक्ति स्वप्नमें भूख-प्याससे व्यथित होकर दूसरेसे याचना करता है तथा तीर्थमें जाकर पिण्डदान करता है। यदि स्वप्नमें घरसे निकलते हुए पुत्र, पिता, भ्राता, पति तथा पशु दिखायी दे तो ऐसा प्रेतदोषसे दिखायी देता है।

हे द्विजराज! स्वप्नमें ऐसे चिह्न दिखायी देनेपर प्रायश्चित्त करनेका विधान बताया गया है। घर या तीर्थमें स्नान करके मनुष्य बेलके वृक्षमें जल-तर्पण करे तथा वेदपारंगत ब्राह्मणकी सम्यक् पूजा करके उन्हें काले धान्यका दान दे, तदनन्तर यथाशक्ति हवन करके गरुडमहापुराणका पाठ करे। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रेतचिह्न बतानेवाले इस अध्यायका पाठ करता है अथवा सुनता है, उसका प्रेतदोष स्वतः ही नष्ट हो जाता है। (अध्याय २३)

## अल्पमृत्युके कारण तथा बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका निरूपण

**श्रीगरुडने कहा**—हे प्रभो! वेदका यह कथन है कि अकालमें किसीकी मृत्यु नहीं होती है तो फिर राजा या श्रोत्रिय ब्राह्मण किस कारणसे अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। ब्रह्माने जैसा पहले कहा था, वह असत्य दिखायी देता है। हे भगवन्! वेदोंमें यह कहा गया है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णवाली द्विजातियाँ, शूद्र और म्लेच्छ रहते है, किस कारणसे कलिकालमें ये शतायु नहीं देखे जाते। बालक, धनवान्, निर्धन, सुकुमार, मूर्ख, ब्राह्मण, अन्य वर्णवाले, तपस्वी, योगी, महाज्ञानी, सर्वज्ञानरत, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अद्वितीय पराक्रमी—जो कोई भी हों इस वसुधातलपर अवश्य मृत्युको प्राप्त करते हैं। इनके गर्भमें आनेके साथ ही इनके पीछे मृत्यु लगी रहती है। इसका क्या कारण है?

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे महाज्ञानी गरुड! तुम्हें साधुवाद है। तुम मेरे प्रिय भक्त हो। अतः प्राणीकी मृत्युसे सम्बन्धित गोपनीय बातको सुनो।

हे पक्षिराज कश्यपपुत्र महातेजस्वी गरुड! विधाताद्वारा निश्चित की गयी मृत्यु प्राणीके पास आती है और शीघ्र ही उसे लेकर यहाँसे चली जाती है। प्राचीन कालसे ही वेदका यह कथन है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है, किंतु जो व्यक्ति निन्दित कर्म करता है वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है, जो वेदोंका ज्ञान न होनेके कारण

वंशपरम्पराके सदाचारका पालन नहीं करता है, जो आलस्यवश कर्मका परित्याग कर देता है, जो सदैव त्याज्य कर्मको सम्मान देता है, जो जिस-किसीके घरमें भोजन कर लेता है और जो परस्त्रीमें अनुरक्त रहता है, इसी प्रकारके अन्य महादोषोंसे मनुष्यकी आयु क्षीण हो जाती है। श्रद्धाहीन, अपवित्र, नास्तिक, मङ्गलका परित्याग करनेवाले, परद्रोही, असत्यवादी ब्राह्मणको मृत्यु अकालमें ही यमलोक ले जाती है। प्रजाकी रक्षा न करनेवाला, धर्माचरणसे हीन, क्रूर, व्यसनी, मूर्ख, वेदानुशासनसे पृथक् और प्रजापीड़क क्षत्रियको यमका शासन प्राप्त होता है। ऐसे दोषी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय मृत्युके वशीभूत हो जाते हैं और यम-यातनाको प्राप्त करते हैं। जो अपने कर्मोंका परित्याग तथा जितने मुख्य आचरण हैं, उनका परित्याग करता है और दूसरेके कर्ममें निरत रहता है वह निश्चित ही यमलोक जाता है।[1] जो शूद्र द्विज-सेवाके बिना अन्य कर्म करता है, वह यमलोक जाता है। तदनन्तर वह उत्तम-मध्यम या अधम कोटिवाले यमलोकमें पहुँचकर दुःख भोगता है।

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन नहीं होता है, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ ही जाता है—

**स्नानं दानं जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥**
**यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्।**
(२४।१७-१८)

रसोद्भूत यह शरीर अनित्य, अध्रुव तथा आधारहीन है।

हे पक्षीन्द्र! अब मैं अन्न और जलसे बने हुए इस शरीरके गुणोंका वर्णन करता हूँ।

प्रातःकाल संस्कृत (सुपाचित) अन्न निश्चित ही सायंकाल नष्ट हो जाता है, अतः उस अन्नके रससे पुष्ट शरीरमें नित्यता कैसे आ सकती है[2]? हे गरुड! अपने प्राकृत कर्मोंके अनुसार शरीर तो मिल चुका है, इस तरह यथायोग्य शरीर-निर्माणरूप आधा कार्य तो हो चुका है, पर आगे दुष्कर्मोंसे बचनेके लिये एवं अपनी सुरक्षाके लिये परम औषधका सेवन करना चाहिये। क्या यह शरीर अन्नदाता पिता या जन्म देनेवाली माताका है अथवा उन दोनोंका है? यह राजाका है या बलवान्‌का है, अग्नि अथवा कुत्तेका है? कीटाणु, विष्ठा अथवा भस्मके रूपमें परिणत होनेवाले इस शरीरके लिये श्रेष्ठतम यज्ञ कौन हो सकता है? पाप-विनाशके निमित्त प्राणीको उत्कृष्ट यत्न करना चाहिये। जीवने अनेक बार इस संसारमें जन्म ग्रहणकर मन, वाणी और शरीरके द्वारा पापकर्म किया है। मनुष्य-जन्म मिलनेपर प्राणीको पूर्व सभी जन्मोंके पापोंका स्मरण करके तपके द्वारा उन्हें विनष्ट करनेका प्रयास करना चाहिये। कर्मके अनुसार प्राप्त होनेवाले गर्भवासके महान् कष्टको देखकर भी जो मनुष्य पुनः गर्भवासमें आता है अर्थात् मानवयोनिमें ही उससे मुक्तिका प्रयास नहीं करता, वह पातकी अण्डजादि योनियोंमें जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं आधियाँ-व्याधियाँ, क्लेश और वृद्धावस्थाजनित रूप-परिवर्तन होते रहते हैं।[3]

१-विधातृविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति । ततो वक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते॥
मानुषः शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम् । विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रं चापि विनश्यति॥
वेदानभ्यसनेनैव कुलाचारं न सेवते । आलस्यात्कर्मणां त्यागो निषिद्धेऽप्यादरः सदा॥
यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतस्तथा । एतैरन्यैर्महादोषैर्जायते चायुषः क्षयः॥
अश्रद्दधानमशुचिं नास्तिकं त्यक्तमङ्गलम् । परद्रोहानृतकरं ब्राह्मणं यत (म) मन्दिरम्॥
अरक्षितारं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम् । क्रूरं व्यसनिनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम्॥ (२४।९—१४)

२-यत्प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति ॥ तदीयरससम्पुष्टकाये का बत नित्यता। (२४।१९-२०)

३-कर्तव्यः परमो यत्नः पातकस्य विनाशने। अनेकभवसम्भूतं पातकं तु त्रिधा कृतम्॥
यदा प्राप्नोति मानुष्यं तदा सर्वं तपत्यपि । सर्वजन्मानि संस्मृत्य विषादी कृतचेतनः॥
अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कर्मजा गतयस्तथा। मानुषोदरवासी चेत्तदा भवति पातकी॥
अण्डजादिषु भूतेषु यत्र यत्र प्रसर्पति। आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्ययः॥ (२४।२३—२६)

हे द्विजोत्तम (पक्षिश्रेष्ठ)! गर्भवाससे निकला हुआ प्राणी अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न हो जाता है। बाल्यावस्थामें रहनेके कारण वह सदसत्‌का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है। यौवनान्धकारसे वह अन्धा हो जाता है। इस बातको जो देखता है वह मुक्तिका भागी होता है। प्राणी चाहे बालक हो चाहे युवा हो अथवा वृद्ध हो, वह जन्म लेनेके बाद मृत्युको अवश्य प्राप्त होता है। धनी-निर्धन, सुकुमार, कुरूप, मूर्ख, विद्वान्, ब्राह्मण या अन्य वर्णवाले जनोंकी भी वही स्थिति होती है। मनुष्य चाहे तपस्वी, योगी, परमज्ञानी, दानी, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अतुलनीय पराक्रमी कोई भी हो मृत्युसे नहीं बच सकता है। बिना मनुष्यदेहको प्राप्त किये सुख-दु:खका अनुभव नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति प्राकृत कर्मके पाशमें बँधकर मृत्युको प्राप्त करता है। गर्भसे लेकर पाँच वर्षतक मनुष्यके ऊपर पापका अल्प प्रभाव पड़ता है, किंतु उसके बाद वह यथायोग्य पापके न्यूनाधिक प्रभावका भागी होता है। इस प्रकार प्राणीको बार-बार इस संसारमें आना-जाना पड़ता है। इस पृथ्वीपर मरा हुआ मनुष्य दानादि सत्कर्मोंके प्रभावसे पुन: जन्म लेकर अधिक दिनोंतक जीवित रहता है।*

**सूतजीने कहा**—भगवान् कृष्णके ऐसे वचनको सुनकर गरुडजीने यह कहा—

**गरुडने कहा**—हे प्रभो! बालककी मृत्यु हो जानेपर पिण्डदानादि क्रियाओंको कैसे करना चाहिये? यदि विपन्नावस्थामें फँसे हुए भ्रूणकी मृत्यु गर्भमें ही हो जाती है अथवा चूडाकरणके बीच शिशु मर जाता है तो कैसे, किसके द्वारा दान दिया जाना चाहिये? मृत्युके बाद कौन-सी विधि है?

गरुडके ऐसे वाक्यको सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—

हे गरुड! यदि स्त्रीका गर्भपात हो जाय अथवा गर्भस्राव हो जाय तो जितने मासका गर्भ होता है, उतने दिनका अशौच मानना चाहिये। आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको उसके लिये कुछ भी नहीं करना चाहिये। यदि जन्मसे लेकर चूडाकरण-संस्कारके बीच बालककी मृत्यु हो जाती है तो उसके निमित्त यथाशक्ति बालकोंको दूधका भोजन देना चाहिये। यदि चूडाकरण संस्कार होनेके बाद पाँच वर्षतक बालककी मृत्यु होती है तो शरीरदाहका विधान है, उसके लिये दूध देना चाहिये और बालकोंको भोजन कराना चाहिये। पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर अपनी जातिके लिये विहित समस्त और्ध्वदैहिक क्रियाओंको सम्पन्न करना अपेक्षित है। ऐसे मृत बालकके कल्याणार्थ जलपूर्ण कुम्भ तथा खीरका दान करना चाहिये; क्योंकि उसका ऋणानुबन्ध हो जाता है।

हे पक्षीन्द्र! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु और मृत्युको प्राप्त हुए प्राणीका जन्म निश्चित है। अत: पुन: शरीरका जन्म न हो इसके लिये व्यक्तिको जीवनकालमें जो कुछ अच्छा लगता था, उसीका दान करना चाहिये। ऐसा न करनेपर उस प्राणीका जन्म निर्धनकुलमें होता है। वह स्वल्पायु और

---

* गर्भवासाद्विनिर्मुक्तस्त्वज्ञानतिमिरावृत: । न जानाति खगश्रेष्ठ बालभावं समाश्रित:॥
यौवने तिमिरान्धश्च य: पश्यति स मुक्तिभाक् । अधानान्मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा॥
सधनो निर्धनश्चैव सुकुमार: कुरूपवान् । अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणस्त्वितरो जन:॥
तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नर:। महादानरत: श्रीमान् धर्मात्मातुलविक्रम:।
विना मानुषदेहं तु सुखं दु:खं न विन्दति॥
प्राकृतै: कर्मपाशैस्तु मृत्युमाप्नोति मानव:। आधानात्पञ्च वर्षाणि स्वल्पपापैर्विपच्यते॥
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर्विपच्यते। योनिं पूरयते यस्मान्मृतोऽप्यायाति याति च॥
मृतो दानप्रभावेण जीवन्मर्त्यश्चिरं भुवि। (२४।२७—३३)

निर्धन होकर प्रेम तथा भक्तिसे दूर रहता है। उसे पुनर्जन्म प्राप्त होता है, अतः मृत शिशुके लिये यथेप्सित दान आवश्यक है। ऐसा होनेपर ब्राह्मण-बालकोंको मिष्टान्न-भोजन अवश्य देना चाहिये। पुराणमें इससे सम्बन्धित जिस गाथाका गान हुआ है सब प्रकारसे वह मुझे सत्य प्रतीत होती है। गाथा इस प्रकार है—

**भोज्ये भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरस्त्रियः॥**
**विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्।**
**दानाद्भोगानवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात्।**
**सुभाषणान्मृतो यस्तु स विद्वान्धर्मवित्तमः॥**
**अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो**
**दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।**
**पापप्रभावान्नरकं प्रयाति**
**पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥**
(२४।४४—४६)

भोज्य वस्तु एवं भोजनशक्ति, रतिशक्ति रहनेपर श्रेष्ठ स्त्रीकी प्राप्ति तथा धन-वैभव एवं दानशक्ति—ये तीनों अल्प तपस्याका फल नहीं है, ऐसा साथ-साथ होना बड़ा ही दुर्लभ है। दान देनेसे प्राणीको भोगोंकी प्राप्ति होती है। तीर्थसेवनसे सुख मिलता है और सुभाषण करता हुआ जो मरता है, वह विद्वान् धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है। दान न देनेपर प्राणी दरिद्र होता है, दरिद्र होनेपर पाप करता है, पापके प्रभावसे नरकमें जाता है, तदनन्तर बार-बार वह दरिद्र एवं पापी बनता जाता है। (अध्याय २४)

# बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका स्वरूप, सत्पुत्रकी महिमा तथा औरस और क्षेत्रज आदि पुत्रोंद्वारा अन्त्येष्टि करनेका फल

**श्रीविष्णुने कहा**—हे गरुड! इसके बाद अब मैं पुरुष-स्त्रीका निर्णय कहूँगा। बालक जीवित हो अथवा मृत्युको प्राप्त हो गया हो, पाँच वर्षसे अधिक अवस्था हो जानेपर उसमें पुरुषत्व प्रतिष्ठित हो जाता है। वह अपनी समस्त इन्द्रियोंको जान लेता है और रूप तथा कुरूपके विपर्ययको जाननेकी क्षमता भी उसमें आ जाती है। पूर्वजन्मार्जित कर्मफलसे प्राणियोंका वध और बन्धन होता है। पाप ही सभी लोगोंको नष्ट करता है।

हे पक्षिराज! गर्भके नष्ट होनेपर कोई और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं है। शिशुकी मृत्यु होनेपर दुग्धका दान देना चाहिये, शैशवके बादकी अवस्थामें बालककी मृत्यु होनेपर पायस तथा खीरका दान देना चाहिये। कुमारकी अवस्थामें मृत्यु होनेपर एकादशाह, द्वादशाह, वृषोत्सर्ग तथा महादानको छोड़कर अन्य सभी और्ध्वदैहिक कृत्य करनेका आदेश किया गया है। मरे हुए कुमार और बालकोंके निमित्त भोजन-वस्त्र तथा वेष्टन देना चाहिये। बाल, वृद्ध अथवा तरुणके मरनेपर घट-बन्धन करना चाहिये।

हे खगश्रेष्ठ! दो माह कम दो वर्षतकके बालककी मृत्यु होनेपर उसको पृथ्वीमें गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिये, इससे अधिक आयुवाले मृत बालकके लिये दाह-संस्कारका ही विधान उत्तम है। सभी शास्त्रोंमें जन्मसे लेकर दाँत निकलनेतककी अवस्थावाले बच्चेको शिशु, चूडाकरण-संस्कारतककी अवस्थावालेको बालक और उपनयन-संस्कारतककी आयुवालेको कुमार कहा गया है।

हे गरुड! उपनयन-संस्कारका विधान न होनेके कारण शूद्रादिका अन्तिम संस्कार कैसे होना चाहिये? यह संशय है। गर्भाधानसे नौ मासतकके कालको छोड़कर सोलह मासतकके

बच्चेको शिशु, सत्ताईस मासतकके अवस्थाप्राप्त बच्चेको बालक, पाँच वर्षकी आयुवालेको कुमार, नौ वर्षवालेको पौगण्ड, सोलह वर्षवालेको किशोर और उसके बादका यौवन-काल है। पाँच वर्षकी अल्पायुमें मृत कुमार चाहे उसका व्रतबन्ध हुआ हो अथवा न हुआ हो, वह पूर्वकथित विधानके अनुसार दशपिण्ड-कृत्यकी कामना करता है। स्वल्प कर्म, स्वल्प प्रसंग, स्वल्प विषयबन्धन, स्वल्प शरीर तथा स्वल्प वस्त्रके कारण प्राणी स्वल्प क्रियाकी इच्छा करता है।[1] जीव जबतक वृद्धिकी ओर बढ़ रहा हो, जबतक वह सांसारिक विषय-वासनाओंसे घिरा हो, तबतक उसे अपने उस मृत परिजनको वे सभी भोज्य पदार्थ और आवश्यक वस्तुएँ देनी चाहिये, जो उसके लिये उपजीव्य[2] और इच्छित थीं।

हे खगेश! चाहे बालक हों या वृद्ध हों अथवा युवा हों सभी प्राणी घटकी इच्छा करते हैं। सर्वत्रगामी देही जीवात्मा सदैव सुख-दुःखका अनुभव करता है। जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केंचुलका परित्याग कर देता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका परित्याग कर अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला होकर तथा वायुभूत हो भूखसे पीड़ित हो जाता है। अतः बालककी भी मृत्यु होनेपर निश्चित ही दान देना चाहिये। जन्मसे लेकर पाँच वर्षतककी अवधिमें मरा हुआ प्राणी दानमें दिये गये असंस्कृत[3] भोजनका उपभोग करता है। यदि पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु हो जाती है तो वृषोत्सर्ग और सपिण्डीकरणको छोड़कर द्वादशाहके आनेपर षोडश श्राद्ध करने चाहिये। उस दिन यथाक्रम पायस (खीर)-से बने पिण्डका दान देना चाहिये। यह पिण्डदान गुड़से भी किया जा सकता है। उसी दिन सान्नोदक कुम्भ और पददान देना चाहिये। ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति महादानादि भी करने चाहिये। पक्षिश्रेष्ठ! दीप-दानादि जो कुछ शेष कर्म हैं उन्हें पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले कुमारकी मृत्यु होनेपर करना चाहिये।

हे पक्षिराज! व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होनेसे पहले जिसका मरण हुआ है उसकी संतृप्तिके लिये पूर्वोक्त कर्म करना चाहिये। यदि मनुष्यके द्वारा सारी क्रिया नहीं की जाती है तो वह जीव पिशाच हो जाता है। व्रतबन्धके पूर्व मृत बालकके लिये पूर्वोक्त सब कर्म करना चाहिये। उसके बाद **'स्वाहा'** शब्दसे समन्वित मन्त्रके द्वारा षोडश एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। ऋजु[4] कुशसे श्वेत तिलके द्वारा अपसव्य होकर समस्त क्रिया करनेसे पितृगण परम गतिको प्राप्त करते हैं और दीर्घायु होकर पुनः अपने ही कुलमें जन्म लेते हैं।

सभी प्रकारके सुखोंको प्रदान करनेवाला पुत्र माता-पिताके प्रेमका अभिवर्धक होता है। जैसे एक आकाश, एक चन्द्र और एक आदित्य आश्रय-भेदसे पृथक्-पृथक् घटादिमें दिखायी देते हैं, वैसे ही पिताका आत्मा सभी पुत्रोंमें सदैव विचरण करता रहता है। जिसकी जो प्रकृति शुक्र-शोणित-संगमके पूर्व होती है, वही पुत्रोंमें आकर संनिहित हो जाती है। वैसे ही वे अपने जीवनमें कर्म करते हैं। किसीका पुत्र पिताका रूप लेकर उत्पन्न होता है, पिताकी अपेक्षा कोई अत्यधिक

१-जिस व्यक्तिका मरण हुआ है वह अपनी अवस्थाके अनुसार एवं अपने कर्मोंके अनुसार जिस मात्रामें, जिस रूपमें अन्न, वस्त्र आदिसे तुष्ट होता रहा है उसी मात्रामें, उसी रूपमें उसकी और्ध्वदैहिक क्रियामें अन्न, वस्त्र आदि देना चाहिये।

२-पुष्टि एवं तुष्टिके लिये उपयोगी।

३-मन्त्र आदिके बिना दिया हुआ अन्न।

४-पवित्रक या मोटक आदिके बिना बनाये ही कुशका उपयोग ऋजु कुश है।

रूपवान्, गुणवान् तथा दानपरायण होता है। इस संसारमें कोई भी प्राणी एक-समान न हुआ है और न होगा। अन्धेसे अन्धा, गूँगेसे गूँगा, बहिरेसे बहिरा तथा विद्वान्से विद्वान् जन्म नहीं लेता है। इस सृष्टिमें कहीं भी अनुरूपता दिखायी नहीं देती।

**गरुडने कहा**—औरस और क्षेत्रज आदि दस प्रकारके पुत्र माने गये हैं। जो संगृहीत (कहींसे प्राप्त) तथा दासीसे उत्पन्न हुआ है, उससे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? मृत्युके वशमें गये हुए प्राणीको उस पुत्रसे कौन-सी गति प्राप्त होती है? जिस व्यक्तिके न पुत्री है और न पुत्र है, न दौहित्र (लड़कीका पुत्र-नाती) है, उसका श्राद्ध किसके द्वारा किस विधिसे होना चाहिये?

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे गरुड! पुत्रके मुखको देख करके मनुष्य पितृऋणसे मुक्त होता है। पौत्रको देखनेसे मनुष्यको तीनों ऋणसे मुक्ति मिल जाती है। पुत्र-पौत्र तथा प्रपौत्रोंके होनेसे व्यक्तिको आनन्त्य लोक और स्वर्गकी प्राप्ति होती है।[1] जो क्षेत्रज पुत्र हैं, वे पिताको मात्र लौकिक सुख प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। औरस पुत्रको विधिवत् पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। अन्य पुत्र एकोद्दिष्ट श्राद्ध करते हैं, पार्वण नहीं। ब्राह्म-विवाहके नियमोंसे विवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताको स्वर्ग ले जाता है। संगृहीत पुत्र प्राणीको अधोगतिमें ले जाता है। यदि वह सांवत्सरिक श्राद्ध करता है तो उससे पिताको नरककी प्राप्ति होती है। अन्नदानके अतिरिक्त वह सब प्रकारका दान अपने पालक पिताके लिये कर सकता है। संगृहीत पुत्रको एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करना चाहिये, पार्वण नहीं। माता-पिताके लिये वार्षिक श्राद्ध करके वह पापसे लिप्त नहीं होता। यदि वह एकोद्दिष्ट श्राद्धका परित्याग करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपनेको और पितरोंको यमलोक पहुँचाता है। जो संगृहीत पुत्र और दासीसे उत्पन्न हुए पुत्रादि हैं, उन्हें तीर्थमें जाकर पितृश्राद्ध करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये।

यदि संगृहीत पुत्र पाक-श्राद्ध[2] करता है तो उसके श्राद्धको वैसे ही वृथा समझना चाहिये, जैसे शूद्रान्नसे द्विजत्व नष्ट हो जाता है। वह श्राद्ध परलोकमें गये हुए पिता-पितामहादि पितरोंको प्रसन्न नहीं कर पाता। हे पक्षिश्रेष्ठ! ऐसा जानकर व्यक्तिको हीन जातिमें उत्पन्न हुए पुत्रोंका परित्याग[3] कर देना चाहिये। [यदि अपरिणीता] ब्राह्मणीके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा पुत्र उत्पन्न किया जाता है तो वह चाण्डालसे भी नीच होता है। जो पुत्र संन्यासीसे जन्म लेता है या शूद्रसे ब्राह्मणीके गर्भमें उत्पन्न होता है तो ऐसे पुत्रोंको तुम चाण्डाल ही समझो। जो सगोत्रा कन्यासे जन्म ग्रहण करता है, वह भी चाण्डाल ही होता है। हे खगेश्वर! यथाविधान विवाहिता स्त्रीसे पुत्र पैदा करके व्यक्ति स्वर्ग जाता है। ऐसे सदाचारी पुत्रोंके आचरणसे मनुष्यको सुखकी प्राप्ति निश्चित है। जो दुराचारी पुत्र है वह अपने कुत्सित आचरणसे पिताको नरकमें ले जाता है। हीन जातिसे उत्पन्न हुआ सदाचारी पुत्र अपने माता-पिताको सुख प्रदान करता है।[4] जो मनुष्य कलिकालके पापसे निर्मुक्त है, सिद्ध जनोंसे पूजित है, देवलोककी अप्सराओंके द्वारा सम्मानमें डुलाये जा रहे चँवर और पहनायी गयी मालासे सुशोभित है, वह अकेले ही सौ पितरों तथा नरकमें गये हुए बन्धु-बान्धवों, पुत्र-पौत्रों और प्रपौत्रोंका उद्धार कर देता है।　(अध्याय २५)

१-मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात्॥
पौत्रस्य दर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥ (२५।३३-३४)

२-अन्न पकाकर उसके द्वारा किया गया श्राद्ध पाक-श्राद्ध है।

३-ऐसे पुत्रोंसे यथासम्भव अपना धार्मिक कृत्य नहीं करवाना चाहिये।

४-इसका तात्पर्य सदाचारकी महिमासे है।

# सपिण्डीकरण श्राद्धका महत्त्व, प्रतिवर्ष विहित मासिक श्राद्ध आदिकी अनिवार्यता, पति-पत्नीके सह-मरण आदिकी विशेष परिस्थितिमें पाक एवं पिण्डदान आदिकी विभिन्न व्यवस्थाका निरूपण तथा बभ्रुवाहनकी कथा

**गरुडने कहा**—हे देवश्रेष्ठ! हे प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा करके यह बतायें कि मरे हुए प्राणियोंका सपिण्डीकर्म किस समय करना चाहिये? सपिण्डीकर्म होनेपर प्रेत कैसी गति प्राप्त करता है और जिस प्रेतका सपिण्डीकर्म नहीं होता, उसकी कैसी गति होती है? स्त्री और पुरुषका किसके साथ सपिण्डीकर्म होना चाहिये। हे सुरेश्वर! स्त्री और पुरुष एक साथ सपिण्डीकर्मके भागीदार बनकर कैसे उत्तम गति प्राप्त कर सकते हैं? पतिके जीवित रहते हुए स्त्रियोंका सपिण्डीकरण कैसे हो सकता है? वे किस प्रकार पतिलोक या स्वर्गको जाती हैं? अग्न्यारोहण हो जानेपर स्त्रियोंका श्राद्ध कैसे होता है? उनका वृषोत्सर्ग किस प्रकारसे किया जाय? हे स्वामिन्! सपिण्डीकरण हो जानेपर मृतकके लिये घट-दान कैसे हो? हे हरे! आप संसारके कल्याणार्थ इसे बतानेकी कृपा करें।

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे पक्षिन्! जिस प्रकार सपिण्डीकरण होता है, वैसा ही मैं तुम्हें सुनाऊँगा। हे खगराज! जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापथ-यात्रा करता है तो पुत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डीकरण हो जानेपर वह पितृलोकमें चला जाता है। इसलिये पुत्रको पिताका सपिण्डीकरण करना चाहिये। वर्षके पूर्ण हो जानेपर पिण्डप्रवेशन अर्थात् सपिण्डीकरण करना चाहिये। हे पक्षियोंके सिंह! वर्षके अन्तमें निश्चित रूपसे प्रेत-पिण्डका मेलन होता है। पितृपिण्डोंके साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हो जानेपर वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह प्रेत नामका परित्याग करके पितृगण हो जाता है। अपने गोत्र या सापिण्ड्यमें जितने लोगोंको अशौच शास्त्रानुसार होता है उनके यहाँ यदि विवाह या कोई शुभ कार्य होना है तो तीसरे पक्ष या छः मासमें भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है।

हे खगेश्वर! गृहस्थके घरमें यदि किसीका मरण हुआ हो तो विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। जबतक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता है तबतक भिक्षुक उस घरकी भिक्षाको स्वीकार नहीं करता है। अपने गोत्रमें अशौच तबतक रहता है, जबतक पिण्डका मेलन नहीं हो जाता है। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुल-धर्म अनन्त हैं, पुरुषकी आयु क्षयशील है और शरीर नाशवान् है, इस कारण बारहवाँ दिन ही सपिण्डीकरण-कर्मके लिये प्रशस्त समय होता है। मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो अथवा न रहा हो, उसका सपिण्डीकरण द्वादशाहको ही कर देना चाहिये। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने बारहवें दिन, तीसरे पक्षमें, छठे मासमें अथवा वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरणका विधान किया है।

पुत्रवान्का सपिण्डीकरणके बाद कभी भी एकोद्दिष्ट नहीं करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पश्चात् जहाँ-जहाँ श्राद्ध किया जाय, पुत्रवान्का एकोद्दिष्ट कभी न किया जाय। वहाँ-वहाँ तीन-

तीन श्राद्ध (पार्वण श्राद्ध) करने आवश्यक हैं, अन्यथा कर्ता पितृघातक कहलाता है। अशक्त होनेपर भी पार्वण श्राद्ध करना चाहिये।[1] ऐसा मुनियोंने कहा है। यदि दिन और मास न ज्ञात हो तो उनका पार्वण श्राद्ध ही करना उचित है। पितरोंके साथ वह पिता इस लोकमें पुत्रके द्वारा दिये गये दानका फल तबतक नहीं प्राप्त करता, जबतक उसके शरीरकी उत्पत्ति पुनः [दशगात्रके पिण्डसे] नहीं हो जाती। ऐसी स्थितिमें पुत्रद्वारा किये गये इन्हीं सोलह श्राद्धोंसे प्रेत यमपाशके बन्धनसे मुक्त होता है। पुत्ररहित पुरुषका सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये।[2] पतिके जीवित रहनेपर स्त्रीका भी सपिण्डन नहीं होना चाहिये।

जिस कन्याका विवाह ब्राह्मादि-विवाह-विधिसे हुआ है, उसकी पिण्डोदक-क्रियाएँ पतिके गोत्रसे करनी चाहिये। आसुरादि-विधिसे जिसका विवाह हुआ है, उसकी पिण्डोदक-क्रिया पिताके गोत्रसे करनी चाहिये। पिताका सपिण्डीकरण सदैव पुत्र करे। यदि पुत्र नहीं है तो स्वयं उसकी पत्नी उस क्रियाका निर्वाह करे। उसके भी न रहनेपर सहोदर भाई, भाईका पुत्र अथवा शिष्य सपिण्डीकरण कर सकता है। सपिण्डीकरण करके वह नान्दीमुख श्राद्ध करे। हे खग! पुत्र न रहनेपर ज्येष्ठ भाईका सपिण्डीकरण कनिष्ठ भाई करे। उसके अभावमें भतीजा या पत्नी उस कर्मको सम्पन्न करे। मनुने कहा है कि—यदि सहोदर भाइयोंमेंसे एक भी भाई पुत्रवान् हो जाय तो उसी पुत्रसे अन्य सभी भाई पुत्रवान् हो जाते हैं।[3] यदि सभी भाई पुत्रहीन हैं तो उनका सपिण्डीकरण उनकी पत्नीको करना चाहिये अथवा वह पत्नी स्वयं न करके ऋत्विज्से या पुरोहितसे कराये।

चूडाकरण एवं उपनयन-संस्कारसे संस्कृत पुत्र पिताके श्राद्धको करे। जिस पुत्रका उपनयन-संस्कार नहीं हुआ है केवल चूडाकरण-संस्कार हुआ है वह श्राद्धमें स्वधाका उच्चारण तो कर सकता है पर वेदमन्त्रका उच्चारण नहीं कर सकता। स्त्रीका सपिण्डीकरण उसके पति, ससुर तथा परश्वशुरके साथ करना चाहिये। स्त्री-जातिका यह कर्म भतीजा तथा सहोदर छोटा भाई भी कर सकता है। संवत्सरपूर्ण होनेके पहले अथवा वर्षके पूर्ण होनेपर दूसरे वर्षके संधिकालमें जिन प्रेतोंका सपिण्डीकरण होता है, उनकी क्रिया पृथक् नहीं की जाती। हे वत्स! सपिण्डीकरण हो जानेके पश्चात् पृथक् क्रिया करना निन्दनीय माना गया है। जो व्यक्ति अपने पिताको पृथक् पिण्डदान देता है, वह पितृहन्ता होता है। सपिण्डीकरणके बाद पृथक् श्राद्ध उचित नहीं है। यदि कोई पृथक् पिण्डदान करता है तो वह पुनः सपिण्डीकरण करे। जो मनुष्य सपिण्डीकरण करके एकोद्दिष्ट श्राद्ध करता है, वह स्वयंको तथा प्रेतको यमराजके अधीन कर देता है।

---

१-(क) यहाँपर ऊनमासिक आदि तथा सांवत्सरिक [मृत्यु-तिथि आदि] श्राद्ध एकोद्दिष्ट श्राद्धके स्थानपर पार्वण श्राद्धकी विधि कात्यायनके मतसे लिखी गयी है। जो कुछ प्रदेशोंमें भी प्रचलित है। परंतु सामान्यतया ऊनमासिक सांवत्सरिकादि श्राद्धोंमें शौनकके मतानुसार एकोद्दिष्ट-विधिसे ही श्राद्ध किया जाता है।

(ख) सपिण्डीकरणं कृत्वा गयां गत्वा च धर्मवित्। एकोद्दिष्टं न कुर्वीत साग्निर्वा नाग्निमानपि॥ (दिवोदासप्रकाश)

२-उपर्युक्त श्लोकोंमें 'अपुत्रस्य' यह वाक्य 'पुत्रोत्पादन' की विधिकी प्रशंसामें पर्यवसित है। इसका तात्पर्य अपुत्रवान् पुरुषके सपिण्डन-निषेधमें नहीं है। अन्यथा—

पुत्राभावे स्वयं कुर्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। सपिण्डीकरणं तत्र ततः पार्वणमन्वहम्॥ (श्राद्धकल्पलता पृष्ठ २४३)

'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्न्यभावे सहोदरः।' (२६।२३)

'सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्।' (२६।२७)

—इन वाक्योंका विरोध हो जायगा। अतः यथाविधि योग्य पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

३-भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥ (२६।२६)

हे पक्षिन्! वर्षपर्यन्त प्रेतसे सम्बन्धित जो भी क्रिया की जाय उसके नाम और गोत्रके सहित विद्वान् व्यक्ति करे। सपिण्डीकरण कर देनेपर भोजन और घटादिका दान, पददान तथा अन्य जो दान हैं उन्हें एकको (मृत व्यक्तिको) ही उद्देश्य करके देना चाहिये। वर्षभरके लिये अन्न और जलपूर्ण घटादिकी संख्याका निर्धारण करके ब्राह्मणको प्रदान करे। पिण्डदान देनेके पश्चात् यथाशक्ति वर्षभरके लिये उपयोगी समस्त सामग्री दानमें दे। ऐसा होनेपर मृत व्यक्ति दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोक चला जाता है।[1]

पिताके जीवित रहनेके कारण मृत पुत्रका पिताके साथ सपिण्डीकरण नहीं हो सकता अर्थात् उसका सपिण्डीकरण पितामह आदिके साथ होगा ऐसे ही पतिके जीवित होनेपर स्त्रियोंका सपिण्डीकरण उसकी श्वश्रू आदिके साथ होगा।[2] पतिकी मृत्यु हो जानेके बाद चौथे दिन जो पतिव्रता स्त्री अपने शरीरको अग्निमें समर्पित कर देती है, उसका वृषोत्सर्गादि कर्म पतिकी क्रियाके ही दिन करना चाहिये। पुत्रिका पुत्रोत्पत्तिके पूर्व पतिके गोत्रवाली होती है। पुत्रोत्पत्तिके बाद वह पुनः पिताके गोत्रमें आ जाती है। पुत्रिका उस कन्याको कहते हैं, जिस कन्याका पिता विवाहके समय जामातासे यह तय कर लेता है कि इस कन्यासे जो पुत्र पैदा होगा वह मेरा पुत्र होगा। यदि स्त्री अपने पतिके साथ अग्निमें आरोहण करती है तो उसकी उसके पतिके साथ समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया करनी चाहिये, किंतु क्षय-तिथिमें पुत्रको उसका श्राद्ध पृथक्-रूपमें करना चाहिये। यदि पति-पत्नी पुत्ररहित हैं और वे दोनों एक ही दिन मर जाते हैं तथा उनका दाह-संस्कार एक ही चितापर होता है तो उन दोनोंके श्राद्धोंको पृथक्-पृथक् करना चाहिये, किंतु पत्नीका सपिण्डीकरण पतिके साथ ही होगा। यदि पतिके साथ पत्नीका पिण्डदान पृथक्-पृथक् होता है तो उस पिण्डदानसे वह दम्पति पापलिप्त नहीं होता, यह मेरा सत्य वचन है। यदि पति-पत्नी दोनोंका एक ही चितापर दाह संस्कार होता है तो उन दोनोंके लिये पाक एक ही साथ बनाया जाय, किंतु पिण्डदान पृथक्-पृथक् होना चाहिये। एकादशाहको वृषोत्सर्ग, षोडश प्रेतश्राद्ध, घटादि-दान, पददान और जो महादान हैं उन्हें पति-पत्नीका वर्षपर्यन्त पृथक्-पृथक् ही करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतको चिरकालीन संतृप्ति प्राप्त होती है।

एक गोत्रसे सम्बन्धित एक साथ मरे हुए स्त्री अथवा पुरुषसे सम्बद्ध-कृत्यमें आहुतिकी वेदी एक ही होनी चाहिये। किंतु होम पृथक्-पृथक् होना चाहिये। पति एवं पत्नीका एक साथ मरण होनेपर उनका एकादशाहका श्राद्ध एवं उनके निमित्त पिण्डदान, भोजन आदि पृथक्-पृथक् होगा, पर पाककी व्यवस्था एक ही होगी—यह विधान केवल पति-पत्नीके एक साथ मरणमें ही है अन्य किसीके मरणमें ऐसा विधान गर्हित है। पुत्र माता-पिताके लिये एक ही पाकसे यथाविधान

१-अन्नं पानीयसहितं संख्यां कृत्वाब्दिकस्य च। दातव्यं ब्राह्मणे पक्षिञ्जलपूर्णघटादिकम्॥
पिण्डान्ते तस्य सकला वर्षवृत्तिः स्वशक्तितः। दिव्यदेहो विमानस्थः सुखं याति यमालयम्॥ (२६।३५-३६)

२-पिताके जीवित रहनेपर पुत्रके मर जानेसे पुत्रका सपिण्डीकरण पिताके साथ न करके पितामहके साथ करनेका विधान है। इसी प्रकार पतिके जीवित रहनेपर मृत पत्नीका पतिके साथ सपिण्डीकरण न करके उसके श्वश्रू, परश्वश्रू और वृद्ध परश्वश्रू (सास, परसास, वृद्धपरसास)-के साथ सपिण्डीकरण करना चाहिये। इसके समर्थनमें ये वाक्य द्रष्टव्य हैं—

अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम्। श्वश्र्वादिभिःसहैवास्याःसपिण्डीकरणं भवेत्॥ (पैठीनसि)
अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम्। श्वश्रूमात्रादिभिः सार्धमेव धर्मेण युज्यते॥ (व्यास)

श्राद्ध करता है। विकिरान्नदान एक और पिण्डदान पृथक्-पृथक् करने चाहिये। इसी विधिका पालन तीर्थ, पितृपक्ष अथवा चन्द्र और सूर्य-ग्रहणके अवसरमें भी होना चाहिये।

जब स्त्री अपने मृत पतिके साथ अग्निमें जलती है तो अग्नि उसके शरीरको अवश्य जला देती है, किंतु आत्माको कष्ट नहीं दे पाती है, जिस प्रकार अग्निमें प्रज्वलित धातुओंका मात्र मल ही जलता है, उसी प्रकार अमृतके समान अग्निमें प्रविष्ट हुई नारीका शरीर दग्ध होता है। पुरुष शुद्ध होकर दिव्य देहधारी हो जाता है; जिसके कारण वह खौलते हुए तेल, दहकते हुए लौह तथा अग्निसे कदापि नहीं जलता, इसी प्रकार पतिके साथ चितामें जली हुई स्त्रीको कभी जला हुआ नहीं मानना चाहिये; क्योंकि उसकी अन्तरात्मा मरे हुए पतिकी अन्तरात्मासे मिलकर एक हो जाती है।

यदि स्त्री पतिका साथ छोड़ करके अन्यत्र अपने प्राणोंका परित्याग करती है तो वह पतिलोकमें तबतक नहीं पहुँच पाती, जबतक प्रलय नहीं हो जाता। धन-दौलतसे युक्त माता-पिताको छोड़कर जो स्त्री अपने मरे हुए पतिका अनुगमन करती है, वह चिरकालतक सुखोपभोग करती है। वह पतिसंयुक्ता नारी उस स्वर्गमें साढ़े तीन करोड़ दिव्य वर्षोंतक नक्षत्रोंके साथ स्वर्गमें रहकर अन्तमें महती प्रीति प्राप्त करके ऐश्वर्यसम्पन्न कुलमें उत्पन्न होती है।

धर्मपूर्वक विवाहिता जो स्त्री यदि पति-संगति नहीं करती है, तो जन्म-जन्मान्तरतक दुखी, दुःशीला और अप्रियवादिनी होती है। जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर परपुरुषकी अनुगामिनी हो जाती है, वह अन्य जन्मोंमें चमगादड़ी, छिपकली, गोहनी अथवा द्विमुखी सर्पिणी होती है। अतः स्त्रीको मन-वाणी और कर्म—इन सभीके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपने मृत या जीवित पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिके जीवित रहते हुए अथवा उसके मरनेपर जो स्त्री व्यभिचार करती है, वह अनेक जन्मोंतक वैधव्य जीवन प्राप्त करती है और दुर्भाग्य उसका साथ नहीं छोड़ता। देवता और पितरोंको श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जाता है, उसका समग्र फल उसे पतिकी पूजा करनेसे ही प्राप्त हो जाता है, इसलिये स्त्रीको पतिकी ही पूजा करनी चाहिये।

हे पक्षिश्रेष्ठ! पातिव्रत्यधर्मरूप सत्कर्मका पालन करनेपर स्त्री चिरकालतक पतिलोकमें निवास करती है। जबतक सूर्य और चन्द्र विद्यमान हैं, तबतक वह स्वर्गमें देवतुल्य बनी रहती है। उसके बाद दीर्घायु प्राप्त करके इस लोकमें वैभवशाली कुलमें जन्म लेती है तथा कभी भी पति-वियोगका दुःख नहीं झेलती।

हे खगराज! मैंने यह सब तुम्हें बता दिया। अब मृत प्राणीको सुख प्रदान करनेवाले विशेष कर्मको बताऊँगा। मृत्युके बाद द्वादशाहके दिन यथाविधि सपिण्डनादि समस्त कार्य करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन जलपूर्ण घट और अन्नका दान एवं मासिक श्राद्ध करना चाहिये। हे पक्षिन्! प्रेतकार्यको छोड़कर अन्य किये हुए कार्यकी आवृत्ति नहीं होनी चाहिये।* यदि कोई मनुष्य अन्य कर्म करता है तो पूर्वका किया गया कार्य विनष्ट हो जाता है। मृतकके द्वादशाहके दिन विहित कृत्य वर्षपर्यन्त पुनः करने चाहिये, इससे प्रेत अक्षयसुख प्राप्त

* उत्तम षोडशी आदि जो प्रेतोद्देश्यक कार्य हैं सपिण्डनके बाद भी इनकी पुनरावृत्ति ऊनमासिक आदि श्राद्धके द्वारा वर्षपर्यन्त करना चाहिये। परंतु पितरोंके उद्देश्यसे किये गये कर्मकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये—

द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं यावत्सपिण्डनम्। पुनः कुर्यात्सदा नित्यं घटान्नं प्रतिमासिकम्॥

कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग। यः करोति नरः कश्चित्कृतपूर्वं विनश्यति॥

मृतस्यैव पुनः कुर्यात्प्रेतोऽक्षय्यमवाप्नुयात्। प्रतिमासं घटा देया सोदना जलपूरिताः॥

अर्वाक्च वृद्धेः करणाच्च तार्क्ष्य सपिण्डनं यः कुरुते हि पुत्रः। तथापि मासं प्रतिपिण्डमेकमन्नं च कुम्भं सजलं च दद्यात्॥ (२६। ६४—६७)

करता है। प्रतिमास जलसे परिपूर्ण सान्नोदक घटका दान करना चाहिये। हे तार्क्ष्य! वृद्धिश्राद्धके कारण जो पुत्र अपने पिताका सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देता है तो भी उसे प्रत्येक मासमें एक पिण्ड, अन्न और जलसे पूर्ण कुम्भका दान करना चाहिये।

**तार्क्ष्यने कहा**—हे विभो! आपने जिन प्रेतोंका वर्णन किया है, वे इस धरतीपर कैसे निवास करते हैं; उनके रूप किस प्रकारके होते हैं, वे कौन-कौन-से कर्म-फलोंके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं और किस शुभ दानसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है? हे मधुसूदन! समस्त जगत्के कल्याणार्थ मुझको यह सब बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे तार्क्ष्य! तुमने मानव-कल्याणके लिये बहुत अच्छी बात पूछी। प्रेतका लक्षण मैं कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर सुनो। यह अत्यन्त गुप्त है। जिस-किसीके सामने इसको नहीं कहना चाहिये। तुम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हारे सामने इसे कह रहा हूँ।

हे पुत्र गरुड! पुराने समयमें बभ्रुवाहन नामका एक राजा था, जो महोदय (कान्यकुब्ज) नामक सुन्दर नगरमें रहता था। वह धर्मनिष्ठ, महापराक्रमी, यज्ञपरायण, दानशील, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणहितकारी, साधुसम्मत, सुशील, सदाचारी तथा दया-दाक्षिण्यादि सद्‌गुणोंसे संयुत था। वह महाबली राजा सदैव अपनी प्रजाका पालन पुत्रवत् करता तथा क्षत्रिय-धर्मका सम्यक् पालन करते हुए सदैव अपराधियोंको दण्डित किया करता। कभी विशाल भुजाओंवाले उस राजाने अपनी सेनाके सहित शिकार करनेके लिये नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए सैकड़ों सिंहोंसे परिव्याप्त, विभिन्न प्रकारके पक्षियोंके कलरवसे निनादित एक घनघोर वनमें प्रवेश किया। वनके बीचमें जाकर राजाने दूरसे ही एक मृगको देखा और उसके ऊपर अपने बाणको छोड़ दिया। उसके द्वारा छोड़े गये उस कठिन बाणसे वह मृग अत्यन्त आहत हो उठा और शरीरमें बिंधे हुए उस बाणके सहित वह मृग वहाँसे भागकर वनमें लुप्त हो गया, किंतु उसकी काँखसे बह रहे रक्तके चिह्नोंसे राजाने उसका पीछा किया। इस प्रकार उसके पीछे-पीछे वह राजा दूसरे वनमें जा पहुँचा।

भूख और प्याससे उसका कण्ठ सूख रहा था तथा परिश्रम करनेके कारण अत्यन्त थकानका अनुभव करता हुआ वह मूर्च्छित-सा हो गया था; उसको वहाँ एक जलाशय दिखायी दिया। जलाशय देखकर घोड़ेके सहित उसने वहाँ स्नान किया और कमलपरागसे सुवासित शीतल जलका पान किया। तत्पश्चात् उस जलसे निकलकर राजा बभ्रुवाहन विशाल वटवृक्षकी मनमोहक शीतल छायाके नीचे बैठ गया, जो पक्षियोंके कलरवसे निनादित तथा उस समूचे वनकी पताकाके रूपमें अवस्थित था। इसके बाद उस राजाने वहाँपर भूख-प्याससे व्याकुल इन्द्रियोंवाले एक प्रेतको देखा, जिसके सिरकी केशराशि ऊपरकी ओर खड़ी थी। उसका शरीर मलिन, कुब्जा (रूक्ष), मांसरहित और देखनेमें महाभयंकर लगता था। मात्र शरीरमें शेष स्नायु-तन्त्रिकाओंसे जुड़ी हुई हड्डियोंवाला वह अपने पैरोंसे इधर-उधर दौड़ रहा था और अन्य बहुत-से प्रेत उसको चारों ओरसे घेरे हुए थे।

हे तार्क्ष्य! उस विकृत प्रेतको देखकर बभ्रुवाहन विस्मित हो गया और उस प्रेतको भी महाभयंकर वनमें आये हुए राजाको देखकर कम आश्चर्य नहीं हुआ। प्रसन्नचित्त होकर प्रेतने उस राजाके पास जाकर कहा—

**प्रेतने कहा**—हे महाबाहो! आज आपके दर्शनका यह संयोग प्राप्त कर मैंने प्रेतभावको त्यागकर परम गति प्राप्त कर ली है। मुझसे बढ़कर धन्य कोई नहीं है।

**राजाने कहा**—हे प्रेत! तुम मुझे कृष्णवर्णवाले भयंकर प्रेतके समान दिखायी दे रहे हो। तुम्हें इस प्रकारका स्वरूप जैसे प्राप्त हुआ है वैसा मुझे बताओ।

राजाके ऐसा कहनेपर उस प्रेतने अपने सम्पूर्ण जीवनवृत्तको इस प्रकार कहा—

**प्रेतने कहा**—हे नृपश्रेष्ठ! मैं अपने सम्पूर्ण जीवन-वृत्तका विवरण आपको आदिसे सुना रहा हूँ, मेरे इस प्रेतत्वका कारण सुन करके आप दया अवश्य करेंगे। हे राजन्! नाना रत्नोंसे युक्त तथा अनेक जनपदोंमें व्याप्त समस्त सम्पदाओंसे भरा हुआ, विभिन्न पुण्योंसे प्रख्यात अनेकानेक वृक्षोंसे आच्छादित विदिशा नामका एक नगर है। मैं वहींपर निरन्तर देवपूजामें अनुरक्त रहकर निवास करता था। उस जन्ममें मेरी जाति वैश्यकी थी और नाम मेरा सुदेव था। मैं उस जन्ममें हव्यसे देवताओंको, कव्यसे पितरोंको तथा नाना प्रकारके दानसे ब्राह्मणोंको सदैव संतृप्त किया करता था। मेरे द्वारा दीन-हीन, अनाथ और विशिष्ट जनोंकी अनेक प्रकारसे सहायता की गयी थी, किंतु दुर्भाग्यवश वह सब कुछ मेरा निष्फल हो गया। मेरे वे पुण्य जिस प्रकारसे विफल हुए, मैं आपको वह सुनाता हूँ।

हे तात! पूर्वजन्ममें न मेरे कोई संतान हुई, न कोई ऐसा बन्धु-बान्धव या मित्र ही रहा जो मेरी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करता। हे नृपोत्तम! उसीके कारण मुझे यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है। हे राजन्! एकादशाह, त्रिपक्ष, षाण्मासिक, सांवत्सरिक, प्रतिमासिक और इसी प्रकारके अन्य जो षोडश श्राद्ध हैं, वे जिस प्रेतके लिये सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उस प्रेतकी प्रेतयोनि बादमें स्थिरताको प्राप्त कर लेती है, भले ही बादमें क्यों न उसके लिये सैकड़ों श्राद्ध किये जायँ। हे महाराज! ऐसा जानकर आप मेरा इस प्रेतयोनिसे उद्धार करें। राजाको सभी वर्णोंका बन्धु कहा जाता है। मैं आपको एक मणिरत्न दे रहा हूँ। हे राजेन्द्र! इस नरकसे मुझे उबार लें। हे नृपश्रेष्ठ! हे महाबाहो! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो जिस प्रकारसे मुझे शुभ गति प्राप्त हो मेरे लिये वही उपाय करें और आप अपना भी समस्त प्रकारसे और्ध्वदैहिक कार्य करें।

**राजाने कहा**—हे प्रेत! और्ध्वदैहिक कर्म करनेपर भी प्राणी कैसे प्रेत हो जाते हैं? किन कर्मोंको करनेसे उन्हें पिशाच होना पड़ता है? तुम उसे भी बताओ।

**प्रेतने कहा**—हे नृपश्रेष्ठ! जो लोग देवद्रव्य, ब्राह्मण-द्रव्य और स्त्री एवं बालकोंके संचित धनका अपहरण करते हैं, वे प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं। जिनके द्वारा तपस्विनी, सगोत्रा एवं अगम्या स्त्रीका भोग किया जाता है, जो कमलपुष्पोंकी चोरी करते हैं, वे महाप्रेत होते हैं। हे राजन्! जो हीरा-मूँगा-सोना और वस्त्रके अपहर्ता हैं, जो युद्धमें पीठ दिखाते हैं, जो कृतघ्न, नास्तिक, क्रूर तथा दु:साहसी हैं, जो पञ्चयज्ञ नहीं करते, किंतु बहुत बड़े-बड़े दान देनेमें अनुरक्त रहते हैं, जो अपने स्वामीसे वैर करते हैं, जो मित्र और ब्राह्मणद्रोही हैं, जो तीर्थमें जाकर पापकर्म करते हैं, वे प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं। हे महाराज! इस प्रकार इन सभी प्राणियोंका जन्म प्रेतयोनिमें होता है।

**राजाने कहा**—हे प्रेतराज! इस प्रेतत्वसे तुम्हें और तुम्हारे साथियोंको कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? मैं किस प्रकारसे अपना और्ध्वदैहिक कर्म कर सकता हूँ? वह कार्य किस विधानसे सम्भव है? यह सब कुछ मुझे बताओ।

**प्रेतने कहा**—हे राजेन्द्र! संक्षेपमें नारायणबलिकी विधि सुनें। मैंने सुना है कि सद्ग्रन्थोंका श्रवण, विष्णुका पूजन तथा सज्जनोंका साथ प्रेतयोनिको विनष्ट करनेमें समर्थ होता है। अत: मैं आपको प्रेतत्वभावको नष्ट करनेवाली विष्णुपूजाका विधान बताऊँगा।

हे राजन्! दो सुवर्ण* ले करके उससे भगवान् नारायणकी सभी आभूषणोंसे विभूषित प्रतिमाका निर्माण करवाना चाहिये। मूर्तिको दो पीले वस्त्रोंसे आच्छादित करके चन्दन तथा अगुरुसे सुवासित करे। तदनन्तर नाना तीर्थोंसे लाये गये पवित्र जलके द्वारा सविधि स्नान कराकर तथा अधिवासितकर पूर्वमें भगवान् श्रीधर, दक्षिणमें भगवान् मधुसूदन, पश्चिममें भगवान् वामन, उत्तरमें भगवान् गदाधर, मध्यभागमें पितामह ब्रह्मा और भगवान् महेश्वरकी विधिवत् पूजा गन्ध-पुष्पादिसे पृथक्-पृथक् रूपमें की जाय। तत्पश्चात् उस देवमण्डलकी प्रदक्षिणा करके अग्निमें देवताओंकी संतुष्टिके लिये आहुति दे। घृत, दही और दूधसे विश्वेदेवोंको संतृप्त करे। उसके बाद यजमान फिरसे स्नान करके विनम्रतापूर्वक एकाग्रचित्तसे भगवान् नारायणके सामने विधिवत् अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करे। विनीतभावसे क्रोध एवं लोभरहित होकर कार्य आरम्भ करना चाहिये। इस अवसरपर सभी श्राद्ध और वृषोत्सर्ग करने चाहिये। तेरह ब्राह्मणोंको वस्त्र, छत्र, जूता, मुक्तामणिजटित अँगूठी, पात्र, आसन और भोजन देकर संतुष्ट करे। उसके बाद प्रेतकल्याणके लिये अन्न और जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। शय्यादान करके घटदान भी प्रेतके उद्देश्यसे करे। तदनन्तर 'नारायण' नाम ही सत्य है—ऐसा कहकर सम्पुटमें स्थित भगवान् नारायणकी पूजा करे। ऐसा विधिवत् करनेपर निश्चित ही प्राणीको शुभ फल प्राप्त होता है।

**राजाने कहा**—हे प्रेत! प्रेतघट कैसा होना चाहिये, उसको प्रदान करनेका क्या विधान है? सभी प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये तुम प्रेतके लिये मुक्तिदायक घटके विषयमें मुझे बताओ।

**प्रेतने कहा**—हे महाराज! आपने बड़ा अच्छा प्रश्न किया है। जिस दानसे प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता, उसे मैं कहता हूँ, सुनें।

प्रेतघट नामका दान समस्त अमङ्गलोंका विनाशक है। दुर्गतिको क्षय करनेवाला यह प्रेतघटका दान सभी लोकोंमें दुर्लभ है। संतप्त स्वर्णमय घट बनवाकर उसे घृत और दूधसे परिपूर्ण करके लोकपालोंसहित ब्रह्मा, शिव और केशवको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ब्राह्मणको दानमें दे। अन्य सैकड़ों दान देनेसे क्या लाभ? इसके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा पूर्वादिक सभी दिशाओंमें और कण्ठभागमें यथाक्रम लोकपालोंकी विधिवत् पुष्प, धूप एवं चन्दनादिसे पूजा करके उसे दूध और घीसे पूर्ण स्वर्णमय घट दानमें देना चाहिये। यह सभी दानोंसे बढ़कर दान है। इस दानसे सभी महापातकोंका विनाश हो जाता है। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये श्रद्धापूर्वक यह दान अवश्य करना चाहिये।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे वैनतेय! उस प्रेतके साथ इस प्रकारका वार्तालाप राजाका चल ही रहा था कि उसी समय उनके पदचिह्नोंका अनुगमन करती हुई हाथी, घोड़े तथा रथसे परिव्याप्त उनकी सेना वहाँ आ पहुँची। सेनाके वहाँ आ जानेपर प्रेतने राजाको एक महामणि देकर प्रणाम किया और अपने प्रेतत्व-विमुक्तिकी प्रार्थना करके अदृश्य हो गया। उस वनसे निकलकर राजा भी अपने नगरको चला गया। हे पक्षिन्! नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रियाको विधि-विधानसे सम्पन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धन-विमुक्त होकर स्वर्ग चला गया।

हे गरुड! पुत्रके द्वारा दिये गये श्राद्धसे पिताको सद्गति प्राप्त होती है, इसमें आश्चर्य क्या है? जो मनुष्य इस पुण्यदायक इतिहासको सुनता है और जो सुनाता है, वह पापाचारसे युक्त होनेपर भी प्रेतत्व-योनिको प्राप्त नहीं होता है। (अध्याय २६-२७)

---

* सुवर्णमाष।

# प्रेतत्वमुक्तिके उपाय

**गरुडजीने कहा**—हे मधुसूदन! जिस दान या सत्कर्मसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है, उसे बतानेकी कृपा करें, इसके ज्ञानसे लोगोंका बड़ा कल्याण होगा।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिराज! सुनो! मैं तुम्हें समस्त अमङ्गलोंको विनष्ट करनेवाले दानको बता रहा हूँ। शुद्ध स्वर्णका घट बनाकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा लोकपालोंसहित उसकी पूजाकर दुग्ध और घृतसे परिपूर्ण उस घटको सुपात्र ब्राह्मणको दानमें देनेसे प्रेतत्वसे मुक्ति मिल जाती है।

हे गरुड! पुत्रहीन व्यक्तिकी सद्‌गति नहीं होती, अतः यथाविधान पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। मृत व्यक्तिको गोबरसे लीपी गयी मण्डलाकार भूमिमें स्थापित करना चाहिये। भूमि गोबरसे लीपनेपर पवित्र हो जाती है तथा मण्डलका निर्माण करनेसे उस स्थानपर देवताओंका वास हो जाता है। ऐसे ही मृत व्यक्तिके नीचे तिल और कुश बिछानेसे जीवको उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है, साथ ही मृत व्यक्तिके मुँहमें पञ्चरत्न डालनेसे जीवको शुभ गति मिलती है।

हे तार्क्ष्य! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हैं, इसलिये वे सदा पवित्र हैं— '**मम स्वेदसमुद्‌भूतास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रकाः।**' (२९।१५)। इसी प्रकार कुशकी उत्पत्ति मेरे रोमसे हुई है '**दर्भा मल्लोमसम्भूताः**' (२९।१७)। कुशयुक्त भूमि अपने ऊपर विद्यमान मृत जीवको निःसंदेह स्वर्ग पहुँचा देती है। कुशमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीनों देव प्रतिष्ठित रहते हैं— '**त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।**' हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि तथा तुलसी—ये बार-बार प्रयोगमें लाये जानेपर भी पर्युषित (बासी) नहीं होते—

**विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर।**
**नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः॥**

(२९।२१)

इसी तरह विष्णु, एकादशीव्रत, भगवद्‌गीता, तुलसी, ब्राह्मण तथा गौ—ये छः इस संसारसागरसे मुक्ति दिलानेवाले हैं;—

**विष्णुरेकादशीगीतातुलसीविप्रधेनवः ।**
**अपारे दुर्गसंसारे षट्‌पदी मुक्तिदायिनी॥**

(२९।२४)

इसीलिये हे गरुड! तिल, कुश और तुलसी—ये आतुर व्यक्तिकी दुर्गतिको रोककर उसे सद्‌गति दिलाते हैं। आतुर-कालमें दानकी भी विशेष महिमा है। भगवान् विष्णुकी देहसे लवणका प्रादुर्भाव हुआ है, अतः आतुर-कालमें लवण-दान करनेसे भी जीवकी दुर्गति नहीं होती।* (अध्याय २८-२९)

# दानधर्मकी महिमा, आतुरकालके दानका वैशिष्ट्य, वैतरणी-गोदानकी महिमा

**श्रीकृष्णने कहा**—हे तार्क्ष्य! देवताओंके लिये परम गोपनीय दानोंमें उत्तम और सभी दानोंमें श्रेष्ठ दानको सुनो—

हे गरुड! रुईका दान सभी दानोंमें उत्तम तथा महान् है। उसका दान मनुष्यको अवश्य करना चाहिये, उसके दानसे **भूः**, **भुवः**, **स्वः** अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—ये तीनों लोक प्रसन्न हो उठते हैं। इस कार्यसे ब्रह्मा आदि सभी देवोंको

* २८वें तथा २९वें अध्यायका विषय प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें पूर्णरूपसे आ गया है, इसलिये इसे यहाँ संक्षिप्तरूपमें दिया गया है। पूर्ण विवरण प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें देखना चाहिये।

प्रसन्नता होती है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये इस महादानको करना चाहिये। ऐसे महादानका दाता चिरकालतक रुद्रलोकमें रहता है, तदनन्तर इस लोकमें जन्म लेकर रूपसम्पन्न, सौभाग्यशाली, वाक्चतुर, लक्ष्मीवान् और अप्रतिहत-पराक्रमी राजा होता है। अपने सुकृतोंसे यमलोकको जीतकर वह स्वर्गलोकमें जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको गौ, तिल, भूमि तथा स्वर्णका दान देता है, उसके जन्म-जन्मार्जित सभी पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं। तिल और गौका दान महादान है, इसमें महापापोंको नाश करनेकी शक्ति होती है। ये दोनों दान केवल विप्रको देने चाहिये, अन्य वर्णोंको नहीं। दानके रूपमें संकल्पित तिल, गौ तथा पृथ्वी आदि द्रव्य, अपने पोष्य-वर्ग एवं ब्राह्मणेतर वर्णको न दे। पोष्यवर्ग और स्त्री-जातिको असंकल्पित वस्तु दानमें देनी चाहिये। रुग्णावस्थामें अथवा सूर्य एवं चन्द्रग्रहणके अवसरपर दिये गये दान विशेष महत्त्व रखते हैं। रोगीके लिये जो दान दिया जाता है, वह उसके लिये तत्काल यथोचित फल देनेवाला होता है। यदि रोगी दान देनेके बाद रोगमुक्त होकर पुन: जीवन प्राप्त कर लेता है तो उसके निमित्त दिया गया दान निश्चित ही उसे प्राप्त होता है। विकलेन्द्रियकी विकलाङ्गताको नष्ट करनेके लिये जो दान दिया जाता है वह दान भी अवश्य ही यथायोग्य फलदायक होता है। जिस दानका पुत्र अनुमोदन करता है, उस दानका फल अनन्त होता है। अत: उसके सगे-सम्बन्धी अथवा पुत्रको तबतक दान देना चाहिये, जबतक उसका आतुर सम्बन्धी या पिता जीवित हो; क्योंकि अतिवाहिक प्रेत उसका भोग करता है।

अस्वस्थ-अवस्थामें— आतुरकालमें देहपात हो जानेपर पृथ्वीपर पड़े रहनेकी स्थितिमें दिया गया दान अतिवाहिक शरीरके लिये प्रीतिकारक होता है। लँगड़े, अंधे, काने और अर्धनिमीलित नेत्रवाले रोगीके लिये तिलके ऊपर कुश बिछाकर उसके ऊपर आतुरको लिटाकर दिया गया दान उत्तम और अक्षय होता है।

तिल, लौह, स्वर्ण, रुई, नमक, सप्तधान्य, भूमि तथा गौ— ये एकसे बढ़कर एक पवित्र माने गये हैं। लौह-दानसे यमराज और तिल-दानसे धर्मराज संतुष्ट होते हैं। नमकका दान करनेपर प्राणीको यमराजसे भय नहीं रह जाता। रुईका दान देनेपर भूतयोनिसे भय नहीं रहता। दानमें दी गयी गायें मनुष्यको त्रिविध पापोंसे निर्मुक्त करती हैं। स्वर्ण-दानसे दाताको स्वर्गका सुख प्राप्त होता है। भूमि-दानसे दाता राजा होता है। स्वर्ण और भूमि— इन दोनोंका दान देनेसे प्राणीको नरकमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती। यमलोकमें जितने भी यमराजके दूत हैं, वे सभी उसी यमके समान ही महाभयंकर हैं। सप्तधान्यका दान देनेसे वे प्रसन्न होकर दानदाताओंके लिये वरदाता बन जाते हैं।

हे गरुड! भगवान् विष्णुका स्मरणमात्र करनेसे प्राणीको परम गति प्राप्त होती है। मनुष्य जो गति प्राप्त करता है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। पिताकी आज्ञासे जो पुत्र दान देता है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं। भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न पिताके उद्देश्यसे जो पुत्र सभी प्रकारका दान देता है, वह पुत्र कुलनन्दन है। उसके द्वारा दिया गया दान गया-तीर्थमें किये गये श्राद्धसे भी बढ़कर है। वह पुत्र अपने कुलको आनन्दित करनेवाला होता है। जिस समय अपने लोकको छोड़कर बेचैन पिताकी परलोक-यात्राका काल समीप हो, उस समय पुत्रोंको प्रयत्नपूर्वक दान देना चाहिये; क्योंकि वे ही दान पिताको पार करते हैं। पुत्रको पिताकी अन्त्येष्टि-क्रिया अवश्य सम्पन्न करनी चाहिये।

इतना करनेमात्रसे अन्य सभी बहुविध दानोंका फल प्राप्त हो जाता है; क्योंकि अश्वमेध-जैसा महायज्ञ भी इस पुण्यके सोलहवें अंशकी क्षमता नहीं रखता। पृथ्वीपर पड़े हुए आतुर पितासे जो धर्मात्मा पुत्र दान दिलाता है, उसकी पूजा देवता भी करते हैं।

लौहका दान करनेवाला दाता महाभयानक आकृतिवाले यमराजके निकट न तो जाता है और न तो नारकीय लोकको ही प्राप्त करता है। पापियोंको भयभीत करनेके लिये यमराजके हाथोंमें कुठार, मूसल, दण्ड, खड्ग और छुरिका रहती है; इसलिये प्राणीको चाहिये कि वह ब्राह्मणको लौह-दान दे। यह दान यमराजके आयुधोंकी संतुष्टिके लिये कहा गया है। गर्भस्थ प्राणी, शिशु, युवा और वृद्ध—ये जो भी हैं, इन दानोंसे अपने समस्त पापोंको जला देते हैं। श्याम एवं शबल वर्णके षण्ड तथा मर्क और गूलरके सदृश मांसल, हाथमें छूरी धारण करनेवाले, काले-चितकबरे यमके दूत लौह-दानसे प्रसन्न होते हैं। यदि पुत्र-पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री और मित्र अपने रोगीके लिये दान नहीं देते तो वे ब्रह्महन्ताके समान ही पापी हैं।

हे पक्षीन्द्र! भूमिपर स्थित प्राणीकी मृत्यु हो जानेपर उसकी क्या गति होती है, इसे सुनो! अतिवाहिक शरीरवाला प्रेत वर्ष समाप्त होनेके पश्चात् पुनः पुण्यका लाभ प्राप्त करता है। इस संसारमें तीन अग्नि, तीन लोक, तीन वेद, तीन देवता, तीन काल, तीन संधियाँ, तीन वर्ण तथा तीन शक्तियाँ मानी गयी हैं। मनुष्यके शरीरमें पैरसे ऊपर कटिप्रान्ततक ब्रह्मा निवास करते हैं। नाभिसे लेकर ग्रीवा-भागतक हरिका वास रहता है और उसके ऊपर मुखसे लेकर मस्तकतक व्यक्त तथा अव्यक्त-स्वरूपवाले महादेव शिवका निवास है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इनका शरीरमें तीन भागोंमें अवस्थान है।

मैं ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्जके शरीरोंमें प्राणरूपसे स्थित रहता हूँ। धर्म-अधर्म, सुख-दुःख तथा कृत-अकृतमें बुद्धिको मैं ही प्रेरित करता हूँ। मैं ही स्वयं प्राणीकी बुद्धिमें बैठकर पूर्व-कर्मके अनुसार उसको फल प्रदान करता हूँ। प्राणियोंको मैं ही कर्ममें प्रेरित करता हूँ। उसीके अनुसार प्राणी निश्चित ही स्वर्ग, नरक और मोक्ष प्राप्त करता है। स्वर्ग अथवा नरकमें गये हुए प्राणीकी तृप्ति श्राद्धके द्वारा होती है, इसलिये विद्वान् व्यक्तिको तीनों प्रकारका श्राद्ध करना चाहिये। मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—ये दस नाम सदैव मनीषियोंके लिये स्मरण करने योग्य हैं। इनका स्मरण करनेसे स्वर्गमें गये हुए प्राणी सुखका भोग करते हैं और स्वर्गसे पुनः इस लोकमें आनेपर सुख और धन-धान्यसे पूर्ण होकर दया-दाक्षिण्य आदि सद्गुणोंसे भरे रहते हैं, वे पुत्र-पौत्रसे युक्त और धनाढ्य होकर सौ वर्षतक जीते हैं। रोगग्रस्त होनेपर मनुष्यके लिये दान देना चाहिये और भगवान् विष्णुकी पूजा करनी या करानी चाहिये। उस समय उसे अष्टाक्षर अथवा द्वादशाक्षर-महामन्त्रका जप करना चाहिये।

श्वेत पुष्पसे, घीमें पकाये गये नैवेद्यसे, गन्ध-धूपसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये तथा श्रुतियों और स्मृतियोंमें अभिवर्णित स्तुतियोंसे भगवान् विष्णुकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं, विष्णु ही अपने स्वजन और बान्धव हैं। जहाँपर मैं विष्णुको नहीं देखता हूँ, वहाँ निवास करनेसे मुझे क्या लाभ? विष्णु जलमें हैं, विष्णु स्थलमें हैं, विष्णु पर्वतकी चोटीपर हैं और विष्णु चारों ओरसे मालारूपमें घिरी हुई ज्वालामालासे व्याप्त स्थानमें अवस्थित हैं। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है'—

विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः।
यत्र विष्णुं न पश्यामि तत्र वासेन किं मम॥
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥

(३०। ४१-४२)

ब्राह्मण, जल, पृथ्वी आदि जितने भी पदार्थ हैं, उन्हें अपना ही स्वरूप समझना चाहिये। इसलिये हे खगेश! किसी भी स्थानपर मनुष्य पूर्वजन्मार्जित पाप-पुण्यके अनुसार जिस कर्मको करता है, उसका फलदाता मैं ही हूँ। मैं ही प्राणीकी बुद्धिको धर्ममें नियुक्त करता हूँ और मुक्ति मैं ही देता हूँ।

हे तार्क्ष्य! अन्त-समय आनेपर मनुष्योंका हित करनेवाली वैतरणी नदी मानी गयी है। उसीके जलसे अपने पाप-समूहको धोकर प्राणी विष्णुलोकको जाता है। बाल्यावस्थाका जो पाप है, कुमारावस्थामें जो पाप हुआ है, यौवनावस्थाका जो पाप है और जन्म-जन्मान्तरमें समस्त अवस्थाओंके बीच भी जो पाप किया गया है, रात्रि-प्रातः, मध्याह्न-अपराह्न तथा दोनों संध्याओंके मध्य मन, वाणी और कर्मसे जो पाप हुआ है, उन सभी पापोंके समूहसे प्राणी अपना उद्धार अन्तिम क्षणमें सर्वकामनाओंको सिद्ध करनेवाली एक भी श्रेष्ठतमा कपिला गौका दान दे करके कर सकता है। [गोदान करते समय परमात्मासे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—परमात्मन्!] 'गायें ही मेरे आगे रहें, गायें ही मेरे पीछे और पार्श्वभागमें रहें, गायें ही मेरे हृदयमें निवास करें, मैं गायोंके बीचमें ही रहूँ। जो सभी प्राणियोंकी लक्ष्मीस्वरूपा हैं, जो देवताओंमें प्रतिष्ठित हैं, वे गौरूपिणी देवी मेरे सभी पापोंको विनष्ट करें—

गावो ममाग्रतः सन्तु पृष्ठतः पार्श्वतस्तथा।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥

(३०। ५२-५३)

(अध्याय ३०)

# और्ध्वदैहिक क्रियामें विहित पद आदि विविध दानोंका फल तथा जीवको प्राप्त देहके स्वरूपका वर्णन

**श्रीविष्णुने कहा**—हे गरुड! जो मनुष्य पापाचारमें लगे हुए हैं, वे यमलोकको जाते हैं। यदि मुझको साक्षी बनाकर मनुष्यके द्वारा दान दिया जाता है, तो वह अनन्त फलदायी होता है। भूमिदान देनेवाला प्राणी दानमें दी गयी भूमिके रजकणोंकी जितनी संख्या होती है, उतने वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। जो जूतेका दान देते हैं, घोर यममार्गमें वे घोड़ेपर सवार होकर चलते हैं। छत्रदान करनेसे प्रेत यमलोकमें कहींपर भी धूपसे नहीं जलते, वे सुखपूर्वक अपने पथमें चलते चले जाते हैं। जिसके उद्देश्यसे मनुष्य जो अन्न-दान देता है, उससे वह संतृप्त हो जाता है। यमलोकके महापथमें एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ घनघोर अन्धकार है, वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता, किंतु दीपदान देनेसे मनुष्य उस मार्गमें प्रकाशसे युक्त प्राणीके समान जाते हैं। आश्विन, कार्तिक तथा माघमास, मृत-तिथि और चतुर्दशी तिथिमें दिया गया दान सुखकारक होता है। जबतक वर्ष न पूरा हो जाय, तबतक प्रतिदिन प्रेतको ऊबड़-खाबड़ मार्गमें सुखपूर्वक गमन करानेकी इच्छासे लोगोंको दीपदान करना चाहिये। जो मनुष्य दीपदान करता है, वह स्वयं प्रकाशमय होकर संसारका

पूज्य हो जाता है। वह शुद्धात्मा अपने कुलमें द्योतित होता है और प्रकाशस्वरूपको प्राप्त करता है।

हे खगेश! देवालयमें पूर्वाभिमुख, ब्राह्मणके लिये उत्तराभिमुख तथा प्रेतके निमित्त दक्षिणाभिमुख होकर सुस्थिर दीपकका दान जलसे संकल्पपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें जो सभी प्रकारके उपहारोंसे युक्त तेरह पददान मृत व्यक्तिके लिये तथा जीवित दशामें अपने लिये करता है, वह महान् कष्टोंसे मुक्त होकर महापथकी यात्रा करता है। आसन, पात्र और भोजन जो ब्राह्मणको देता है, वह उसीके पुण्यसे सुखपूर्वक खाता-पीता हुआ महापथको पार करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्यासा प्रेत जल प्राप्त करता है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये एकादशाहको पात्र, वस्त्र, पुष्प तथा अँगूठीका दान देना चाहिये। इसी प्रकार प्रेतका शुभेच्छु बनकर जो पुत्र यथाशक्ति तेरह पदोंका दान करता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। भोजन, तिल, जलपूर्ण तेरह घट, अँगूठी तथा उत्तरीय एवं अधोवस्त्रका जो दान देता है, उस दानके पुण्यसे प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है।

जो अश्व, नौका अथवा हाथीका दान ब्राह्मणको देता है वह उसी देय वस्तुकी महिमाके अनुसार उन-उन सुखोंको प्राप्त करता है। जो मनुष्य भैंसका दान देता है, वह नाना प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। यमदूतोंके हर्षवर्धनके लिये ताम्बूल और पुष्पका दान देना चाहिये, इससे संतुष्ट होकर वे दूत उस प्रेतको कष्ट नहीं देते।

प्राणीको यथाशक्ति गौ, भूमि, तिल तथा स्वर्णका दान अवश्य करना चाहिये, ऐसा मनीषियोंने कहा है। जो व्यक्ति मृत प्राणीके लिये जलसे परिपूर्ण मिट्टीका पात्र दान करता है, उसे हजार जलपूर्ण पात्रके दानका फल प्राप्त होता है। यमराजके दूत महाक्रोधी, महाभयंकर आकृतिवाले, काले तथा पीले वर्णके हैं; वे वस्त्र-दान किये जानेपर मृत प्राणीको यमलोकमें कष्ट नहीं देते। तृषा और श्रमसे पीड़ित होकर महापथमें आगे बढ़ता हुआ प्रेत अन्न और जलसे पूर्ण घटका दान देनेसे निश्चित ही सुखी हो जाता है। दक्षिणा, अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र तथा विष्णुकी स्वर्ण-प्रतिमासे युक्त शय्याका दान भी ब्राह्मणको देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतयोनिका परित्यागकर प्राणी स्वर्गमें देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक निवास करता है।

हे तार्क्ष्य! यह अन्त्येष्टि-कर्ममें होनेवाला दान मैंने तुमसे कहा। मृत प्राणी अन्य शरीरमें कैसे प्रवेश करता है, अब मैं उसको कहूँगा।

'हे परंतप! मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है, इसलिये अपने-अपने धर्मके अनुसार मृत व्यक्तिका श्राद्धादिक कृत्य करना चाहिये। हे खगेश्वर! मरे हुए प्राणियोंके मुखमण्डलसे पहले जीवात्मा वायुका सूक्ष्म रूप धारण करके निकल जाता है। लोगोंके नेत्र आदि नौ द्वार, रोम तथा तालुरन्ध्रसे भी जीवात्मा बाहर हो जाता है; किंतु जो पापी हैं उनका जीवात्मा अपान-मार्गसे शरीर छोड़ता है'—

**जातस्य मृत्युलोके वै प्राणिनो मरणं ध्रुवम्।**
**मृतिः कुर्यात् स्वधर्मेण यास्यतश्च परंतप॥**
**पूर्वकाले मृतानां च प्राणिनां च खगेश्वर।**
**सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यास्यमण्डलात्॥**
**नवद्वारै रोमभिश्च जनानां तालुरन्ध्रके।**
**पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्॥**

(३१। २५—२७)

प्राणवायुके निकल जानेपर शरीर पृथ्वीपर वैसे ही गिर पड़ता है, जैसे वायुके थपेड़ोंसे आहत होकर निराधार वृक्ष भूमिपर गिर पड़ता है। मृत्युके बाद शरीरमें स्थित पृथ्वीतत्त्व पृथ्वीमें, जलतत्त्व

जलमें, तेजस्तत्त्व तेजमें, वायुतत्त्व वायुमें, आकाशतत्त्व आकाशमें तथा सर्वव्यापी आत्मतत्त्व शिवमें लीन हो जाता है।

हे तार्क्ष्य! काम-क्रोध तथा पञ्चेन्द्रियोंका समूह शरीरमें चोरके समान स्थित कहा गया है। देहमें काम-क्रोध तथा अहंकारसहित मन भी रहता है, वही सबका नायक है। पुण्य-पापसे संयुक्त होकर काल उसका संहारक बन जाता है। संसारमें भोगके लिये योग्य शरीरका निर्माण अपने कर्मके अनुसार होता है। मनुष्य अपने सत्कर्म और दुष्कर्मसे दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है। जिस प्रकार पुराने घरके जल जानेपर गृही नये घरमें जाकर शरण लेता है, उसी प्रकार यह जीव भी विषयोंके साथ पञ्चेन्द्रियोंसे युक्त नौ द्वारवाले एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें आश्रय ग्रहण करता है। शरीरमें विद्यमान धातुएँ माता-पितासे ही प्राप्त हैं, इन्हींसे निर्मित यह शरीर षाट्कौशिक* कहलाता है। हे गरुड! शरीरमें सभी प्रकारके वायु रहते हैं, मूत्र-पुरीष तथा उन्हींके योगसे उत्पन्न अन्यान्य व्याधियाँ रहती हैं। अस्थि, शुक्र तथा स्नायु शरीरके साथ ही जल जाते हैं।

हे पक्षिन्! सभी प्राणियोंके शरीरका विनाशक्रम यही है, इसे मैंने कह दिया। प्राणियोंका शरीर कैसा होता है, उसको अब मैं फिरसे कह रहा हूँ।

हे गरुड! पुरुषका शरीर छोटी-बड़ी नसोंसे बँधा हुआ एक स्तम्भ है, जिसको नीचेसे पैररूपी दो अन्य स्तम्भ धारण किये हैं। पञ्चेन्द्रियोंसहित उसमें नौ द्वार हैं। सांसारिक विषयोंसे युक्त एवं काम-क्रोधसे बेचैन जीव इसी शरीरमें रहता है। राग-द्वेषसे व्याप्त यह शरीर तृष्णाका दुस्तर दुर्ग है। नाना प्रकारके लोभोंसे भरे हुए जीवका यह शरीर पुर है। यही स्थिति सभी शरीरोंकी है। इसी शरीरमें सभी देवता और चौदहों लोक स्थित हैं। जो लोग अपनेको नहीं पहचानते, वे पशुके समान माने गये हैं।

हे पक्षिराज! इस प्रकार ऊपर बतायी गयी प्रक्रियासे निर्मित शरीरका वर्णन मैंने किया। सृष्टिमें चौरासी लाख योनियाँ बतायी गयी हैं, जो उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—इन चार मुख्य भागोंमें विभक्त हैं। (अध्याय ३१)

## शुक्र-शोणितके संयोगसे जीवका प्रादुर्भाव, गर्भमें जीवका स्वरूप तथा उसकी वृद्धिका क्रम, शरीरके निर्माणमें पञ्चतत्त्वादिका अवदान, षाट्कौशिक शरीर, गर्भसे जीवके बाहर निकलनेपर विष्णुमायाद्वारा मोहित होना, आतुर व्यक्तिके लिये क्रियमाण कर्म तथा उनका फल, पिण्ड और ब्रह्माण्डकी समान स्थिति

**तार्क्ष्यने कहा**—हे प्रभो! उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, तथा जरायुज—ये चार प्रकारके प्राणी किस प्रकार उत्पन्न होते हैं? त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा और अस्थिमें जीव कैसे आता है? दो पैर, दो हाथ, गुह्यभाग, जिह्वा, केश, नख, सिर, संधिमार्ग तथा नाना प्रकारकी बहुत-सी रेखाओंकी उत्पत्ति कैसे होती है? काम, क्रोध, भय, लज्जा, हर्ष, सुख और दुःखका भाव मनमें कैसे आता है?

* त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा तथा अस्थि—इन षट् धातुओंसे निर्मित शरीर 'षाट्कौशिक' कहलाता है।

इस शरीरका चित्रण, छिद्रण और विभिन्न प्रकारकी नसोंसे वेष्टन कैसे हुआ है? हे हृषीकेश! इस असार भवसागरमें शारीरिक रचनाको मैं इन्द्रजाल ही मानता हूँ। हे स्वामिन्! नाना दुःखोंसे भरे हुए इस असार सागररूप संसारका कर्ता कौन है?

**श्रीविष्णुने कहा**—हे गरुड! कोशके निर्माणकी परम गोपनीय प्रक्रियाको मैं कहता हूँ, इसके जाननेमात्रसे व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है। हे वैनतेय! संसारके प्रति दया करते हुए तुमने जीवके कारण-तत्त्वपर अच्छा प्रश्न किया है। एकाग्रचित्त होकर तुम उसे सुनो।

स्त्रियाँ ऋतुकालमें चार दिन त्याज्य होती हैं, क्योंकि प्राचीन कालमें ब्रह्माने वृत्रासुरके मारे जानेपर लगी हुई ब्रह्महत्याको इन्द्रके शरीरसे निकालकर एक चौथाई भाग स्त्रियोंको दे दिया था, उसीके कारण स्त्रियाँ ऋतुकालके आरम्भमें चार दिन अपवित्र मानी जाती हैं और उस समयतक इनका मुख नहीं देखना चाहिये, जबतक वह पाप उनके शरीरमें विद्यमान रहता है। स्त्रीको ऋतुकालके पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी मानना चाहिये। चौथे दिन वह शुद्ध होती है। एक सप्ताहमें वह देवता और पितरोंके पूजनयोग्य हो जाती है। प्रथम सप्ताहके बीच जो गर्भ स्त्रीमें रुक जाता है, उसकी उत्पत्ति मलिम्लुच्से माननी चाहिये। वीर्यस्थापनके समय माता-पिताके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, वैसे ही गर्भका जन्म होगा, इसमें संदेह नहीं है।

युग्म तिथिवाली रात्रियोंमें सहवास करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें सहवास करनेसे कन्याका जन्म होता है। अतः ऋतुकालके पहले सप्ताहको छोड़कर दूसरे सप्ताहकी युग्म तिथियोंमें सहवासमें प्रवृत्त होना चाहिये। सामान्यतः स्त्रियोंका ऋतुकाल सोलह रात्रियोंका होता है। यदि चौदहवीं रात्रिमें गर्भाधानकी क्रिया होती है तो उस गर्भसे गुणवान्, भाग्यवान्, धनवान् तथा धर्मनिष्ठ पुत्रका जन्म होता है। हे पक्षिराज! वह रात्रि सामान्य लोगोंको प्राप्त होना सम्भव नहीं है। प्रायः स्त्रीमें गर्भोत्पत्ति आठवीं रात्रियोंके मध्यमें ही हो जाती है। ऋतुकालके पाँचवें दिन स्त्रियोंको कटु, क्षार, तीक्ष्ण और उष्ण भोजनका परित्याग करके मधुर भोजन करना चाहिये; क्योंकि उनकी कोख औषधिपात्र है और पुरुषका बीज अमृततुल्य है। उसमें (स्त्रीरूप औषधिपात्रमें) बीज वपन करके मनुष्य सम्यक् फल प्राप्त कर सकता है, इसलिये उसको क्रोधादिकी ज्वालासे बचाकर मधुर भोजन तथा मृदु स्वभावकी शीतलतासे अभिसिंचित करना चाहिये। पुरुषको चाहिये कि वह पहले ताम्बूल और पुष्पोंकी माला तथा चन्दनसे सुवासित होकर स्वच्छ एवं सुन्दर वस्त्र धारण करे। तदनन्तर शुद्ध मनसे स्त्रीकी शय्यापर शयन करनेके लिये जाय। वीर्य-वपनके समय उसके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, उसी स्वभाववाली संतान जन्म लेगी। प्रारम्भमें शुक्र और रक्तके संयोगसे जीव पिण्डरूपमें अस्तित्वको प्राप्त करता है और गर्भमें वह उसी प्रकार बढ़ता है, जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमाकी अभिवृद्धि होती है।

शुक्रमें चैतन्य बीजरूपसे स्थित रहता है। जब काम चित्त तथा शुक्र ऐक्यभावको प्राप्त हों, उस समय स्त्रीके गर्भाशयमें जीव एक निश्चित रूप धारण करनेकी पूर्वावस्थामें आता है। रक्ताधिक्य होनेपर कन्या और शुक्राधिक्य होनेपर पुत्र होता है। जब रक्त तथा शुक्र समान होते हैं तो गर्भमें स्थित संतानें नपुंसक होती हैं। शुक्र तथा शोणित पहले दिन और रातमें कलल, पाँचवें दिन बुद्‌बुद तथा चौदहवें दिन मांस-रूपमें हो जाता है। उसके बाद वह घनीभूत मांस गर्भमें रहता हुआ क्रमशः

बीसवें दिनतक पिण्डरूपमें बढ़ता है। तदनन्तर पचीसवें दिन उसमें शक्ति और पुष्टताका संचार होने लगता है। एक मास पूरा होते ही वह पञ्चतत्त्वोंसे युक्त हो जाता है। तत्पश्चात् उस गर्भस्थ जीवके शरीरपर दूसरे मासमें त्वचा और मेदा, तीसरे मासमें मज्जा तथा अस्थि, चौथे मासमें केश एवं अँगुली, पाँचवें मासमें कान, नाक तथा वक्ष:स्थलका निर्माण होता है। उसके बाद छठे मासमें कण्ठ, रन्ध्र और उदर, सातवें मासमें गुह्यादि भाग तथा आठवें मासमें वह सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पूर्ण हो जाता है। आठवें मासमें ही वह जीव माताके गर्भमें बार-बार चलने लगता है और नवें मासमें उस गर्भस्थ शिशुका ओजगुण परिपक्व हो जाता है। उसके बाद गर्भवासका काल बीतनेपर वह गर्भस्थ शिशु गर्भसे निकलना चाहता है। वह चाहे कन्या हो, चाहे पुत्र, चाहे नपुंसक हो, फिर उसका जन्म होता है।

इस प्रकार जन्म, पुष्टि तथा संहार— इन तीनोंकी शक्तिसे युक्त षट्कोशोंके भीतर विद्यमान पाँच इन्द्रिय, दस नाड़ी, दस प्राण और दस गुणसे समन्वित शरीरको जो जान लेता है, वही योगी है। जीवका पाञ्चभौतिक शरीर मज्जा, अस्थि, शुक्र, मांस, रोम तथा रक्त— इन छ: कोशोंसे निर्मित पिण्ड एक है। नवें या दसवें मासमें इसका पाञ्चभौतिक स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। प्रसवकालीन वायुसे आकृष्ट, तात्कालिक पीड़ासे बेचैन, माताकी सुषुम्णा नाड़ीके द्वारा दी जा रही शक्तिसे पुष्ट वह जीव गर्भसे निकलनेका यथाशीघ्र प्रयास करता है। पृथ्वी, जल, हवि, भोक्ता, वायु तथा आकाश— इन छ: भूतोंसे पीड़ित होता हुआ जीव स्नायु-तन्त्रिकाओंसे आबद्ध रहता है। इन्हींको विद्वानोंने मूलभूत तत्त्व कहा है, ये शरीरमें फैली हुई सात नाड़ियोंके बीचमें रहते हैं। त्वचा, अस्थि, नाड़ी, रोम और मांस— ये पाँच पृथ्वीतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं।

हे काश्यप! इसी प्रकार लार, मूत्र, शुक्र, मज्जा तथा रक्त— ये पाँच जलतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। हे तार्क्ष्य! क्षुधा, तृषा, निद्रा, आलस्य एवं कान्ति— ये पाँच तेजस्तत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। ऐसे ही राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह— ये पाँच वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। आकुञ्चन, धावन, लंघन, प्रसारण तथा निरोध— ये भी पाँचों वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें ही पाये जाते हैं। हे गरुड! शब्द, चिन्ता, गाम्भीर्य, श्रवण और सत्यसंक्रम (सत्य और असत्यका विवेक)— ये पाँच आकाशतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं, ऐसा तुम्हें जानना चाहिये।

श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा तथा नाक— ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जबकि हाथ, पैर, गुदा, वाणी और गुह्य— ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू तथा शंखिनी— ये दस नाड़ियाँ मानी गयी हैं। यही प्रधान दस नाड़ियाँ पिण्ड (शरीर)-के मध्य स्थित रहती हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय नामके दस वायु प्राणियोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। केवल खाया गया अन्न ही देहधारियोंके शरीरको पुष्ट करता है और इस खाये गये अन्नको प्राणवायु ही शरीरमें तथा उसकी सभी संधियोंमें पहुँचाता है। भोजनके रूपमें ग्रहण किया गया आहार वायुके द्वारा दो रूपोंमें विभक्त किया जाता है। इसके अनन्तर यह प्राणवायु ही गुदाभागमें प्रविष्ट होकर अन्न और जलको पृथक्-पृथक् कर देता है तथा यही प्राणवायु अग्निके ऊपर जलको एवं जलके ऊपर अन्नको पहुँचाकर स्वयं अग्निके नीचे रहते हुए अग्निको धीरे-धीरे उद्दीप्त करता है। तत्पश्चात्

वायुसे उद्दीप्त किया हुआ अग्नि अन्नके रसभागको अलग और शुष्कभागको अलग कर देता है। यही शुष्कभाग बारह प्रकारके मलोंके रूपमें शरीरसे बाहर आता है। शरीरमें विद्यमान कान, नेत्र, नाक, जिह्वा, दाँत, नाभि, गुदा तथा नख—ये सब मलके आश्रय हैं। ऐसे ही विष्ठा, मूत्र, शुक्र एवं शोणित-रूपसे ये मल अनन्त प्रकारके हैं।

हे विनतासुत! मनुष्यके शरीरमें सामान्यतः साढ़े तीन करोड़ रोम और बत्तीस दाँत होते हैं। सिरमें बालोंकी संख्या सात लाख तथा नख बीस हैं। हे तार्क्ष्य! पुराने लोगोंने सामान्य रूपसे शरीरमें एक हजार पल मांस, सौ पल रक्त, दस पल मेदा, दस पल त्वचा, बारह पल मज्जा, तीन पल महारक्त, दो कुडव (अन्नकी एक माप जो बारह मुट्ठीके बराबर होती है) शुक्र तथा एक कुडव संतानोत्पत्तिके लिये उपयोगी स्त्रीके विद्यमान शोणित (रज)-को माना है। इसी प्रकार मानव-शरीरमें छः प्रकारके कफ, छः प्रकारकी विष्ठा, छः प्रकारके मूत्र और तीन सौ साठसे अधिक अस्थियाँ होती हैं। इस प्रकार पिण्ड (शरीर)-के विषयमें बताया गया। इसे ही शरीरका वैभव कहते हैं। इन सबके अतिरिक्त शरीरमें कुछ नहीं है।

कर्मानुसार ही मनुष्यको सुख-दुःख, भय तथा कल्याण प्राप्त होता है। कर्मका अनुष्ठान शरीरके द्वारा ही सम्भव होनेसे शरीरका महत्त्व है। इस शरीरके द्वारा ही जीव उत्तम-से-उत्तम अथवा अधम-से-अधम गति प्राप्त करता है। इसलिये शरीरकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया यहाँ बतायी जा रही है—वायु जीवको गर्भसे बाहर करता है। उस समय उसके दोनों पैर ऊपर और मुख नीचेकी ओर रहता है। ऐसा जीव पहले तो यथाक्रम माँके गर्भमें रहकर ही धीरे-धीरे बढ़ता है। माताके द्वारा ग्रहण किये गये अन्न, फल, दूध, घृत और जलके आहारसे उस जीवके शरीरकी हड्डियाँ पुष्ट होती हैं तथा वह जीवित रहता है। उस जीवके नाभिप्रान्तसे शक्तिवर्धिनी नाड़ी जुड़ी रहती है, जिसको आप्यायनी कहा जाता है। उसका सम्बन्ध स्त्रियोंके आँत-छिद्रसे होता है। उनके द्वारा खाया-पिया गया पदार्थ गर्भमें स्थित प्राणीके पेटमें आप्यायनी नाड़ीके द्वारा पहुँचता है। माँके द्वारा भुक्त पदार्थोंसे पुष्ट देहवाला होकर वह जीव प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी वृद्धिक्रममें संसारकी पूर्वानुभूत अनेक विषयोंकी स्मृतियाँ उसे होती हैं और इन्हीं स्मृतियोंके कारण दुःखित वह प्राणी खिन्न हो जाता है तथा अनेक प्रकारकी पीड़ाका अनुभव कर इधर-उधर गतिमान् होता है एवं 'गर्भसे निकल करके मैं पुनः ऐसा कुछ नहीं करूँगा जिससे मुझे पुनः गर्भकी प्राप्ति हो'—यह सोचकर जीव अपने उन सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण करता है, जिनमें उसको सांसारिक, देवयोनियों और मृत्युलोककी नाना योनियोंके सुख-दुःखका अनुभव प्राप्त हुआ था। उसके बाद समयानुसार वह प्राणी अधोमुख होकर नवें या दसवें मासमें गर्भसे बाहर आता है।

प्राजापत्य वायुके प्रभावसे गर्भ छोड़कर बाहर निकलता हुआ वह जीव दुःखी होता है। उस समय दुःखसे पीड़ित वह प्राणी विलाप करता हुआ बाहर निकलता है। उदरसे बाहर होते हुए उस जीवको असह्य कष्ट देनेवाली मूर्च्छा आ जाती है, किंतु कुछ ही क्षणमें वह जीव पुनः चेतनामें आ जाता है। वायुके स्पर्शसे उसको सुखानुभूति होती है। तत्पश्चात् संसारको मोहित करनेवाली विष्णुकी माया उसके ऊपर अपना प्रभाव जमा लेती है। उस मायाशक्तिसे विमोहित जीवात्माका पूर्व ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट होनेके बाद वह जीव बालभावको प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे कौमार्य, यौवन और वृद्धावस्था भी प्राप्त होती है। उसके

बाद मनुष्य पुनः उसी प्रकार मरता है और जन्म लेता है। इस संसार-चक्रमें वह घड़ा बनानेवाले चक्रयन्त्रके समान घूमता रहता है। प्राणी कभी स्वर्ग प्राप्त करता है और कभी नरकमें जाता है।

स्वर्ग तथा नरक मनुष्यको अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वर्ग और नरकमें कर्मफलका भोग करके प्राणी कभी थोड़ेसे शेष पाप-पुण्यका भोग करनेके लिये पृथ्वीपर आ जाता है। जो स्वर्गमें निवास करते हैं, उन लोगोंको यह दिखायी देता है कि नरकलोकोंमें प्राणियोंको बहुत दुःख है। यहाँपर यमराजके दूतोंसे प्रताड़ित वे नरकवासी कभी प्रसन्न नहीं होते हैं, उन्हें तो दुःख-ही-दुःख झेलना पड़ता है। जबसे मनुष्य विमानमें चढ़कर ऊपरकी ओर प्रस्थान करता है तभीसे उसके मनमें यह भाव स्थान बना लेता है कि पुण्यके समाप्त होनेपर मैं स्वर्गसे नीचे आ जाऊँगा। इसलिये स्वर्गमें भी बहुत दुःख है। नरकवासियोंको देख करके जीवको महान् दुःख होता है; क्योंकि मेरी भी इसी प्रकारकी गति होगी—इस चिन्तासे वह रात-दिन मुक्त ही नहीं होता है। गर्भवासमें प्राणीको योनिजन्य बहुत कष्ट होते हैं। योनिसे पैदा होते समय उसे महान् दुःख होता है। उत्पन्न होनेके बाद बालपनमें भी उसे दुःख है और वृद्धावस्थामें भी दुःख है। काम, क्रोध तथा ईर्ष्याका सम्बन्ध होनेसे युवावस्थामें भी उसके लिये असहनीय दुःख है। दुःस्वप्न, वृद्धावस्थामें तथा मरणके समय भी उत्कट दुःख उसे होता है। यमदूतोंके द्वारा खींचकर नरकमें भी ले जाये जा रहे जीवको अधोगति प्राप्त होती है। उसके बाद फिर जीवका गर्भसे जन्म होता है और मृत्यु होती है। ऐसे संसार-चक्रमें प्राणी कुम्भकारके चक्रके समान घूमते रहते हैं। पूर्वजन्ममें किये गये पुण्य-पापसे बँधे जीव बार-बार इसी संसारके आवागमनका दुःख भोगते हैं।

हे पक्षिन्! सैकड़ों प्रकारके दुःखसे व्याप्त इस संसारक्षेत्रमें रञ्चमात्र भी सुख नहीं है। हे विनतासुत! इसलिये मनुष्योंको मुक्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। जीवकी जैसी स्थिति गर्भमें होती है, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब मैं पूर्वक्रमसे पूछे गये प्रश्नका ही उत्तर दूँ या इसी अन्तरालमें कुछ अन्य प्रश्न करनेकी तुम्हारी इच्छा है?

**गरुडने कहा**—हे देवेश! पूछे गये प्रश्नोंमेंसे दो महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर तो मुझे प्राप्त हो गये हैं, अब मुझे तीसरे प्रश्नका उत्तर प्रदान करनेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षीन्द्र! मरणासन्न प्राणीके लिये क्या करना चाहिये? यह तुमने प्रश्न किया है? उसका उत्तर सुनो! मैं संक्षेपमें उसे कह रहा हूँ।

मृत्युको संनिकट जानकर मनुष्यको सबसे पहले गोमूत्र, गोमय, तीर्थोदक और कुशोदकसे स्नान कराये। तदनन्तर स्वच्छ एवं पवित्र वस्त्र पहना दे और गोमयसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुशोंका एवं तिलका आस्तरण करके सुला दे। सुलाते समय उस मरणासन्न प्राणीके सिरको पूर्व अथवा उत्तरकी ओर करके उसके मुखमें सोनेका टुकड़ा डाले। हे खगेश! उसीके संनिकट भगवान् शालग्रामकी मूर्ति और तुलसीका वृक्ष लाकर रख दे। तत्पश्चात् वहींपर घीका एक दीपक जलाये और '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस मन्त्रका जप करे? पूजा-दान तथा नाम-स्मरण आदिमें मन्त्रसे '**ॐ**'का योग करे। पुष्प-धूपादिसे भली प्रकार हृषीकेश विष्णुदेवकी पूजा करे। तदनन्तर विनम्रभावसे स्तुति-पाठ करते हुए उनका ध्यान करे। उसके बाद ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देकर, भगवान् विष्णुके चरणोंको हृदयमें स्थान देते हुए पुत्र, मित्र, स्त्री, खेती-बारी तथा

धन-धान्यादिके प्रति अपनी ममताका परित्याग कर दे। उस समय जीवको बहुत ही कष्ट होता है। उसके निवारणके लिये पुत्रादि सभी परिजनोंको मरणासन्न प्राणीके कल्याण-हेतु ऊँचे स्वरमें 'पुरुषसूक्त'का पाठ करना चाहिये।

हे गरुड! मृत्युके आ जानेपर जो कर्म करना चाहिये, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब इस समस्त कर्मका फल क्या है? उसको मैं संक्षेपमें कहता हूँ, तुम सुनो।

हे पक्षिराज! स्नान करनेसे प्राणीको स्वच्छता प्राप्त होती है। उससे शरीरकी अपवित्रता दूर होती है। उसके बाद भगवान् विष्णुका स्मरण होता है और उनका स्मरण सभी प्रकारके उत्तम फल प्रदान करता है। कुश और कपास आतुर प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। तिल तथा कुश जलमें डालकर मरणासन्न व्यक्तिको कराया गया स्नान यज्ञमें किये गये अवभृथ-स्नानके समान होता है। ऐसे ही गोमयसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसपर तिल, कुश आदि डालकर यदि मरणासन्न व्यक्तिको सुलाया जाय तो विष्णु आदि देव प्रसन्न होते हैं; क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी और अग्निदेव मण्डलमें रहते हैं। इसीलिये मरणासन्न व्यक्तिको जिस भूमिपर शयन कराना है, वहाँपर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। हे खगेश! पूर्व अथवा उत्तरकी ओर यदि मरणासन्न व्यक्तिका सिर कर दिया जाय, यदि उसके पाप कम हों तो इतनेमात्रसे उसे उत्तम लोक प्राप्त हो सकते हैं। आतुर व्यक्तिके मुखमें पञ्चरत्न डालनेपर उसमें ज्ञानका उदय होता है। हे पक्षिन्! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु और एकादशीव्रत—ये पाँच संसार-सागरमें डूबते हुए मनुष्योंके लिये नौकाके समान हैं।* विष्णु, एकादशी, गीता, तुलसी, ब्राह्मण एवं गौ—यह षट्पदी इस असार और जटिल संसारमें प्राणीको भक्ति प्रदान कराती है। '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस प्रकार भगवान् विष्णुके मन्त्रका जप करता हुआ मनुष्य निस्संदेह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है। पूजा करनेसे भी मेरे (भगवान् विष्णु) लोककी प्राप्ति होती है, मेरी पूजा करनेवाला साक्षात् स्वर्गलोकको जाता है। हे काश्यप! 'पुरुषसूक्त'के पाठसे अपने परिजनोंके व्यामोहमें फँसा हुआ प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। परलोक-प्राप्तिके जितने साधन बताये गये हैं, उनमें जिन साधनोंकी अधिकता होगी, उन्हींका फल मनुष्यको अधिकाधिक प्राप्त होगा। यथाशक्ति ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देना चाहिये ऐसा करनेसे वह सदैव प्रसन्न रहता है।

हे साधो! स्नानादि करनेपर मनुष्यको प्राप्त होनेवाले समस्त फलोंका विवरण यही है, इसको मैंने कह दिया। अब इस ब्रह्माण्डमें जो गुण विद्यमान हैं, उन्हें तुम सुनो! वे सब तुम्हारे शरीरमें भी हैं। पाताल, पर्वत, लोक, द्वीप, सागर, सूर्यादि सभी ग्रह तुम्हारे शरीरमें ही स्थित हैं। यथा—पैरके नीचे तललोक, पैरके ऊपर वितललोक, दोनों जानुओंमें सुतललोक और सक्थि-प्रदेशमें महातल नामक लोक समझने चाहिये। वैसे ही ऊरु-भागमें तलातललोक तथा गुह्य-स्थानमें रसातललोक स्थित है। ऐसे ही प्राणीके कटिप्रदेशमें पाताललोककी स्थिति समझे। नाभिके मध्यमें भूर्लोक, उसके ऊपर भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्गलोक, कण्ठदेशमें महर्लोक, मुखमें जनलोक, मस्तकमें तपोलोक एवं

* पञ्चरत्ने मुखे मुक्ते जीवे ज्ञानं प्ररोहति। तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥
पञ्चप्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां नृणाम्। विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी भक्तिदायिनी। नमो भगवते वासुदेवायेति जपेन्नरः॥ (३२।९९—१०१)

महारन्ध्रमें सत्यलोक है। इस प्रकार मनुष्यके इसी शरीरमें चौदह भुवन विद्यमान हैं।

शरीरके त्रिकोणमें मेरु, अधःकोणमें मन्दर, दक्षिणमें कैलास, वामभागमें हिमालय, ऊर्ध्वभागमें निषध, दक्षिणमें गन्धमादन और वामरेखामें मलय—इन सात कुल पर्वतोंकी स्थिति है। इस देहके अस्थिभागमें जम्बूद्वीप, मज्जामें शाकद्वीप, मांसमें कुशद्वीप, शिराओंमें क्रौञ्चद्वीप, त्वचामें शाल्मलिद्वीप, रोम-समूहमें प्लक्षद्वीप और नखोंमें पुष्कर नामका द्वीप है। उसके बाद शरीरमें सागरोंका स्थान है। जैसे मूत्रमें क्षारोदसागर, शरीरके क्षारतत्त्वमें क्षीरसागर, श्लेष्मामें सुरोदधिसागर, मज्जामें घृतसागर, रसमें रसोदधिसागर, रक्तमें दधिसागर, काकुमें लटकते हुए मांसलभागमें स्वादूदक-सागर तथा शुक्रमें गर्भोदकसागर है। नादचक्रमें सूर्य, बिन्दुचक्रमें चन्द्रमा, नेत्रमें मंगल, हृदयमें बुध, विष्णुस्थानमें गुरु, शुक्रमें शुक्र, नाभिस्थानमें शनि, मुखमें राहु और पायुमें केतुको माना गया है। इस प्रकार शरीरमें ग्रहमण्डलकी स्थिति है।

मनुष्यका आपादमस्तक—सम्पूर्ण शरीर इसी सृष्टिके रूपमें विभक्त है। जो लोग इस संसारमें उत्पन्न होते हैं, वे मृत्युको निश्चित ही प्राप्त होते हैं। भूख, प्यास, क्रोध, दाह, मूर्च्छा, बिच्छूके डंक तथा सर्पके दंशसे उत्पन्न कष्ट सब इसी शरीरमें हैं। समयके पूरा हो जानेपर सभी प्राणियोंका विनाश निश्चित है। यमलोकमें गये हुए जीवके आगे-आगे वही लोग दौड़ते हैं, जो पापी हैं, अधम हैं और दया-धर्मसे दूर हैं। यमदूत उनके बाल पकड़कर घसीटते हुए अत्यन्त संतप्त मरुस्थल तथा दहकते हुए अंगारोंके बीचसे ले जाते हैं। अत्यन्त दुःखसे कातर इन पापियोंको यमलोककी एक झोपड़ीमें तबतक रहना पड़ता है, जबतक पुनर्जन्म नहीं होता है।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार जीव कर्मानुसार जन्म लेता है और मृत्युको प्राप्त होता है। इस संसारमें जो उत्पन्न हुए हैं, वे अवश्य ही मरेंगे—इसमें संदेह नहीं है। 'आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँचों गर्भमें प्राणीके रहनेके समय ही निश्चित हो जाते हैं'—

**आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥**
**पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।**

(३२।१२५-१२६)

जीव कर्मसे ही जन्म लेता है और विनष्ट होता है। सुख-दुःख, भय एवं कल्याण कर्मसे ही प्राप्त होते हैं। नीचेकी ओर मुख तथा ऊपरकी ओर पैर किये हुए प्राणीको गर्भसे वायु ही खींचकर बाहर लाता है। जन्म लेते ही उस देहधारीको सद्यः विष्णुकी माया सम्मोहित कर लेती है। अपने द्वारा किये गये पाप-पुण्यसे सम्बन्धित योनिमें जीवको जन्म प्राप्त होता है।

हे खगेश्वर! उत्तम प्रकृतिवाला व्यक्ति अपने सुकृतसे अच्छे भोग भोगता है, उसका जन्म भी सत्कुलमें होता है। किंतु जैसे-जैसे उसके द्वारा दुष्कृत होता है, वैसे-ही-वैसे उसका जन्म भी नीच कुलमें होने लगता है। वह उसी दुष्कर्मसे दरिद्र, रोगी, मूर्ख और अन्यान्य दुःखोंका पात्र बन जाता है। (अध्याय ३२)

## यमलोक, यममार्ग, यमराजके भवन तथा चित्रगुप्तके भवनका वर्णन, यमदूतोंद्वारा पापियोंको पीड़ित करना

**गरुडने कहा**—हे तात! आपने अपने इस पुत्रको जीवकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण लक्षण बता दिया, किंतु सचराचर—इन तीनों लोकोंके बीच यमलोकका कितना परिमाण है? उसका विस्तार मुझे बतायें। उसके मार्गकी कितनी दूरी है? हे देव! किन पापोंके करनेसे अथवा किस शुभ कर्मके प्रभावसे मानवजाति वहाँ जाती है? विशेष रूपसे बतानेकी कृपा करें।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे पक्षिराज! प्रमाणतः

यमलोकका विस्तार छियासी हजार योजन है। मनुष्यलोकके बीचसे ही उस लोकका मार्ग है, जो धौकनीसे दहकाये गये ताँबेके समान प्रज्वलित और दुर्गम महापथ है। पापी तथा मूर्ख व्यक्ति वहाँ जाते हैं। अत्यन्त तेज, देखनेमें महाभयंकर लगनेवाले अनेक प्रकारके काँटे उस महापथमें हैं। उन्हीं काँटोंसे परिव्याप्त, ऊँची-नीची, अग्निके समान दहकती हुई उस महापथकी भूमि है। वहाँ वृक्षोंकी कोई छाया भी नहीं है, जहाँपर ऐसा मनुष्य रुक करके विश्राम कर सके। उस मार्गमें अन्नादिकी भी व्यवस्था नहीं है, जिसके द्वारा प्राणी अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके। वहाँ जल भी नहीं दिखायी देता है, जिससे उसकी प्यास बुझ जाती हो। भूख-प्याससे पीड़ित वह पापी उसी महापथमें चलता है। अत्यन्त दुर्गम उस यममार्गमें वह ठंडकसे काँपने लगता है। जिसका जितना और जिस प्रकारका पाप है, उसका उतना वैसा ही मार्ग है। अत्यन्त दीन-हीन-कृपण और मूर्ख तथा दुःखसे व्याप्त प्राणी उसी मार्गको पार करते हैं। आत्मकृत दोषोंसे बारम्बार संतप्त कुछ लोग वहाँके असह्य कष्टसे व्यथित होकर करुण चीत्कार करते हैं, कुछ लोग वहाँकी कुव्यवस्थाके प्रति विद्रोह कर देते हैं।

हे खगेश! उस कठोर मार्गको ऐसा ही जानना चाहिये। जो लोग इस संसारके प्रति किसी प्रकारकी तृष्णा नहीं रखते हैं, वे उस मार्गपर सुखपूर्वक जाते हैं। पृथ्वीपर मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका दान देता है, वे सभी वस्तुएँ यमलोक तथा उस महापथमें उसके सामने उपस्थित रहती हैं। जिस पापीको श्राद्ध और जलाञ्जलि नहीं प्राप्त होती है, वे पाप-कर्म करनेवाले क्षुद्र प्राणी वायु बनकर भटका करते हैं।

हे सुव्रत! मैंने इस प्रकारके उस रौद्र पथको तुम्हें बता दिया है। अब मैं पुनः यममार्गकी स्थिति बताऊँगा।

दक्षिण और नैर्ऋत दिशाके मध्यमें विवस्वत्पुत्र यमराजकी पुरी है। वह सम्पूर्ण नगर वज्रमय तथा दिव्य है। देवता और असुर भी उसका भेदन नहीं कर सकते हैं। वह चौकोर है, उसमें चार द्वार तथा सात चहारदीवारी एवं तोरण हैं। यमराज स्वयं अपने दूतोंके साथ उसीमें निवास करते हैं। प्रमाणतः उसका विस्तार एक हजार योजन है। सभी प्रकारके रत्नोंसे परिव्याप्त, चमकती हुई बिजली तथा सूर्यके तेजस्वी स्वरूपके समान वह पुरी दिव्य है। उस पुरीमें धर्मराजका जो भवन है, वह स्वर्णके समान कान्तिमान् है। उसका विस्तार पाँच सौ योजन ऊँचा है। हजार खंभोंवाले उस भवनको वैदूर्य मणियोंसे सुसज्जित किया गया है। उसके जालमार्ग अर्थात् गवाक्ष मुक्तामणियोंसे बने हैं। सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। घण्टोंकी सैकड़ों ध्वनियाँ उस भवनमें होती रहती हैं। उसमें सैकड़ों तोरणद्वार बनाये गये हैं। इसी प्रकारसे वह भवन अन्यान्य आभूषणोंसे विभूषित रहता है।

वहाँ दस योजनमें विस्तृत नीले मेघके समान शोभा-सम्पन्न, सम एवं शुभ आसनपर भगवान् धर्मराज स्थित रहते हैं। ये धर्मज्ञ, धर्मशील, धर्मयुक्त और कल्याणकारी हैं। ये ही पापियोंको भय देनेवाले तथा धार्मिकोंको सुख देनेवाले हैं। यहाँपर शीतल मन्द वायु बहती रहती है, अनेक प्रकारके उत्सव और व्याख्यान होते रहते हैं, सदैव शंख आदि माङ्गलिक वाद्योंकी ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। उन्हींके बीच धर्मराजका सम्पूर्ण समय बीतता है।

उस पुरके मध्यभागमें प्रवेश करनेपर चित्रगुप्तका

भवन पड़ता है, जिसका विस्तार पचीस योजन है। उसकी ऊँचाई दस योजन है। वह लोहेकी परिखाके द्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ एक महादिव्य भवन है। इसमें आने-जानेके लिये सैकड़ों गलियाँ हैं और सैकड़ों पताकाओंसे यह सुशोभित रहता है। सैकड़ों दीपक इस भवनमें प्रज्वलित रहते हैं। बंदीजनोंके द्वारा गाये-बजाये गीत और वाद्य-यन्त्रोंकी ध्वनियोंसे यह भवन गुञ्जायमान रहता है। चित्रगुप्तके इस भवनको सुन्दरतम चित्रोंसे सजाया गया है। इस भवनमें मुक्तामणियोंसे निर्मित, परम विस्मयकारी एक दिव्य आसन है, जिसके ऊपर बैठकर चित्रगुप्त मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियोंकी आयु-गणना करते हैं। किसीके पुण्य और पापके प्रति कभी उनमें मोह नहीं होता है। जिसने जबतक जो कुछ अर्जित किया है, वे उसको जानते हैं; वे अठारह दोषोंसे रहित जीवद्वारा किये गये कर्मको लिखते हैं।

चित्रगुप्तके भवनसे पूर्व ज्वरका बहुत बड़ा भवन है। उनके भवनसे दक्षिण शूल और लताविस्फोटकके भवन हैं। पश्चिममें कालपाश, अजीर्ण तथा अरुचिके भवन हैं। मध्य पीठके उत्तरमें विषूचिका, ईशानकोणमें शिरोऽर्त्ति, आग्नेयकोणमें मूकता, नैर्ऋत्यकोणमें अतिसार, वायव्यकोणमें दाहसंज्ञक रोगका घर है। चित्रगुप्त इन सभीसे नित्य परिवृत रहते हैं।

हे तार्क्ष्य! कोई भी प्राणी जो कुछ कर्म करता है, वह सब कुछ चित्रगुप्त लिखते हैं। धर्मराजके भवनके द्वारपर रात-दिन दूतगण उपस्थित रहते हैं। यमदूतोंके महापाशसे बँधे पापी और नीच व्यक्ति मुद्गरोंसे मार खाते हैं। वहाँ नाना प्रकारके पूर्वकृत पापकर्मोंसे युक्त मनुष्योंको विभिन्न धारदार अस्त्र-शस्त्रों तथा अनेक यन्त्रोंसे मारा जाता है। पापियोंको दहकते हुए अंगारोंके द्वारा घेर दिया जाता है। पूर्वकर्मोंके अनुसार लौह-पिण्डके समान वे उसीमें दग्ध किये जाते हैं। अन्य बहुत-से पापियोंको पृथ्वीपर पटक करके कुल्हाड़ेसे उन्हें काटा जाता है। पूर्वकर्मके फलानुसार वे चिल्लाते हुए दिखायी देते हैं। कुछ पापियोंको गुड़पाक और कुछको तैलपाकमें डालकर पकाया जाता है। इस प्रकार उन यमदूतोंसे पापियोंको अत्यधिक कष्ट भोगना पड़ता है। अन्य पापी उन अत्यन्त निर्दयी दूतोंसे बार-बार क्षमादानकी प्रार्थना करते हैं; पर यमदूत उनकी एक नहीं सुनते हैं।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार पापियोंके लिये कर्मानुसार बहुत-से नरक कहे गये हैं। (अध्याय ३३)

## इष्टापूर्तकर्मकी महिमा तथा और्ध्वदैहिक कृत्य, दस पिण्डदानसे आतिवाहिक शरीरके निर्माणकी प्रक्रिया, एकादशाहादि श्राद्धका विधान, शय्यादानकी महिमा एवं सपिण्डीकरण-श्राद्धका स्वरूप

**श्रीकृष्णने कहा—**हे गरुड! शास्त्रके अनुसार धर्म और अधर्मका जो लक्षण किया गया है, उसको तुम सुनो।

प्राणियोंके आगे-आगे उनका सत्कर्म और दुष्कर्म दौड़ता है। विद्वानोंने कृत (सत्य)-युगमें तप, त्रेतायुगमें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और दान तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी प्रशंसा की है। मनीषियोंने उत्तम प्रकृतिवाले गृहस्थजनोंके लिये इस धर्मको स्वीकार किया है कि वे यथाशक्ति इष्टापूर्तकर्म* करें, उसके करनेसे उन्हें पातक नहीं

* तालाब, कुआँ आदि खुदवाना तथा देवालय, औषधालय आदि बनवाना 'इष्टापूर्तकर्म' है।

होता। जो मनुष्य वृक्षारोपण करता है, गुफा, कुआँ और जलाशय खुदवाता है, उसको यममार्गमें चलते समय अत्यधिक सुखकी प्राप्ति होती है। जो लोग ठंडकसे पीड़ित ब्राह्मणको तापनेके लिये अग्नि प्रदान करते हैं, वे सभी कामनाओंको पूर्ण करके अतिशीतल यमलोकके मार्गमें अग्नि तापते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। जिस मनुष्यने पृथ्वीका दान दिया है, उसने मानो स्वर्ण, मणि-मुक्तादि बहुमूल्य रत्न, वस्त्र और आभूषणादिका सम्पूर्ण दान दे दिया। इस पृथ्वीपर मानव जो कुछ दानमें देते हैं, वे सब दिये गये पदार्थ यमलोकके महापथमें उनके समीप उपस्थित रहते हैं। पुत्र विधिपूर्वक अपने मृत पिताके लिये नाना प्रकारके जिन सुन्दर भोज्य-पदार्थोंका दान देता है, वे सभी पिताको प्राप्त होते हैं।

आत्मा (शरीर) ही पुत्रके रूपमें प्रकट होता है। वह पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। घोर नरकसे पिताका उद्धार वही करता है, इसलिये उसको पुत्र कहा जाता है। अतः पुत्रको पिताके लिये आजीवन श्राद्ध करना चाहिये, तभी वह अतिवाहात्मक प्रेतरूप पिता पुत्रद्वारा दानमें दिये गये पदार्थोंके भोगोंसे सुख प्राप्त करता है। दग्ध हुए प्रेतके निमित्त परिजनोंके द्वारा जो जलाञ्जलि दी जाती है, उससे प्रसन्न होकर वह प्रेत यमलोकमें जाता है। प्रेतकी संतृप्तिके लिये तीन दिनतक रात्रिमें एक चौराहेपर रस्सी बाँधकर तीन लकड़ियोंके द्वारा बनायी गयी तिगोड़ियाके ऊपर कच्ची मिट्टीके पात्रमें दूध भरकर रखना चाहिये। हे पक्षिन्! वायुभूत वह प्रेत मृत्युके दिनसे लेकर तीन दिनतक आकाशमें स्थित उस दूधका पान करता है। दाहसे चौथे दिन अस्थि-संचयका कार्य करना चाहिये[1]। उसके बाद जलाञ्जलि प्रदान करे, किंतु इन जलाञ्जलियोंको पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण तथा उनकी संधिकालोंमें न दे, बल्कि दिनके प्रथम प्रहरके बीत जानेपर दे। नदीमें पुत्रके द्वारा जलाञ्जलि दिये जानेके पश्चात् सभी सगोत्री, हितैषी और बन्धु-बान्धव-स्वजातियों तथा परजातियोंके साथ जलदान करें। किसी भी कारण शीघ्रतावश मुख्य अधिकारी पुत्रके जलाञ्जलि देनेके पूर्व ही जलाञ्जलि नहीं देनी चाहिये। जब स्त्रियाँ श्मशानभूमिसे वापस हो जायँ तभी लोकाचार किया जाय।

शूद्रकी मृत्यु हो जानेपर जो ब्राह्मण उसकी चिताके लिये लकड़ी लेकर जाता है अथवा उसके पीछे-पीछे चलता है, वह तीन रात्रियोंतक अशुद्ध रहता है। तीन रात्रियोंके पश्चात् समुद्रमें मिलनेवाली गङ्गा आदि पवित्र नदीके तटपर पहुँचकर वह स्नान करे। तदनन्तर सौ प्राणायाम करके गोघृतका प्राशन करे, तब उसकी शुद्धि होती है। शूद्र सभी वर्णोंके शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है, वैश्य तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य)-के शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है, क्षत्रिय दो वर्णों (ब्राह्मण और क्षत्रिय)-के शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है और ब्राह्मण केवल अपने ही वर्णके शवका अनुगमन कर उसे जलाञ्जलि दे सकता है।[2] हे काश्यप! जलाञ्जलि देनेके पश्चात् दन्तधावन करना

१-अस्थि-संचयनके विषयमें संवर्त-वचनके अनुसार—

(क) प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह॥

(ख) अपरेद्युस्तृतीये वा दाहानन्तरमेव वा।

प्रथम दिन, तृतीय, सप्तम अथवा नवम दिन या दाहके पश्चात् ही चिताको जलसे शान्त करके अपने गोत्रवालोंके साथ अस्थि-संचयन करना चाहिये।

२-इसका तात्पर्य यह है कि इस व्यवस्थाके अनुसार शवका अनुगमन करनेमें किसी विशेष प्रकारकी अशुचिता एवं उसकी शुद्धिके लिये किसी विशेष प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं होती। किसी तरहके आपत्कालमें अथवा लोकसंग्रहकी दृष्टिसे या अन्य किसी सहायकके अनुपलब्ध होनेपर जिस किसी भी जातिके शवकी अन्त्येष्टिके लिये यथोचित सहयोग सबको ही करना चाहिये और ऐसा करनेपर शास्त्रीय व्यवस्थाके अनुसार अशुचिताके निराकरणके लिये यथाविधान प्रायश्चित्त भी कर लेना चाहिये।

चाहिये। सभी सगोत्री नौ दिनोंतक दन्तधावनका परित्याग कर देते हैं तथा यथाविधान नौ दिनतक जलाञ्जलि देनेके लिये जलाशयपर जाते हैं। विद्वानोंका कहना है कि जो भी मनुष्य जिस स्थान, मार्ग अथवा घरमें मृत्युको प्राप्त करता है, उसको वहाँसे श्मशानभूमिके अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं ले जाना चाहिये। दाह-संस्कारके पश्चात् स्त्रियोंको आगे-आगे चलना चाहिये। उनके पीछे-पीछे अन्य व्यक्तियोंके समूहको चलना चाहिये। वहाँसे आनेके बाद उन सभीको एक पत्थरके ऊपर बैठकर आचमन करना चाहिये। तत्पश्चात् वे पूर्णपात्रमें रखी गयी यव, सरसों और दूर्वाका दर्शन करें, नीमकी पत्तियोंका प्राशन करें तथा तेल लगाकर स्नान करें। सगोत्रियोंमें जिनके यहाँ मृत्यु हुई है, उनका भोजन नहीं करना चाहिये। अपने घरका अन्न नहीं खाना चाहिये और न ही खिलाना चाहिये। भोजन करनेमें मृत्पात्रका प्रयोग करना चाहिये एवं उस उच्छिष्ट पात्रको ऊपर मुख करके ही एकान्त स्थानमें रख देना चाहिये। मृतकके गुणोंका कीर्तन करे, 'यमगाथा' का पाठ करे और पूर्वजन्ममें संचित शुभाशुभका चिन्तन करे।

वह मृत प्राणी वायुरूप धारण करके इधर-उधर भटकता है और वायुरूप होनेसे ऊपरकी ओर जाता है। वह प्राप्त हुए शरीरके द्वारा ही अपने पुण्य और पापके फलोंका भोग करता है। दशाह-कर्म करनेसे मृत मनुष्यके लिये शरीरका निर्माण होता है। नवक एवं षोडश श्राद्ध करनेसे जीव उस शरीरमें प्रवेश करता है। भूमिपर तिल और कुशका निक्षेप करनेपर वह कुटी धातुमयी हो जाती है। मरणासन्न प्राणीके मुखमें पञ्चरत्न डाल देनेसे जीव ऊपरकी ओर चल देता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो जीवको शरीर नहीं मिल पाता अर्थात् वह इधर-उधर भटकता रहता है। इसलिये आदरपूर्वक भूमिपर तिल और दर्भको बिछाना चाहिये।

जीव जहाँ-कहीं भी पशु या स्थावरयोनिमें जन्म लेता है, जहाँ वह रहता है, वहींपर उसके उद्देश्यसे दी गयी श्राद्धीय वस्तु पहुँच जाती है। जिस प्रकार धनुर्धारीके द्वारा लक्ष्यवेधके लिये छोड़ा गया बाण उसी लक्ष्यको प्राप्त करता है, जो उसको अभीष्ट है; उसी प्रकार जिसके निमित्त श्राद्ध किया जाता है, वह उसीके पास पहुँच जाता है। जबतक मृतकके सूक्ष्म शरीरका निर्माण नहीं होता है, तबतक किये गये श्राद्धोंसे उसकी संतृप्ति नहीं होती है। भूख-प्याससे व्यथित होकर वायुमण्डलमें इधर-उधर चक्कर काटता हुआ वह जीवात्मा, दशाहके श्राद्धसे संतृप्त होता है। जिस मृतकका पिण्डदान नहीं हुआ है, वह आकाशमें भटकता ही रहता है। वह क्रमशः—तीन दिन जल, तीन दिन अग्नि, तीन दिन आकाश और एक दिन (अपने प्रिय जनोंके ममतावश) अपने घरमें निवास करता है। अग्निमें शरीरके भस्म हो जानेपर प्रेतात्माको जलसे ही तृप्त करना चाहिये। इसके बाद जलसे ही उसकी तेल-स्नानकी क्रिया पूर्ण करे तथा घरमें पूआ और कृशर अन्नसे श्राद्ध करे। मृत्युके पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें अथवा ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध होता है, उसको नवक श्राद्ध कहा जाता है। गृहद्वार, श्मशान, तीर्थ या देवालय अथवा जहाँ-कहीं भी प्रथम पिण्डदान दिया जाता है, वहींपर अन्य सभी पिण्डदान करने चाहिये। एकादशाहके दिन जिस श्राद्धको करनेका विधान है, उसको सामान्य श्राद्ध कहा गया है। ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी शरीर-शुद्धिके लिये स्नान ही एकमात्र साधन है। एकादशाह-संस्कारके पूर्ण हो जानेके पश्चात् पुनः स्नान करके शुद्ध होना चाहिये। अनन्तर शय्यादान करना चाहिये, क्योंकि

शय्यादानसे प्रेतको मुक्ति मिलती है। यदि प्रेतका कोई सगोत्री न हो तो उसके अन्त्येष्टि कार्यको किसी औरको करना चाहिये अथवा उसकी भार्या करे या किसी ऐसे पुरुषको करना चाहिये, जो मृत व्यक्तिसे तुष्ट अर्थात् उसके सद्व्यवहारसे उपकृत हो। पहले दिन विधिपूर्वक श्राद्धयोग्य जिस अन्नादिसे पिण्डदान दिया जाता है, उसी अन्नादिसे सभी श्राद्ध करने चाहिये।* दशाह-श्राद्धका कर्म मन्त्रोंका प्रयोग बिना किये ही नाम-गोत्रोच्चारसे हो जाता है। जिन वस्त्रोंको धारण करके संस्कर्ता श्राद्धकर्म करता है, अशौचका दिन बीतनेके बाद उन्हें त्याग करके ही घरमें प्रविष्ट होना चाहिये। पहले दिन जो और्ध्वदैहिक कर्म आरम्भ करे, उसीको दस दिनतक समस्त श्राद्धकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। वह क्रिया करनेवाला चाहे सगोत्री हो या दूसरे गोत्रसे सम्बन्धित हो, स्त्री हो अथवा पुरुष हो।

जिस प्रकार गर्भमें स्थित प्राणीके शरीरका पूर्ण विकास दस मासमें होता है, उसी प्रकार दस दिनतक दिये गये पिण्डदानसे जीवके उस शरीरकी संरचना होती है जिस शरीरसे उसे यमलोक आदिकी यात्रा करनी है। जबतक घरमें इसका अशौच होता है, तबतक पिण्डोदक-क्रिया करनी चाहिये। यह विधि ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये मानी गयी है। पुत्रके अभावमें जिनके लिये अशौच तीन रातोंका ही माना जाता है, वे पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन पिण्डदान करें। प्रेतके लिये पृथक्-पृथक् मिट्टीके पात्रमें दूध तथा जल और चौथे दिन उसे एकोद्दिष्ट-श्राद्ध करना चाहिये।

हे अण्डज! पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे जीवकी मूर्द्धाका निर्माण होता है। दूसरे दिनके पिण्डदानसे आँख, कान और नाककी रचना होती है। तीसरे दिनके पिण्डदानद्वारा दोनों गण्डस्थल, मुख तथा ग्रीवाभाग बनकर तैयार होता है। उसी प्रकार चौथे दिन उसके हृदय, कुक्षिप्रदेश एवं उदरभाग, पाँचवें दिन कटिप्रदेश, पीठ और गुदाका आविर्भाव होता है। तत्पश्चात् छठे दिन उसके दोनों ऊरु, सातवें दिन गुल्फ, आठवें दिन जंघा, नौवें दिन पैर तथा दसवें दिन पिण्डदान देनेसे प्रबल क्षुधाकी उत्पत्ति होती है। एकादशाहमें जो पिण्डदान होता है, उसको पायस आदि मधुर अन्नसहित प्रदान करें। निमन्त्रित ब्राह्मणके दोनों पैर धोकर तथा उन्हें अर्घ्य, धूप, दीपादिसे पूजकर और सिद्धान्न, कृशर, अपूप एवं दूध आदिसे परिपूर्ण भोजन कराकर संतृप्त किया जाय। द्वादश मासिक श्राद्ध तथा ऊनमासिक, त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक—ये षोडश श्राद्ध कहे जाते हैं। (ग्यारहवें दिन इन श्राद्धोंको करनेकी विधि है।) प्राणीकी जो मृत्यु-तिथि हो, उसी तिथिपर प्रतिमास श्राद्ध करना चाहिये। प्रथम मासिक श्राद्ध मृताहके दिन न करके एकादशाहके दिन करना चाहिये। जिस तिथिको मनुष्य मरता है, वही तिथि (अन्य) मासिक श्राद्धके लिये प्रशस्त होती है। ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक तथा त्रिपाक्षिक—इन श्राद्धोंके लिये मृत्यु-तिथिका विचार नहीं करना चाहिये। उदाहरणार्थ—पूर्णिमा तिथिमें जो व्यक्ति मरता है, उसके लिये अगली चतुर्थी तिथिको ऊनमासिक श्राद्ध करना चाहिये। जिसकी मृत्यु चतुर्थी तिथिको होती है, उसके लिये ऊनमासिक श्राद्ध नवमीको होना चाहिये और जो मनुष्य नवमी तिथिको मरता है, उसके लिये चतुर्दशी ऊनमासिक श्राद्धकी तिथि है। अतः अन्त्येष्टि-कर्मकुशल विद्वान्को यह जान लेना चाहिये कि ये सभी तिथियाँ यथाविहित मृत्यु-तिथिके अनुसार रिक्ता ही होंगी।

* प्रथमेऽहनि यः पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम्। अन्नाद्येन च तेनैव सर्वश्राद्धानि कारयेत्॥ (३४। ४१)

एकादशाहको जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नवक है। इस दिन चौराहेपर प्रेतके निमित्त भोजन रख करके श्राद्धकर्ता पुनः स्नान करे। एकादशाहसे वर्षपर्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन सान्नोदक घटका दान करना चाहिये। मानव-शरीरमें जो अस्थियोंका एक समूह विद्यमान है, जिसमें उनकी कुल संख्या तीन सौ साठ है। जलपूर्ण घटका दान देनेसे उन अस्थियोंको पुष्टि मिलती है। इसलिये जो घट-दान दिया जाता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। जंगल या किसी विषम परिस्थितिमें जीवकी मृत्यु जिस दिन होती है, उस दिनसे घरमें सूतक होता है और उसीके अनुसार दशाहादि क्रियाएँ करनी चाहिये, दाह-संस्कार जब कभी भी हो।

तिलपात्र, अन्नादिक भोज्यपदार्थ, गन्ध, धूपादि एवं पूजन-सामग्रीका जो दान है, उसको एकादशाहमें देना चाहिये। उससे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। मृत्यु और जन्ममें घरमें होनेवाले सूतकसे क्रमशः— क्षत्रिय बारहवें दिन, वैश्य पंद्रहवें दिन तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। मृत्युके तीन मास होनेपर त्रिरात्र, छः मास होनेपर पक्षिणी, संवत्सर पूर्ण होनेसे पूर्व अहोरात्र तथा संवत्सर पूर्ण होनेपर जलदानकी क्रिया करनेसे शुद्धि होती है। इसीके अनुसार सभी वर्णोंकी शुद्धि होती है। कलियुगमें सूतककी समाप्ति दशाहमें ही है। एकादशाहसे* लेकर सांवत्सरिक आदि सभी श्राद्धोंके अवसरपर विश्वेदेवोंकी पूजा करके अन्य पिण्डदान करना चाहिये। जैसे सूर्यकी किरणें अपने तेजसे सभी तारागणोंको ढक देती हैं, उसी प्रकार प्रेतत्वपर इन क्रियाओंका आच्छादन होनेसे भविष्यमें पुनः प्रेतत्व नहीं मिलता है। अतः सपिण्डनके अनन्तर कहीं 'प्रेत' शब्द प्रयोग नहीं होता।

श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वदा शय्यादानकी प्रशंसा करते हैं। यह जीवन अनित्य है, उसे मृत्युके बाद कौन प्रदान करेगा? जबतक यह जीवन है, तबतक अपने बन्धु-बान्धव हैं और अपने पिता हैं। मृत्यु हो जानेपर यह मर गया है, ऐसा जान करके क्षणभरमें ही वे अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। इसलिये आत्मा ही अपना बन्धु है, ऐसा बारम्बार विचार करके जीते हुए ही अपने हितके कार्य कर लेना चाहिये। इस संसारमें मरे हुए प्राणीका कौन पुत्र है, जो बिस्तरके सहित शय्याका दान ब्राह्मणको दे सकता है? ऐसा सब कुछ जानते हुए मनुष्यको अपने जीवनकालमें ही अपने हाथोंसे शय्यादानादि सभी दान कर देना चाहिये। अतः अच्छी एवं मजबूत लकड़ीकी सुन्दर शय्या बनवा करके उसे हाथीके दाँत तथा सोनेकी पट्टियोंसे अलंकृत करके उस शय्याके ऊपर लक्ष्मीके सहित विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करे। उसके बाद उसी शय्याके संनिकट घीसे परिपूर्ण कलश रखे। हे गरुड! वह कलश अपने सुखके लिये ही होता है। विद्वानोंने तो उसको निद्राकलश कहा है। ताम्बूल, केशर, कुंकुम, कपूर, अगुरु, चन्दन, दीपक, पादुका, छत्र, चामर, आसन, पात्र तथा यथाशक्ति सप्तधान्य उसी शय्याके बगलमें स्थापित करे। इन वस्तुओंके अतिरिक्त शयन करनेवालेके लिये जो अन्य उपयोगी वस्तु हो, उसको भी वहाँ रखे। सोने-चाँदी या अन्य धातुसे बनी झारी, करक (करवा), दर्पण और पञ्चरंगी चाँदनीसे उस शय्याको संयुक्त करके उसे ब्राह्मणको दान दे दे।

कल्याणके लिये यजमान स्वर्गमें सुख प्रदान करनेवाली शय्याकी विधिवत् रचना करके सपत्नीक द्विज-दम्पतिकी पूजा करके उसका दान करे। कर्णफूल, कण्ठहार, अंगूठी, भुजबंद तथा चित्रकादि

* एकादशाह-श्राद्धके अनन्तर वर्षपर्यन्त किया जानेवाला एकोद्दिष्ट-श्राद्ध तथा प्रति सांवत्सरिक एकोद्दिष्ट-श्राद्ध विश्वेदेवपूजनपूर्वक करनेकी परम्परा नहीं है।

आभूषण एवं गौसे युक्त घरेलू उपकरणोंसे परिपूर्ण घर उसको दानमें दे। तदनन्तर पञ्चरत्न, फल और अक्षतसे समन्वित अर्घ्य उस ब्राह्मणको देकर यह प्रार्थना करनी चाहिये—

**यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरकन्यया।**
**शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥**

(३४। ८१)

जिस प्रकार समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीसे भगवान् विष्णुकी शय्या शून्य नहीं होती है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरमें मेरी शय्या भी शून्य न हो।

इस प्रकार ब्राह्मणको उस निर्मल शय्याका दान देकर क्षमापन करके उसे विदा करे। यही प्रेतशय्याकी विधि एकादशाह-संस्कारमें बतायी गयी है।

हे गरुड! अपने बान्धवकी मृत्यु होनेपर उनके निमित्त बन्धुजन धर्मार्थ जो दान देते हैं, उसके विषयमें विशेष बात मैं कह रहा हूँ, उसको तुम सुनो।

हे पक्षिराज! अपने घरमें पहलेसे जो कुछ उपयुक्त वस्तु हो, उस मृतकके शरीरसे सम्बन्धित जो वस्त्र, पात्र और वाहन हो, जो कुछ उसको अभीष्ट रहा हो, वह सब एकत्र करे। शय्याके ऊपर भगवान् विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् व्यक्ति उनकी पूजा करे और जैसा पहले कहा गया है, उसीके अनुसार ब्राह्मणको उस मृतशय्याका दान कर दे।

शय्यादानके प्रभावसे प्राणीको प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण सुख इन्द्र और यमराजके घरमें विद्यमान रहता है। इसके प्रभावसे महाभयंकर मुखवाले यमदूत उसको पीड़ित नहीं करते हैं। वह मनुष्य यमलोकमें कहीं धूप और ठंडकसे कष्ट नहीं पाता है। शय्यादानके प्रभावसे प्रेत बन्धनमुक्त हो जाता है। इस दानसे पापी व्यक्ति भी स्वर्गलोक चला जाता है। जो प्राणी पापसे रहित है, वह अप्सराओंसे सेवित विमानपर चढ़कर प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें रहता है। जो नारी अपने पतिके लिये नवक, षोडश और सांवत्सरिक श्राद्ध तथा शय्यादान करती है, उसको अनन्त फल प्राप्त होता है। मृत पतिका उपकार करनेके लिये जो स्त्री जीवित रहती है, उसके साथ मरती नहीं तो वह सती जीवित रहते हुए भी अपने पतिका उद्धार कर सकती है। स्त्रीको अपने मृत पतिके लिये दधि, अन्न, शयन, अञ्जन, कुंकुम, वस्त्राभूषण तथा शय्यादि सभी प्रकारके दान देना चाहिये। स्त्रियोंके लिये इस लोकमें जो कुछ वस्तुएँ उपकारक हों, जो कुछ शरीरपर प्रयोग किये जाने योग्य वस्त्राभूषण और भोग्य वस्तुएँ हों, उन सभीको मिला करके प्रेतकी प्रतिमा बनाकर उन्हें यथास्थानपर नियोजित करके लोकपाल, इन्द्रादि देवगण, सूर्यादिक ग्रह, गौरी तथा गणेशकी पूजा करे। उसके बाद श्वेत वस्त्र धारण करके पुष्पाञ्जलि सहित ब्राह्मणके समक्ष इस मन्त्रका उच्चारण करे—

**प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर्युता।**
**सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता॥**
**आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह।**
**तस्माच्छय्याप्रदानेन सैष आत्मा प्रसीदतु॥**

(३४। ९६-९७)

हे विप्रदेव! प्रेतकी यह प्रतिमा सभी उपकरणों और समस्त रत्नोंसे युक्त है। मैं आपको इसे प्रदान करता हूँ। आत्मा ही शिव है। यही शिवा और गौरी है। यही सभी देवताओंके साथ इन्द्र है। अतः इस शय्यादानसे यह आत्मा प्रसन्न हो।

इसके बाद उस शय्याको परिवारवाले आचार्य ब्राह्मणको प्रदान करे। ब्राह्मण उसको ग्रहण करनेके बाद '**कोऽदात०**' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् उस ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम

करे और उन्हें वहाँसे विदा करे।

हे पक्षिन्! इस विधिसे एक शय्याका एक ही ब्राह्मणको दान देना चाहिये। एक गौ, एक गृह, एक शय्या और एक स्त्रीका दान बहुतोंके लिये नहीं होता है। विभाजित करके दिये गये ये दान दाताको पापकी कोटिमें गिरा देते हैं।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार बतायी गयी विधिके अनुसार जो प्राणी शय्यादिका दान करे तो उसे जो फल प्राप्त होता है, उसको तुम सुनो। इस दानसे दाता सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। व्यतीपात योग, कार्तिक पूर्णिमा, मकर तथा कर्ककी संक्रान्तिमें, सूर्य-चन्द्रग्रहणमें, द्वारका, प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, अर्बुद (आबू) पर्वत, गङ्गा, यमुना तथा सिन्धु नदी और सागरके संगम-तटपर जो दान दिया जाता है, यह उससे भी बड़ा दान है। इस शय्यादानके सोलहवें अंशको भी वे सभी दान प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वह प्राणी जहाँ जन्म लेता है, वहीं उस पुण्यका फल भोगता है। स्वर्गमें रहनेयोग्य पुण्यके क्षय होनेके बाद वह सुन्दर स्वरूप धारण करके पृथ्वीपर पुनः जन्म लेता है। वह महाधनी, धर्मज्ञ तथा सर्वशास्त्रोंका निष्णात पण्डित होता है और मृत्यु होनेके बाद वह नरश्रेष्ठ पुनः वैकुण्ठलोक चला जाता है। अद्भुत है! अप्सराओंसे चारों ओर घिरा हुआ वह प्राणी दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्गमें अपने पितरोंके साथ हव्य-कव्य ग्रहण करते हुए प्रसन्न रहता है।

हे तार्क्ष्य! यदि पितर प्रेतत्वको प्राप्त हैं तो सपिण्डीकरणके बिना अष्टका, अमावास्या, मघा नक्षत्र तथा पितृपर्वमें किये गये जो-जो श्राद्ध हैं, वे पितरोंको नहीं प्राप्त होते हैं। सपिण्डीकरणका कार्य वर्ष पूरा हो जानेपर करना चाहिये। इसमें संशय नहीं है। शवकी शुद्धिके लिये आद्य श्राद्ध करके षोडशीका सम्पादन करे। तदनन्तर पितृपंक्तिकी (पितरोंकी पंक्तिमें प्रवेशके लिये) शुद्धिके लिये पचासवें प्रेतपिण्डका अन्य पिण्डोंके साथ मेलन करे। वृद्धि श्राद्धकी सम्भावना होनेपर एक वर्षके पहले ही (छः अथवा तीन माह या डेढ़ माहमें एवं बारहवें दिन सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देना चाहिये। शूद्रका श्राद्ध स्वेच्छापूर्वक हो सकता है। अग्निहोत्री ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर द्वादशाहको सपिण्डन-कर्म होना चाहिये। जबतक वह कर्म नहीं किया जाता है, तबतक वह मृत अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रेतयोनिमें ही रहता है। अतः अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मणको द्वादशाहमें ही सपिण्डीकरणकी क्रिया कर देनी चाहिये। गङ्गा आदि महानदियोंमें अस्थि-क्षेपण, गयातीर्थ-श्राद्ध, पितृपक्षमें होनेवाले श्राद्ध सपिण्डीकरणके बिना वर्षके मध्यमें नहीं करना चाहिये। यदि बहुत-सी सपत्नियाँ हों और उनमेंसे एक भी स्त्री पुत्रवती हो जाय तो उसी एक पुत्रसे ही वे सभी पुत्रवती होती हैं।

असपिण्ड अग्निहोत्री पुत्रको पितृयज्ञ नहीं करना चाहिये। यदि वह ऐसा आचरण करता है तो पापी होगा और उसे पितृहत्याका भी पाप लगेगा। पतिकी मृत्यु होनेपर जो स्त्री अपने प्राणोंका परित्याग कर देती है तो पतिके साथ ही उसका भी सपिण्डीकरण कर देना चाहिये। पिताकी अनुचित रूपसे लायी गयी विवाहिता वैश्यवर्णा अथवा क्षत्रिया जो भी पत्नियाँ हों, उनका सपिण्डन कोई भी पुत्र कर सकता है। जब प्रमादवश ब्राह्मण किसी शूद्रा कन्यासे ही विवाह कर लेता है तो मरनेके बाद उसके लिये एकोद्दिष्ट-श्राद्ध बताया गया है और सपिण्डीकरण-श्राद्ध उसीके साथ करना चाहिये। अन्य चारों वर्णोंसे ब्राह्मणके चाहे दसों पुत्र हों, किंतु उन्हें अपनी-अपनी माँके सपिण्डीकरणकी क्रियामें नियुक्त होना चाहिये। अन्वष्टका पौष, माघ और

फाल्गुनमासके कृष्णपक्षकी नवमी तिथि (जो साग्नियोंका मातृक श्राद्ध होता है)-को होनेवाला तथा वृद्धिहेतुक श्राद्ध एवं सपिण्डन-श्राद्धमें पितासे पृथक् माताका पिण्ड प्रदान करना चाहिये।* हे तार्क्ष्य! पितामहीके साथ माता और पितामहके साथ पिताका सपिण्डन अपेक्षित है, ऐसा मेरा अभिमत है। यदि स्त्री पुत्रहीन ही मर जाती है तो उसका सपिण्डन पति करे। धर्मतः पतिको अपनी माता, पितामही एवं प्रपितामही— इन तीनोंके साथ अपनी पत्नीका सपिण्डन करना चाहिये।

हे गरुड! यदि स्त्रियोंके पुत्र तथा पति दोनों नहीं हैं तो वृद्धिकालके आनेपर स्त्रीका भाई अथवा दायभागका गृहीता या देवर उसका सपिण्डन करें। यदि पति एवं पुत्ररहित स्त्रियोंके न तो कोई सगोत्री हो और न देवर ही हो तो उस समय अन्य व्यक्ति उसके भाइयोंके साथ उसका एकोद्दिष्ट विधानसे श्राद्ध कर सकता है। यदि भूलवश अथवा विघ्नके कारण सपिण्डन-क्रिया किसीकी नहीं हो सकी है तो उसके पुत्र या बन्धु-बान्धवको चाहिये कि वे नवक श्राद्ध, षोडश श्राद्ध तथा आब्दिक श्राद्ध करे।

जिसका दाह नहीं हुआ है, उसके लिये श्राद्ध नहीं करना चाहिये। दर्भका पुत्तल बनाकर अग्निसे उसे जलाकर ही श्राद्ध करना चाहिये। पुत्रके द्वारा पिताका सपिण्डीकरण किया जा सकता है, किंतु पुत्रमें पिताका पिण्डमेलन नहीं किया जा सकता। प्रेमाधिक्यके कारण भी पिताको पुत्रमें सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये। जब बहुत-से पुत्र हों, तब भी ज्येष्ठ पुत्र ही उस क्रियाको सम्पन्न करे। नवक, सपिण्डन तथा षोडशादि अन्य सभी श्राद्धोंको करनेका अधिकारी वही एक है। धनका बँटवारा न होनेपर भी एक ही पुत्रको पिताके समस्त और्ध्वदेहिक कृत्य करना चाहिये। मुनियोंने भी इस बातको कहा है कि पिताकी अन्त्येष्टि एक ही पुत्र करता है। यदि पुत्रोंमें परस्पर बँटवारा हो गया है तो उन सभी पुत्रोंको पृथक्-पृथक् सांवत्सरादिक क्रिया करनी चाहिये। स्वयं प्रत्येक पुत्रको अपने पिताका श्राद्ध करना चाहिये। जिनके निमित्त ये षोडश प्रेतश्राद्ध सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उनका अन्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी पिशाचत्व स्थिर रहता है।

हे खगेश्वर! पुत्रहीनका सपिण्डीकरण उसके भाई, भतीजे, सपिण्ड अथवा शिष्यको करना चाहिये। सभी पुत्रहीन पुरुषोंका सपिण्डन पत्नी करे अथवा ऋत्विज् या पुरोहितसे उस कार्यको सम्पन्न कराये। पिताकी मृत्यु हो जानेपर वर्षके मध्य जब सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हों तो पुत्रोंको पार्वणश्राद्ध, नान्दीश्राद्ध नहीं करना चाहिये। माता-पिता और आचार्यकी मृत्यु होनेपर वर्षके मध्यमें तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध तथा अन्य पैतृक श्राद्ध नहीं करना चाहिये। पितृपक्ष, गजच्छाया योग, मन्वादि और युगादि तिथियोंमें सपिण्डीकरणके बिना पिताको पिण्डदान नहीं देना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि वर्षके मध्यमें भी यज्ञपुरुष तथा देवतादिके लिये जो देय है, उसका दान देना चाहिये। पितरोंको भी अर्घ्य और पिण्डसे रहित जो कुछ देय है, वह सब दिया जा सकता है। यही विधि कही गयी है।

देवोंके लिये पितर देवता हैं, पितरोंके पितर ऋषि हैं, ऋषियोंके पितर देवता हैं, इस कारण पिता सर्वश्रेष्ठ है। पितर, देवतागण और मनुष्योंके यज्ञनाथ भगवान् विभु हैं। यज्ञनाथको जो कुछ दिया जाता है, वह समस्त शरीरधारियोंको दिया हुआ माना जाता है। पिताके मरनेपर वर्षके मध्य

* अन्वष्टकासु यच्छ्राद्धं यच्छ्राद्धं वृद्धिहेतुकम्। पितुः पृथक् प्रदातव्यं स्त्रियाः पिण्डं सपिण्डने॥ (३४। १२०)

जो पुत्र अन्य श्राद्ध करता है, निस्संदेह सात जन्मोंमें किये गये अपने धर्मसे हीन हो जाता है। पिण्डोदक क्रियादिसे रहित प्राणी प्रेत हो जाते हैं, वे इसी रूपमें भूख-प्याससे अत्यन्त पीड़ित होकर वायुके साथ चक्कर काटते हैं। यदि पिता प्रेतत्वयोनिमें पहुँच जाता है तो पुत्रके द्वारा की गयी समस्त पैतृकी क्रिया नष्ट हो जाती है। यदि माताकी मृत्यु हो जाती है तो पितृकार्य नष्ट नहीं होता है।

यदि माताकी मृत्यु हो जाय, पिता और पितामही अर्थात् दादी जीवित रहती है तो माताका सपिण्डन प्रपितामहीके* साथ ही करना चाहिये। हे गरुड! मेरे इस वचनको सुनो। यह सर्वथा सत्य है। इस पृथ्वीपर जिन मरेहुए मनुष्योंका पिण्डमेलन अर्थात् सपिण्डीकरण नहीं होता है, उनके लिये पुत्रोंके द्वारा अनेक प्रकारसे दिया गया हन्तकार, उपहार, श्राद्ध तथा जलाञ्जलि उन्हें प्राप्त नहीं होती है। (अध्याय ३४)

# सपिण्डीकरण-श्राद्धमें प्रेतपिण्डके मेलनका विधान, पितरोंकी प्रसन्नताका फल, पञ्चक-मरण तथा शान्तिविधान, पुत्तलिकादाह, प्रेतश्राद्धमें त्याज्य अठारह पदार्थ, मलिनषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशी श्राद्ध, शवयात्रा-विधान

**तार्क्ष्यने कहा**—हे जनार्दन! अब मुझे दूसरा संदेह उत्पन्न हो गया है। यदि किसी भी पुरुषकी माताका देहावसान हो गया है, किंतु उसकी पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही जीवित है और यदि पिता भी जीवित हो, मातामह, प्रमातामह एवं वृद्धप्रमातामह भी जीवित हों तो उस माताका सपिण्डन किसके साथ किया जायगा? हे प्रभो! इसको बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिन्! पूर्वमें कहे गये सपिण्डीकरणविधानको मैं पुनः कह रहा हूँ। यदि माताके उपर्युक्त सभी सम्बन्धी जीवित हैं तो माताके पिण्डका सम्मेलन उमा, लक्ष्मी तथा सावित्रीके साथ कर देना चाहिये। इस संसारमें तीन पुरुष पिण्डका भोग करनेवाले हैं, तीन पुरुष त्याजक हैं, तीन पुरुष पिण्डानुलेप और दसवाँ पुरुष पंक्तिसंनिध होता है। पिता तथा माताके कुलमें इन्हीं पुरुषोंकी प्रसिद्धि होती है। यजमान अपनेसे पूर्व दस पुरुषों एवं अपनेसे बादके दस पुरुषोंका उद्धार कर सकता है। पहले जो तीन पुरुष बताये गये हैं अर्थात् पिता, पितामह तथा प्रपितामह—ये सपिण्डीकरण करनेपर सपिण्ड माने गये हैं। जो प्रपितामहके पूर्व वृद्धप्रपितामह और उनसे दो पूर्व पुरुष हैं, उन्हें त्याजक रूपमें स्वीकार करना चाहिये। इस अन्तिम त्याजक पुरुषके बाद जो पुरुष होता है, वह प्रथम लेपक होता है, उसके पूर्वमें जो अन्य दो पुरुष होते हैं, उन्हें भी उसी लेपककी कोटिमें समझना चाहिये। इस कोटिके तीसरे पुरुषके पूर्व जो पुरुष होता है, वह पंक्तिसंनिध है। इस प्रकार दस पूर्व पुरुषोंके बाद स्वयं यजमान एक पुरुष है। भविष्यमें जो

* 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः'—इस वार्तिकसे 'प्र' शब्दका लोप हो जानेसे मूलमें पितामही पदको 'प्रपितामही' समझना चाहिये।

यथाक्रम दस पुरुष होते हैं, उन सभीको मिलाकर पितरोंकी संख्या इक्कीस होती है।

इस संसारमें विधिपूर्वक जो मनुष्य उक्त श्रेष्ठतम श्राद्ध करता है, उसमें कर्ताकी ओरसे कोई संदेहकी स्थिति नहीं रह जाती है तो उसका जो फल होता है, उसे भी तुम सुनो।

हे खगेश! पिता प्रसन्न होकर पुत्रोंको संतान प्रदान करता है, जिससे उनकी वंश-परम्परा अविच्छिन्न होती है। श्राद्धकर्ताका प्रपितामह प्रसन्न हो करके स्वर्णदाता हो जाता है। वृद्धप्रपितामह प्रसन्न होकर श्राद्धकर्ताको विपुल अन्नादि प्रदान करते हैं। श्राद्धके जो ये फल हैं, ये ही पितरोंके तर्पणसे भी प्राप्त होते हैं। हे पक्षिन्! इस मर्त्यलोकमें जिस पुरुषकी संतान-परम्परा नष्ट हो जाती है, वह मृत्युके बाद उसी प्रकार नरकलोकमें वास करता है, जिस प्रकार कीचड़में फँसा हुआ हाथी होता है। (नरक-भोग प्राप्त करनेके बाद) वह प्राणी वृक्ष अथवा सरीसृप-योनिमें जन्म लेता है। वह उस नरकसे बिना संतानके निश्चित ही मुक्त नहीं होता है। अतः संतानविहीन मरे हुए प्राणीके लिये आचार्य, शिष्य अथवा दूरके सगोत्री (अबान्धव)-को उसके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक 'नारायणबलि' कर देनी चाहिये। उस कृत्यसे पापविमुक्त होकर वह विशुद्धात्मा निश्चित ही नरकसे छुटकारा पा जाता है और स्वर्गमें जाकर वास करता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

धनिष्ठासे लेकर रेवतीपर्यन्त जो पाँच नक्षत्र हैं, ये सभी सदैव अशुभ होते हैं। उन नक्षत्रोंमें ब्राह्मण आदि समस्त जातियोंका दाह-संस्कार या बलिकर्म नहीं करना चाहिये। इन नक्षत्रोंमें मृत प्राणीके लिये जल भी प्रदान करना उचित नहीं है, ऐसा करनेसे वह अशुभ हो जाता है। दुःखार्त (मृत) स्वजन हों तो भी इस कालमें लोक (शव)-यात्रा नहीं करनी चाहिये। स्वजनको पञ्चककी शान्तिके बाद ही मृतका सब संस्कार करना चाहिये, अन्यथा पुत्र और सगोत्रियोंको उस अशुभ पञ्चकके कुप्रभावसे दुःख ही झेलना पड़ता है। जो मनुष्य इन नक्षत्रोंमें मृत्यु प्राप्त करता है, उसके घरमें हानि होती है।

इस पञ्चककी अवधिमें जो प्राणी मर जाता है, उसका दाह-संस्कार तत्सम्बन्धित नक्षत्रके मन्त्रसे आहुति प्रदान करके नक्षत्रके मध्यकालमें भी किया जा सकता है। सद्यः की गयी आहुति पुण्यदायिनी होती है; तीर्थमें किया गया दाह उत्तम होता है। ब्राह्मणोंको नियमपूर्वक यह कार्य मन्त्रसहित विधिपूर्वक करना चाहिये। वे यथाविधि अभिमन्त्रित कुशकी चार पुत्तलिकाओंको बना करके शवके समीपमें रख दें। उसके बाद उन पुत्तलिकाओंके सहित उस शवका दाह-संस्कार करें। तदनन्तर सूतकके समाप्त होनेपर पुत्रको शान्तिकर्म भी करना चाहिये।

जो मनुष्य इन धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रोंमें मरता है, उसको उत्तम गति नहीं प्राप्त होती है। अतएव उसके उद्देश्यसे तिल, गौ, सुवर्ण और घृतका दान विप्रोंको देना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके उपद्रवोंका विनाश हो जाता है। अशौचके समाप्त होनेपर मृत प्राणी अपने सत्पुत्रोंसे सद्गति प्राप्त करता है। जो पात्र, पादुका, छत्र, स्वर्ण-मुद्रा, वस्त्र तथा दक्षिणा ब्राह्मणको दी जाती है, वह सभी पापोंको दूर करनेवाली है। पञ्चकमें मरे हुए बाल, युवा और वृद्ध प्राणियोंका और्ध्वदेहिक संस्कार प्रायश्चित्तपूर्वक जो मनुष्य नहीं करता है, उसके लिये नाना प्रकारका विघ्न जन्म लेता है।

प्रेतश्राद्धमें अठारह वस्तुएँ त्याज्य होती हैं। यथा—आशीर्वाद, द्विगुण कुश (मोटक), प्रणवका उच्चारण, एकसे अधिक पिण्डदान, अग्नौकरण, उच्छिष्ट श्राद्ध, वैश्वदेवार्चन, विकिरदान, स्वधाका

उच्चारण और पितृशब्दोच्चार नहीं करना चाहिये[१]। इस श्राद्धमें 'अनु' शब्दका प्रयोग, आवाहन तथा उल्मुख वर्जित है। आसीमान्तगमन[२], विसर्जन, प्रदक्षिणा, तिल-होम और पूर्णाहुति तथा बलिवैश्वदेव भी नहीं करना चाहिये। यदि कर्ता ऐसा करता है तो उसे अधोगति प्राप्त होती है[३]।

प्रथम षोडशीको मलिन-श्राद्धके नामसे अभिहित किया जाता है। यथा—मृत्युस्थान, द्वार, अर्धमार्ग, चितामें, (श्मशानवासी प्राणियों एवं पड़ोसियोंके उद्देश्यसे) शवके हाथमें तथा छठा श्राद्ध अस्थि-संचय-कालमें होता है। उसके बाद दस पिण्ड-श्राद्ध जो प्रतिदिन एक-एक करके दस दिन किये जाते हैं, वे भी मलिन-श्राद्धकी कोटिमें आते हैं। इस प्रकार इन्हें प्रथम षोडश श्राद्ध कहा गया है। हे तार्क्ष्य! अन्य मध्यम या द्वितीय षोडशीको भी तुम मुझसे सुनो।

इन षोडश श्राद्धोंकी क्रियामें सबसे पहले विधिवत् एकादश श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और तत्पुरुषके नामसे पाँच श्राद्ध हों, ऐसा तत्त्वचिन्तकोंने कहा है। हे खगेश! इन षोडश श्राद्धोंके बाद प्रतिमास एक श्राद्धके अनुसार बारह श्राद्ध, ग्यारहवें मासमें ऊनाब्दिक श्राद्ध, त्रिपाक्षिक श्राद्ध, ऊनमासिक और ऊनषाण्मासिक श्राद्ध करनेका विधान है। शव-शोधनके लिये आद्य श्राद्ध करके तथा अन्य त्रिषोडश श्राद्ध करके पितृपंक्तिकी विशुद्धिके लिये पचासवें श्राद्धसे मिलाना चाहिये। जिसका पचासवाँ श्राद्ध नहीं किया गया है, वह पितृपंक्तिमें मिलने योग्य नहीं है। उक्त त्रिषोडश अर्थात् अड़तालीस श्राद्धोंसे मृत प्राणीके प्रेतत्वका विनाश होता है। उनचास श्राद्ध हो जानेपर पंक्तिसंनिध (पितृगणोंका सामीप्य) प्राणीको मिल जाता है। पचासवें श्राद्धसे पितृके साथ संधि-मेलन करना चाहिये।

अब शव-विधि बतायी जाती है। शव-यात्रा प्रारम्भ करनेके पूर्व बनायी गयी पालकीमें शवके हाथ-पैर बाँध देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो वह पिशाच-योनियोंके हाथ पहुँच जाता है। शवको अकेला नहीं छोड़ना चाहिये। यदि उसको अकेला छोड़ दिया जाता है तो दुष्ट योनियोंके स्पर्शसे उसकी दुर्गति होती है। गाँवके मध्य शव विद्यमान है—ऐसा सुननेके बाद इच्छानुसार यदि भोजन कर लिया जाता है तो उस अन्न और जलको क्रमशः मांस तथा रक्त समझना चाहिये। गाँवके बीच शवके रहनेपर ताम्बूल-सेवन, दन्तधावन, भोजन, स्त्री-सहवास तथा पिण्डदान त्याज्य हैं। स्नान, दान, जप, होम, तर्पण और देवपूजनका कार्य करना भी व्यर्थ ही हो जाता है।

हे पक्षिराज! बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धियोंके लिये मृतकालमें ऐसा ही उपर्युक्त व्यवहार अपेक्षित है। इस धर्मके त्यागनेसे प्रेत पाप-संलिप्त हो जाता है। (अध्याय ३५)

---

१-किन्हीं आचार्योंके मतमें मृत व्यक्तिके अनन्तर उनके अनुयायियोंको 'ये च त्वामनुगच्छन्ति तेभ्यश्च०'—ऐसा उच्चारण करके पिण्डशेषान्न पिण्डके समीपमें दिया जाता है, वह प्रेत-श्राद्धमें नहीं करना चाहिये।

२-श्राद्धमें ब्राह्मण-भोजन करानेके अनन्तर ब्राह्मणके पीछे-पीछे गाँवकी सीमातक जाकर उनकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन किया जाता है। यह आसीमान्तगमन प्रेत-श्राद्धमें नहीं करना चाहिये।

३-अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत्। आशिषो द्विगुणान् दर्भान् प्रणवान् नैकपिण्डताम्॥
अग्नौकरणमुच्छिष्टं श्राद्धं वै वैश्वदैविकम्। विकिरं च स्वधाकारं पितृशब्दं न चोच्चरेत्॥
अनुशब्दं न कुर्वीत नावाहनमथोल्मुकम्। आसीमान्तं न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम्॥
न कुर्यात् तिलहोमं च द्विजः पूर्णाहुतिं तथा। न कुर्याद्वैश्वदेवं चेत्कर्ता गच्छत्यधोगतिम्॥ (३५। २९—३२)

# तीर्थमरण एवं अनशनव्रतका माहात्म्य, आतुरावस्थाके दानका फल, धनकी एकमात्र गति दान तथा दानकी महिमा

**तार्क्ष्यने कहा**—हे प्रभो! अनशनव्रतका* पुण्य किस कारणसे मनुष्यको अक्षय गति प्रदान करनेमें समर्थ है? यदि प्राणी अपने घरको छोड़कर तीर्थमें जाकर मरता है अथवा तीर्थमें न पहुँचकर मार्गमें या घरमें ही मर जाता है अथवा कुटीचर अर्थात् संन्यास-आश्रमके धर्मको स्वीकार करके प्राण छोड़ देता है तो उसे कौन-सी गति प्राप्त हो सकती है? जो व्यक्ति तीर्थ अथवा घरमें भी रहकर संन्यासीका जीवन व्यतीत करता है, उसकी मृत्यु हुई हो या न हुई हो तो पुत्रको क्या करना चाहिये? हे देव! यदि प्राणीका तत्सम्बन्धी नियम-पालनमें उसके चित्तकी एकाग्रता भंग हो जाती है तो ऐसी परिस्थितिमें उसकी सिद्धि कैसे सम्भव है? यदि उस नियमको पूरा किया जाय अथवा नहीं भी किया जाय तो ऐसी दशामें उस व्यक्तिको सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! यदि जो कोई भी प्राणी अनशनव्रत करके मृत्युका वरण करता है तो वह मानव-शरीर छोड़कर मेरे समान हो जाता है। निराहारव्रत करते हुए वह जितने दिन जीवित रहेगा, उतने दिन उसके लिये समग्र श्रेष्ठ दक्षिणासहित सम्पन्न किये गये यज्ञोंके समान हैं। यदि मनुष्य संन्यास-धर्मको स्वीकार करके तीर्थ अथवा घरमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है तो उस अवधिमें वह प्रतिदिन पूर्वोक्त पुण्यका दुगुना फल प्राप्त करता है। शरीरमें महाभयंकर रोगके हो जानेपर अनशनव्रत करके जो मृत्युको प्राप्त करता है, पुनर्जन्म होनेपर उसके शरीरमें रोगकी उत्पत्ति नहीं होती है। वह देवतुल्य सुशोभित होता है। जो मनुष्य रुग्णावस्थामें संन्यास ग्रहण कर लेता है, वह इस दुःखमय अपार संसार-सागरकी भूमिपर पुनः जन्म नहीं लेता है। प्रतिदिन यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन, तिल-पात्र और दीपकका दान एवं देवपूजनका कर्म करना चाहिये। इस प्रकारका आचरण जो व्यक्ति करता है, उसके छोटे-बड़े सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। वह मृत्युके बाद सभी महर्षियोंके द्वारा प्राप्त की जानेवाली मुक्तिका संवरण करता है। अतः यह अनशनव्रत मनुष्योंको वैकुण्ठपद प्रदान करनेवाला है। इसलिये प्राणी स्वस्थ हो या न हो, उसे इस मोक्षदायक व्रतका पालन अवश्य करना चाहिये।

जो मनुष्य पुत्र और धन-दौलतका परित्याग करके तीर्थयात्रापर चल देता है, उसके लिये ब्रह्मादि देवगण तुष्टि-पुष्टिदायक बन जाते हैं। जो व्यक्ति तीर्थके सामने उपस्थित होकर अनशनव्रत करता है, वह यदि उसी मध्यावधिमें मृत्युको भी प्राप्त कर ले तो उसका वास सप्तर्षिमण्डलके बीच निश्चित है। यदि अनशनव्रत करके प्राणी अपने घरमें भी मर जाता है तो वह अपने कुलोंको छोड़कर अकेले स्वर्गलोकमें जाकर विचरण करता है। यदि मनुष्य अन्न और जलका त्याग करके विष्णुके चरणोदकका पान करता है तो वह इस पृथ्वीपर पुनर्जन्म नहीं लेता है। अपने प्रयत्नसे तीर्थमें गये हुए उस प्राणीकी रक्षा वनदेवता करते हैं। विशेष बात यह है कि यमदूत और यमलोककी यातनाएँ उसके संनिकटतक नहीं आ पाती हैं। जो व्यक्ति पापोंसे दूर रहता हुआ तीर्थवास करता है, यदि वह वहाँपर मृत्युको प्राप्त करे और उसका शवदाह हो तो वह उस तीर्थके फलका भागीदार होता है। सदैव तीर्थसेवन करनेपर भी प्राणी यदि किसी दूसरे स्थानपर मरता है तो वह श्रेष्ठ कुल और उत्तम देशमें जन्म लेकर एक विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मण होता है। हे तार्क्ष्य! यदि निराहारव्रत करके भी मनुष्य पुनः जीवित रहता है तो

* मृत्युका निश्चय होनेपर तीन या चार दिन अन्न-जलका सर्वथा परित्याग अनशन है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि यह अनशन आत्महत्या न होकर व्रत है।

ब्राह्मणोंको बुलाकर जो कुछ उसके पास हो वह सर्वस्व उन्हें दानमें दे दे। ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वह चान्द्रायणव्रतका पालन करे, सदा सत्य बोले और धर्मका ही आचरण करे।

मृत्युके उद्देश्यसे तीर्थमें जाकर कोई भी मनुष्य पुनः अपने घर वापस आ जाता है तो वह ब्राह्मणोंकी आज्ञा प्राप्त करके प्रायश्चित्त करे। स्वर्ण, गौ, भूमि, हाथी और घोड़ेका दान करके जो मनुष्य मृत्युकालमें तीर्थमें पहुँच जाय, वह भाग्यवान् है। मरण-कालके संनिकट होनेपर घरसे तीर्थके लिये प्रस्थान करनेवाले व्यक्तिको पग-पगपर गोदानका फल प्राप्त होता है, यदि उससे हिंसा न हो। घरमें जो पाप किया गया है, वह तीर्थ-स्नानसे शुद्ध हो जाता है। परंतु यदि प्राणी तीर्थमें पाप करता है तो वह वज्रलेपके समान हो जाता है[१]। जबतक सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आकाशमें विद्यमान रहते हैं, तबतक वह निस्संदेह कष्ट झेलता है। वहाँपर दिये गये दानोंका फल प्राप्त नहीं होता है। आतुरावस्थामें निर्धन प्राणियोंको विशेष रूपसे गौ, तिल, स्वर्ण तथा सप्तधान्यका दान करना चाहिये।

दान देनेवाले पुरुषको देखकर सभी स्वर्गवासी देवता, ऋषि तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराज प्रसन्न होते हैं। जबतक अपने द्वारा अर्जित धन है, तबतक ब्राह्मणको उसका दान देना चाहिये; क्योंकि मरनेपर वह सब पराधीन ही हो जायगा[२]। वैसी स्थितिमें दयावान् बन करके भला कौन दान देगा? मृत पिताके पारलौकिक सुखके उद्देश्यसे जो पुत्र ब्राह्मणको दान देता है, उससे वह पुत्र-पौत्र और प्रपौत्रोंके साथ धनवान् हो जाता है। पिताके निमित्त दिया गया दान सौ गुना, माताके लिये हजार गुना, बहनके लिये दस हजार गुना, सहोदर भाईके लिये किया गया दान असंख्य गुना पुण्य प्रदान करनेवाला होता है। यदि लोभ, प्रमाद अथवा व्यामोहसे ग्रसित होकर लोग अपने मृतकोंके लिये दान नहीं देते हैं तो सभी मरे हुए प्राणी यह सोचते हैं कि मेरे परिवारके सगे सम्बन्धी कंजूस और पापी हैं। अत्यन्त कष्टसे अर्जित और स्वभावतः चञ्चल धनकी गति मात्र एक ही है और वह है दान। उसकी दूसरी गति तो विपत्ति ही है[३]।

यह मेरा पुत्र है, ऐसा समझकर पुत्रसे प्रेम करनेवाले अपने पतिको देख करके जिस प्रकार दुराचारिणी स्त्री उसका उपहास करती है, उसी प्रकार मृत्यु शरीरके रक्षक और पृथ्वी धनके रक्षकका उपहास करती है। हे तार्क्ष्य! जो मनुष्य उदार, धर्मनिष्ठ तथा सौम्य स्वभावसे युक्त है, वह अपार धन प्राप्त करके भी अपनेको तथा धनको तिलके समान तुच्छ मानता है। ऐसे उदात्त चरित्रवाले श्रेष्ठ पुरुषको अर्थोपद्रव नहीं होता है, उसको किसी प्रकारका मोहजाल अपने चक्करमें नहीं जकड़ पाता है। मृत्युकालमें यमदूतोंके द्वारा उत्पन्न किया गया किसी प्रकारका भय उसके सामने टिकनेमें समर्थ नहीं होता है।

हे काश्यप! धर्मकी रक्षा या किसीके उद्देश्यसे जलमें डूब करके प्राणोत्सर्ग करनेसे सात हजार वर्ष, अग्निमें कूदकर आत्मदाह करनेपर ग्यारह हजार वर्ष, वायुके वेगमें जीवनलीला समाप्त करनेपर सोलह हजार वर्ष, युद्धभूमिमें वीरगति प्राप्त करनेपर साठ हजार वर्ष तथा गोरक्षार्थ मरण होनेपर अस्सी हजार वर्षतक स्वर्गकी प्राप्ति होती है, किंतु निराहारव्रतका पालन करते हुए प्राणोंका परित्याग करनेपर व्यक्तिको अक्षयगतिका लाभ होता है[४]। (अध्याय ३६)

१-गृहात् प्रचलितस्तीर्थं मरणे समुपस्थिते। पदे पदे तु गोदानं यदि हिंसा न जायते॥
गृहे तु यत् कृतं पापं तीर्थस्नानेन शुध्यति। कुरुते तत्र पापं चेद्वज्रलेपसमं हि तत्॥ (३६। २४-२५)

२-आत्मायत्तं धनं यावत् तावद् विप्रे समर्पयेत्। पराधीनं मृते सर्वं कृपया कः प्रदास्यति॥ (३६। २९)

३-पितुः शतगुणं दत्तं सहस्रं मातुरुच्यते। भगिन्या शतसाहस्रं सोदर्ये दत्तमक्षयम्॥
यदि लोभान्न यच्छन्ति प्रमादान्मोहतोऽपि वा। मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पापिनस्त्विति॥
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥ (३६। ३१—३३)

४-समाः सहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ पवने च षोडश। महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके काश्यप चाक्षया गतिः॥ (३६। ३७)

# और्ध्वदैहिक कर्ममें उदकुम्भदानका माहात्म्य

**तार्क्ष्यने कहा**—हे जनार्दन! जिस प्रकारसे जलपूर्ण कुम्भका दान करना चाहिये, उसका वर्णन करें। यह कार्य किस विधिसे करना चाहिये? इसके लक्षण कैसे हैं? इसकी पूर्ति कैसे होती है? इसको किसे देना चाहिये? प्रेतोंको संतुष्टि प्रदान करनेमें समर्थ इन कुम्भोंका दान किस कालमें उचित है? यह बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! जलपूर्ण कुम्भदानके विषयमें पुन: मैं तुम्हें भली प्रकारसे बता रहा हूँ। हे महापक्षिन्! अन्न और जलसे परिपूर्ण कुम्भोंका दान प्रेतके उद्देश्यसे देना चाहिये। यह दान विशेषरूपसे प्रेतके लिये मुक्तिदायक है। बारहवें दिन, छठे मास,

त्रिपक्ष और वार्षिक श्राद्धके दिन विशेषरूपसे जीवको यममार्गमें सुख प्रदान करनेके लिये उदकुम्भ देना चाहिये। गोबरसे भलीभाँति लीपकर स्वच्छ बनायी गयी भूमिपर प्रतिदिन तिल या पक्वान्नसे युक्त जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। उसी स्थानपर प्रेतके निमित्त स्वेच्छासे उस पात्रका दान भी दे देना चाहिये। उससे प्रसन्न होकर प्रेत यमदूतोंके साथ चला जाता है।

प्रेतके द्वादशाह-संस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भोंका दान विशेष महत्त्व रखता है। यजमान उस दिन बारह जलभरे घटोंका संकल्प करके दान करे। उसी दिन वह पक्वान्न और फलसे परिपूर्ण एक वर्द्धनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान् विष्णुके लिये संकल्प करके सुयोग्य एवं सच्चरित्र ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक वर्द्धनी, पक्वान्न तथा फल धर्मराजको समर्पित करे। उससे संतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोक्ष प्रदान करते हैं। उसी समय एक वर्द्धनी चित्रगुप्तके लिये दानमें देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

अपने मृत पिताके कल्याणार्थ उड़द और जलसे पूर्ण सोलह घटोंका दान दे। उसका विधान यह है कि उत्क्रान्ति श्राद्धसे लेकर षोडश श्राद्धतकके लिये सोलह ब्राह्मणोंको एक-एक घट दानमें दिया जाय। एकादशाहसे लेकर वर्षपर्यन्त प्रतिदिन नियमपूर्वक पक्वान्न एवं जलसे पूर्ण एक घटका दान देय है। हे खगेश्वर! यह बात तो उचित है कि जलपूर्ण पात्र और पक्वान्नपूरित बड़े घटोंका दान नित्य दिया जाय, किंतु वहींपर एक वर्द्धनी (कलश) ऐसी होनी चाहिये जिसके ऊपर बाँस-निर्मित पात्रमें मिष्टान्न रखकर पितृका आह्वान करके कुंकुम, अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थोंसे उनका पूजन करे। तत्पश्चात् वस्त्राच्छादन करके विधिवत् संकल्पपूर्वक वैदिक धर्माचरणसे परिपूर्ण कुलीन ब्राह्मणको नित्य ऐसे एक-एक घट दान दे। यह दान विद्या और सदाचारसे युक्त ब्राह्मणको ही देना चाहिये। कभी मूर्खको यह दान न दे, क्योंकि वेदसम्मत आचार-विचारवाला ब्राह्मण यजमान और स्वयंका भी उद्धार करनेमें समर्थ है। (अध्याय ३७)

# तीर्थमरणकी महिमा, अन्त समयमें भगवन्नामकी महिमा, शालग्रामशिला तथा तुलसीकी सन्निधिमें मरणका फल, मुक्तिदायक तथा स्वर्गदायक प्रशस्त कर्म, इष्टापूर्तकर्म तथा अनाथ प्रेतके संस्कारका माहात्म्य

**तार्क्ष्यने कहा**—हे प्रभो! दान एवं तीर्थ करनेवालेको स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। अब आप इसका ज्ञान मुझे करायें। हे स्वामिन्! किस दान और तीर्थ-सेवनसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है? किस दान एवं तीर्थके पुण्यसे प्राणी चिरकालतक स्वर्गमें रह सकता है? क्या करनेसे वह स्वर्गलोक एवं सत्यलोकसे तेजोलोकमें जाता है। किस पापसे मनुष्य नाना प्रकारके नरकोंमें डूबता रहता है। हे भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् जनार्दन! आप मुझको यह भी बतानेकी कृपा करें कि कहाँपर मृत्यु होनेसे प्राणीको स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त होता है, जिससे कि पुनर्जन्म नहीं होता।

**श्रीविष्णुने कहा**—हे गरुड! भारतवर्षमें मानवयोनि तेरह जातियोंमें विभक्त है। यदि उसको प्राप्त करके मनुष्य अपने अन्तिम जीवनका उत्सर्ग तीर्थमें करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं।* प्राणोंके कण्ठगत हो जानेपर 'मैं संन्यासी हो गया'—ऐसा जो कह दे तो मरनेपर विष्णुलोक प्राप्त करता है। पुनः पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता।

जो मनुष्य मृत्युके समय एक बार 'हरि' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह मानो मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है। जो मनुष्य प्रतिदिन 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण'—यह कहकर मेरा स्मरण करता है, उसको मैं नरकसे उसी प्रकार निकाल देता हूँ जिस प्रकार जलका भेदन कर कमल ऊपर निकल जाता है। जहाँपर शालग्राम शिला है या जहाँपर द्वारवती शिला है किंवा जहाँपर इन दोनों शिलाखण्डोंका संगम है, वहाँ प्राणीको मुक्ति निस्संदेह ही प्राप्त होती है। समस्त पाप एवं दोषोंका विनाश करनेवाली शालग्राम शिला जहाँ विद्यमान है, वहाँ उसके सांनिध्यमें मृत्यु होनेसे जीवको निस्संदेह मोक्ष मिलता है—

**मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते क्षितौ।**
**सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्॥**
**बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।**
**कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः॥**
**जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्।**
**शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला॥**
**उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः।**
**शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा॥**
**तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता।**

(३८।७—११)

हे खग! तुलसीका वृक्ष लगाने, पालन करने, सींचने, ध्यान-स्पर्श और गुणगान करनेसे मनुष्योंके पूर्व जन्मार्जित पाप जलकर विनष्ट हो जाते हैं—

* अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका॥ पुरी द्वारवती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः। (३८।५-६)

**रोपणात् पालनात् सेकाद्ध्यानस्पर्शनकीर्तनात्।**
**तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग॥**

(३८।११)

राग-द्वेषरूपी मलको दूर करनेमें समर्थ, ज्ञानरूपी जलाशयके सत्यरूपी जलसे युक्त मानसतीर्थमें जिस मनुष्यने स्नान कर लिया है, वह कभी पापोंसे संलिप्त नहीं होता। देवता कभी काष्ठ और पत्थरकी शिलामें नहीं रहते, वे तो प्राणीके भावमें विराजमान रहते हैं। इसलिये सद्भावसे युक्त भक्तिका सम्यक् आचरण करना चाहिये—

**ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।**
**यः स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः॥**
**न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां कदाचन।**
**भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावं समाचरेत्॥**

(३८।१२-१३)

मछुआरे प्रतिदिन प्रातःकाल जाकर नर्मदा नदी (पुण्य तीर्थ)-का दर्शन करते हैं; किंतु वे शिवलोक नहीं पहुँच पाते हैं; क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति बलवान् होती है। मनुष्योंके चित्तमें जैसा विश्वास होता है, वैसा ही उन्हें अपने कर्मोंका फल प्राप्त होता है। वैसी ही उनकी परलोक-गति होती है।

ब्राह्मण, गौ, स्त्री और बालककी हत्या रोकनेके लिये जो व्यक्ति अपने प्राणोंका बलिदान करनेमें तत्पर रहता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है—

**ब्राह्मणार्थे गवार्थे च स्त्रीणां बालवधेषु च।**
**प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥**

(३८।१६)

जो निराहार व्रतके द्वारा मृत्यु प्राप्त करता है, उसे भी मुक्ति प्राप्त होती है। वह सभी बन्धनोंसे निर्मुक्त हो जाता है। ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर सकता है।

हे गरुड! सभी प्राणियोंके लिये जैसे मोक्षमार्ग हैं, वैसे ही स्वर्गके मार्ग भी हैं। यथा—गोशालामें, देश-विध्वंस होनेपर, युद्धभूमि एवं तीर्थस्थलमें मृत्यु श्रेयस्कर है। प्राणी वहाँ अपने शरीरका परित्याग करके चिरकालतक स्वर्गवासका लाभ ले सकता है। पण्डितको जीवन और मरण इन दो तत्त्वोंपर ही ध्यान देना चाहिये। अतः वे दान तथा भोगसे जीवन धारण करें और युद्धभूमि एवं तीर्थमें मृत्युको प्राप्त करें। जो मनुष्य हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, प्रभास, श्रीशैल, अर्बुद (आबू पर्वत), त्रिपुष्कर तथा शिवक्षेत्रमें मरता है, वह जबतक ब्रह्माका एक दिन पूरा नहीं हो जाता, तबतक स्वर्गमें रहता है। उसके बाद वह पुनः पृथ्वीपर आ जाता है। जो व्यक्ति सच्चरित्र ब्राह्मणको एक वर्षतक जीवन-निर्वाहके लिये अन्न-वस्त्रादिका दान देता है, वह सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें निवास करता है।

जो अपनी कन्याका विवाह वेदपारंगत ब्राह्मणके साथ करता है, वह अपने कुल-परिवारके सहित इन्द्रलोकमें निवास करता है। महादानोंको देकर भी मनुष्य ऐसा ही फल प्राप्त करता है। वापी, कूप, जलाशय, उद्यान एवं देवालयोंका जीर्णोद्धार करनेवाला पूर्व कर्ताकी भाँति फल प्राप्त करता है अथवा जीर्णोद्धारसे कर्ताका पुण्य दुगुना हो जाता है। जो मनुष्य विद्वान् ब्राह्मणके परिवारकी शीत, वायु और धूपसे रक्षा करनेके लिये घास, फूस और पत्तोंसे बनी झोपड़ीका दान देता है, वह साढ़े तीन करोड़ वर्षतक स्वर्गमें निवास करता है।

जो सवर्णा सती स्त्री अपने मृत पतिका अनुगमन करे, वह मृत्युके बाद शरीरमें रोमोंकी जितनी संख्या है, उतने वर्षोंतक स्वर्गका भोग करती है। पुत्र-पौत्रादिका परित्याग करके जो अपने पतिका अनुगमन करती है, वे दोनों पति-पत्नी दिव्य स्त्रियोंसे अलंकृत होकर स्वर्गका सुख-वैभव प्राप्त करते हैं। सदैव पतिसे द्रोह रखनेवाली

स्त्री अनेक प्रकारके पापोंको करके भी जब मरे हुए उस पतिका अनुगमन चितापर चढ़कर करती है तो उन सभी पापोंको धो डालती है। यदि किसी सच्चरित्र नारीका पति महापापोंका आचरण करता हुआ दुष्कर्मी बन जाता है तो वह स्त्री अपने सदाचरणसे उसके सभी पापोंको विनष्ट कर देती है।

जो व्यक्ति नियमपूर्वक प्रतिदिन मात्र एक ग्रास भोजनका दान करता है, वह चार चामरसे युक्त दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोक जाता है। जिस मनुष्यके द्वारा आजीवन पाप-कर्म किया गया है, वह ब्राह्मणको एक वर्षके लिये जीवन-निर्वाहकी वृत्ति देकर उस पापको विनष्ट कर देता है। विप्र-कन्याका विवाह करानेवाला व्यक्ति भूत, भविष्य और वर्तमानके तीनों जन्मके अर्जित पापोंको नष्ट कर देता है।

दस कूपके समान एक बावली होती है। दस बावलीके समान सरोवर होता है और दस सरोवरके समान पुण्य-शालिनी वह प्रपा (पौंसरा) होती है। जो वापी जलरहित वन एवं देशमें बनवायी जाती है और जो दान निर्धन ब्राह्मणको दिया जाता है तथा प्राणियोंपर जो दया की जाती है, उसके पुण्यसे कर्ता स्वर्गलोकका नायक बन जाता है।*

इसी प्रकार अन्य बहुत-से सुकृत हैं, जिनको करके मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है। वह उन सभी पुण्योंके फलको ग्रहण करके परम प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है।

व्यर्थके कार्योंको छोड़कर निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये। इस पृथ्वीपर दान, दम और दया—ये ही तीन सार हैं। दरिद्र, सज्जन ब्राह्मणको दान, निर्जन प्रदेशमें स्थित शिवलिङ्गका पूजन और अनाथ प्रेतका संस्कार—करोड़ों यज्ञका फल प्रदान करता है—

**फल्गु कार्यं परित्यज्य सततं धर्मवान् भवेत्।**
**दानं दमो दया चेति सारमेतत् त्रयं भुवि॥**
**दानं साधोर्दरिद्रस्य शून्यलिंगस्य पूजनम्।**
**अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलप्रदः॥**

(३८। ३९-४०)

(अध्याय ३८)

# आशौचकी व्यवस्था

**तार्क्ष्यने कहा**—हे प्रभो! चित्तमें शुचित्व और अशुचित्वके विवेकके लिये और जनहितार्थ आप मुझपर दया करके सूतक-विधिका वर्णन करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षीन्द्र! मृत्यु तथा जन्म होनेपर चार प्रकारका सूतक होता है, सामान्यतः जो चारों वर्णोंके द्वारा यथाविधि दूर करनेके योग्य है। जननाशौच और मरणाशौच होनेपर दस दिनोंतक उस कुलका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस कालमें दान, प्रतिग्रह, होम और स्वाध्याय बंद हो जाता है। देश, काल, आत्मशक्ति, द्रव्य, द्रव्यप्रयोजन, औचित्य तथा वयको जान करके ही अशौच-कर्मके विहित नियमोंका पालन करना चाहिये।

गुफा और अग्निमें प्रवेश तथा देशान्तरमें जाकर मरे हुए परिजनोंका अशौच तत्काल वस्त्रसहित स्नान करनेसे समाप्त हो जाता है। जो प्राणी गर्भस्राव या गर्भसे निकलते ही मर जाते हैं, उनका अग्निदाह, अशौच एवं तिलोदक संस्कार नहीं होता है। शिल्पी, विश्वकर्मा, वैद्य, दासी, दास,

* दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः। सरोभिर्दशभिस्तुल्या या प्रपा निर्जले वने॥
या वापी निर्जले देशे यद्दानं निर्धने द्विजे। प्राणिनां यो दयां धत्ते स भवेन्नाकनायकः॥ (३८। ३६-३७)

राजा और श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी सद्यः शुद्धि बतायी गयी है। याज्ञिक (व्रतपरायण), मन्त्रपूत, अग्निहोत्री तथा राजा सदैव शुद्ध होते हैं। इन्हें अशौच नहीं होता है। राजागण जिसकी इच्छा करते हैं, वह भी पवित्र ही रहता है।

हे द्विज! बच्चेका जन्म होनेपर सपिण्डों और सगोत्रियोंको एक-जैसा अशौच नहीं होता। दस दिनके बाद माता शुद्ध हो जाती है और पिता तत्काल स्नान करके ही स्पर्शादिके लिये पवित्र हो जाता है। मनुने कहा है कि विवाहोत्सव तथा यज्ञके आयोजनमें यदि जन्म या मृत्युका सूतक हो जाता है तो पूर्व मानस संकल्पित धन और पूर्वनिर्मित खाद्यसामग्रीका उपयोग करनेमें दोष नहीं है। सभी वर्णोंके लिये अशौच समानरूपसे माननीय है। माता-पिताको जो सूतक होता है, उसमें माताके लिये तो सूतक होता है और पिता स्नान करके तुरंत शुद्ध हो जाता है। दस दिनके लिये प्रवृत्त जननाशौच और मरणाशौचके अन्तर्गत यदि पुनः जन्म-मरण हो जाता है, तो पूर्वप्रवृत्त अशौचको तीन भागोंमें विभक्त करके यदि पुनर्जन्म-मरण दो भागके अन्तर्गत हुआ है तो पूर्व अशौचकी निवृत्तिके दिनसे उत्तराशौचकी भी निवृत्ति हो जायगी। किंतु यदि पूर्वप्रवृत्त अशौचके तीसरे भागमें पुनराशौच प्रवृत्त हुआ है तो उत्तराशौचमें प्रवृत्तिके समाप्तिपर ही यदि सूतक दशाहके बीच पुनः किसी सगोत्रीका मरण या जन्म होता है तो इस अशौचकी जबतक शुद्धि नहीं होती तबतक अशौच रहता है।*

ऋषियोंने कहा है कि मनमें दान देनेकी भावना उत्पन्न हो जानेपर समय जैसा भी हो दीन-दुःखी ब्राह्मणको विनम्रतापूर्वक दान देना चाहिये, उसमें दोष नहीं होता है।

अशौच होनेपर मनुष्य पहले मिट्टीके पात्रसे तिलमिश्रित जलका स्नानकर शरीरपर मिट्टीका लेप करे, तत्पश्चात् स्वच्छ जलसे पुनः स्नान करके शुद्ध हो।

अशौचके बाद दान सभासदको देना चाहिये। सुवर्ण, गौ और वृषका दान ब्राह्मणको देना चाहिये। ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रिय दुगुना, वैश्य तिगुना तथा शूद्र चौगुना धन ब्राह्मणको दान दे। गृह्यसूत्रोक्त संस्कारसे रहित होनेपर सातवें अथवा आठवें वर्षमें मृत्यु हो जाय तो जितने वर्षका वह मृतक व्यक्ति था उतने दिनका अशौच मानना चाहिये। ब्राह्मण और स्त्रीकी रक्षाके लिये जो अपने प्राणोंका परित्याग करते हैं तथा जो लोग गोशाला तथा रणभूमिमें प्राणोंका परित्याग करते हैं, उनका अशौच एक रात्रिका होता है। जो नरश्रेष्ठ अनाथ प्रेतका संस्कार करते हैं, उन ब्राह्मणोंका किसी शुभ कर्ममें कुछ भी अशुभ नहीं होता है। ब्राह्मणके सहयोगसे अन्य वर्णवाले जो इस कर्मको सम्पन्न करते हैं, उनका भी कुछ अशुभ नहीं होता है। स्नान करनेसे उनकी सद्यः शुद्धि हो जाती है।

अशौचसे विधिवत् शुद्ध होकर जब शूद्र जलके मध्य स्नान कर रहे हों तभी ब्राह्मणको उन्हें देखना चाहिये। (अध्याय ३९)

---

* आद्यं भागद्वयं यावत् सूतकस्य तु सूतके। द्वितीये पतिते त्वाद्यात् सूतकाच्छुद्धिरिष्यते॥ (ब्रह्मपुराण)

# दुर्मृत्यु होनेपर सद्गतिलाभके लिये नारायणबलिका विधान

**तार्क्ष्यने कहा**—भगवन्! किन्हीं ब्राह्मणोंकी अपमृत्यु होती है, उनका पारलौकिक मार्ग कैसा है? उन्हें वहाँ कैसा स्थान प्राप्त होता है? उनकी कौन-सी गति होती है? उनके लिये क्या उचित है और क्या विधान है? हे मधुसूदन! मैं उन सभी बातोंको सुनना चाहता हूँ। कृपया आप उनका वर्णन करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे गरुड! जो ब्राह्मण विकृत मृत्युके कारण प्रेत हो गये हैं, उनके मार्ग, पारलौकिक गति, स्थान और प्रेतकर्म-विधानको मैं कह रहा हूँ। यह परम गोपनीय है, इसे तुम सुनो। जो ब्राह्मण खाई, नदी, नाला लाँघते हुए और सर्प आदिके काटनेसे मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु गला दबाने तथा जलमें डुबानेसे होती है, जो दुर्बल ब्राह्मण हाथीकी सूँड़के प्रहारसे, विषपानसे, क्षीण होकर, अग्निदाह, साँड़-प्रहार तथा विषूचिका (हैजा) रोगसे मरते हैं, जिनके द्वारा आत्महत्या कर ली जाती है, जो गिरकर, फाँसी लगाकर और जलमें डूबकर मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुनो।

जो ब्राह्मण म्लेच्छादि जातियोंद्वारा मारे जाते हैं, वे घोर नरक प्राप्त करते हैं। जो कुत्ता, सियारादिके स्पर्श, दाह-संस्काररहित, कीटाणुओंसे परिव्याप्त, वर्णाश्रम-धर्मसे दूर और महारोगोंसे पीड़ित होकर मरते हैं, दोषसिद्ध, व्यङ्ग्यपूर्ण बात, पापियोंके द्वारा प्रदत्त अन्नका सेवन करते हैं, चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, विद्युत्-निपात, अग्नि, दन्तधारी पशु तथा वृक्षादि पतनके कारण जिनकी अपमृत्यु होती है, जो रजस्वला, प्रसवा, शूद्रा और धोबिनके सहवाससे दोषयुक्त हो गये हैं, वे सभी उस पापसे नरक-भोग करके प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं। परिजनोंको उनका दाह-संस्कार, अशौच-निवृत्ति एवं जलक्रियाका कर्म नहीं करना चाहिये। हे तार्क्ष्य! ऐसे पापियोंका नारायणबलिके बिना मृत्युका आद्य कर्म, और्ध्वदैहिक कर्म भी नहीं करना चाहिये।

हे पक्षिराज! सभी प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये पाप और भयको दूर करनेवाली उस नारायणबलिके विधानको सुनो। छः मासकी अवधिमें ब्राह्मण, तीन मासमें क्षत्रिय, डेढ़ मासमें वैश्य तथा शूद्रकी तत्काल दाह (पुत्तलिका-दाह)-क्रिया करनी चाहिये। गङ्गा, यमुना, नैमिष, पुष्कर, जलपूर्ण तालाब, स्वच्छ जलयुक्त गम्भीर जलाशय, बावली, कूप, गोशाला, घर या मन्दिरमें भगवान् विष्णुके सामने ब्राह्मण इस नारायणबलिको सम्पन्न करायें। पौराणिक और वैदिक मन्त्रोंसे प्रेतका तर्पण किया जाय। इसके बाद यजमान सभी औषधियोंसे युक्त जल तथा अक्षत लेकर विष्णुका भी तर्पण पुरुषसूक्त अथवा अन्य वैष्णवमन्त्रोंसे करके दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतका विष्णुरूपमें इस मन्त्रसे ध्यान करे—

**अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥**
**अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्।**

(४०। १७-१८)

अनादि, अनन्त, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले अव्ययदेव पुण्डरीकाक्ष भगवान् प्रेतको मोक्ष प्रदान करें।

तर्पण समाप्त हो जानेके पश्चात् रागमुक्त, ईर्ष्या-द्वेष-रहित, जितेन्द्रिय, पवित्र, धर्मपरायण, दानधर्ममें संलग्न, शान्तचित्त, एकाग्रचित्त होकर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तथा वाणीपर संयम रखते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ यजमान शुद्ध हो। उसके बाद भक्तिपूर्वक वहाँ एकादश श्राद्ध करे। समाहित होकर जल, धान, यव, साठी धान, गेहूँ, कंगनी (टाँगुन), शुभ हविष्यान्न, मुद्रा, छत्र, पगड़ी,

वस्त्र, सभी प्रकारके धान्य, दूध तथा मधुका दान ब्राह्मणको दे। वस्त्र और पादुकासे युक्त आठ प्रकारके पददान बिना पंक्तिभेद किये (समानरूपसे) सभी ब्राह्मणोंको इस अवसरपर देना चाहिये।

पृथ्वीपर पिण्डदान हो जानेके पश्चात् शङ्खपात्र तथा ताम्रपात्रमें पृथक्-पृथक् गन्ध-अक्षत-पुष्पयुक्त तर्पण करे। ध्यान-धारणासे एकाग्र मन हो, घुटनोंके बल पृथ्वीपर टिक करके, वेद-शास्त्रोंके अनुसार सभी ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्धमें ऋचाओंसे पृथक्-पृथक् अर्घ्य देना चाहिये। उस समय '**आपोदेवीर्मधुमती०**' इत्यादि मन्त्रसे पहले पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। उसके बाद '**उपयाम गृहीतोऽसि०**' इस मन्त्रसे दूसरे, '**येनापावक चक्षुषा०**' मन्त्रसे तीसरे, '**ये देवासः०**' मन्त्रसे चौथे, '**समुद्रं गच्छ०**' मन्त्रसे पाँचवें, '**अग्निर्ज्योति०**' मन्त्रसे छठे, '**हिरण्यगर्भ०**' मन्त्रसे सातवें, '**यमाय०**' मन्त्रसे आठवें, '**यज्जाग्र०**' मन्त्रसे नवें, '**या फलिनी०**' मन्त्रसे दसवें तथा '**भद्रं कर्णेभिः०**' मन्त्रसे ग्यारहवें पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करके उनका विसर्जन करे।

एकादशदैवत्य श्राद्ध करके दूसरे दिन श्राद्ध आरम्भ करे। उस दिन चारों वेदके ज्ञाता, विद्याशील और सद्गुण-सम्पन्न, वर्णाश्रम-धर्मपालक, शीलवान्, श्रेष्ठ, अविकल अङ्गोंवाले प्रशस्त और कभी त्याज्य न होनेयोग्य उत्तम पाँच ब्राह्मणोंका आवाहन करे। तदनन्तर सुवर्णसे विष्णु, ताम्रसे रुद्र, चाँदीसे ब्रह्मा, लोहेसे यम, सीसा अथवा कुशसे प्रेतकी प्रतिमा बनवा करके '**शन्नोदेवी०**' इस मन्त्रसे विष्णुदेवको पश्चिम दिशामें, '**अग्न आयाहि०**' मन्त्रसे रुद्रको उत्तर दिशामें, '**अग्निमीळे**' मन्त्रसे ब्रह्माको पूर्व दिशामें, '**इषेत्वोर्जेत्वा०**' मन्त्रसे यमको दक्षिण दिशामें तथा मध्यमें मण्डल बनाकर कुशमय नर स्थापित करना चाहिये।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और प्रेत—इन पाँचोंके लिये पञ्चरत्नयुक्त कुम्भ अलग-अलग रखे। इन सभी देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् रूपसे वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा मुद्रा प्रदान करे एवं पृथक्-पृथक् तत्तन्मन्त्रोंसे उनका जप करे। उसके बाद यथाविधि देवोंके निमित्त पाँच श्राद्ध करने चाहिये। तत्पश्चात् शङ्ख अथवा ताम्रपात्र या इनके अभावमें मिट्टीके पात्रमें सर्वौषधिसमन्वित तिलोदक लेकर पृथक्-पृथक् पीठपर प्रदान करे। हे खगेश्वर! आसन, पादुका, छत्र, अँगूठी, कमण्डलु, पात्र, भोजन-पदार्थ और वस्त्र—ये आठ पद माने गये हैं, इनके साथ ही स्वर्ण तथा दक्षिणासे युक्त एक तिलपूर्ण ताम्रपात्र विधिपूर्वक मुख्य ब्राह्मणको दान देना चाहिये। ऋग्वेद-पारंगत ब्राह्मणको हरी-भरी फसलसे युक्त भूमि, यजुर्वेद-निष्णात ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय, शिवके उद्देश्यसे सामवेदका गान करनेवाले ब्राह्मणको स्वर्ण, यमके उद्देश्यसे तिल, लौह और दक्षिणा देनी चाहिये।

सर्वौषधिसे समन्वित कुशद्वारा निर्मित पुरुषाकृति पुत्तलकका निर्माण करके कृष्णाजिनको बिछाकर उसे स्थापित करे और पलाशका विभाग करके तीन सौ साठ वृन्तोंसे पुत्तलककी हड्डियोंका निर्माण करे। यथा—शिरोभागमें चालीस वृन्त, ग्रीवामें दस, वक्षःस्थलमें बीस, उदरमें बीस, दोनों भुजाओंमें सौ, कटिप्रदेशमें बीस, दोनों ऊरुओंमें सौ, दोनों जंघाओंमें तीस, शिश्न-स्थानमें चार, दोनों अण्डकोशोंमें छः और पैरकी अंगुलियोंमें दस वृन्तोंसे उस कल्पित प्रेत-पुरुषकी अस्थियोंका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके शिरोभागपर नारियल, तालुप्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वाभागमें केला, आँतोंके स्थानपर कमलनाल, प्राणभागमें बालू, वसाके स्थानपर मेदक नामक अर्क, मूत्रके स्थानपर गोमूत्र, धातुओंके स्थानमें गन्धक, हरिताल

एवं मन:शिला तथा वीर्यस्थानमें पारद, पुरीष (मल)-के स्थानमें पीतल, सम्पूर्ण शरीरमें मन:शिल, संधिभागोंमें तिलकी पीठी, मांसभागमें यवका आटा, मधु और मोम, केशराशिके स्थानमें बरगदकी बरोह, त्वचाभागमें मृगचर्म, दोनों कर्णप्रदेशमें तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानमें गुंजाफल, नासिकाभागमें कमलपत्र, नाभिप्रदेशमें कमलपुष्प, दोनों अण्डकोशोंके स्थानमें बैगन, लिंगभागमें सुन्दर गाजर एवं नाभिमें घी भरे। कौपीनके स्थानपर त्रपु, दोनों स्तनोंमें मुक्ताफल, सिरमें कुंकुमका लेप, कर्पूर, अगुरु, धूप तथा सुगन्धित पुष्प-मालाओंका अलंकरण, परिधानके स्थानपर पट्टसूत्र और हृदयभागमें रजत-पत्र रखे। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनों सिद्धियोंको संकल्पित करके यजमान दोनों नेत्रोंमें एक-एक कौड़ी भरे। तदनन्तर नेत्रोंके कोणभागमें सिन्दूर भरकर उसको ताम्बूलादि विभिन्न उपहारोंसे सुशोभित करे।

इस प्रकार नाना वस्तुओंसे निर्मित और अलंकृत उस प्रेतको सर्वौषधि प्रदान करके जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार उसकी पूजा करनी चाहिये। जो प्रेत अग्निहोत्र करनेवाला हो, उसको यथाविधि यज्ञपात्र भी देना आवश्यक है। उसके बाद '**शिरोमे श्री०**' तथा '**पुनन्तु वरुण०**'—इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा शालग्राम शिलाको धोकर यजमान उसीसे प्रेतका पवित्रीकरण करे। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये एक दूध देनेवाली सुशील गौका दान किया जाय। तिल, लौह, स्वर्ण, रूई, नमक, सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पुण्यदायक होते हैं। अत: गोदान करनेके बाद यजमान तिलपात्र-दान और पद-दान एवं महादान दे। उसके बाद सभी अलंकारोंसे विभूषित वैतरणी धेनुका दान करे।

प्रेतकी मुक्तिके लिये इस अवसरपर आत्मवान्‌को भगवान् विष्णुके निमित्त श्राद्ध करना चाहिये। तत्पश्चात् हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य करे। अतएव '**ॐ विष्णुरिति०**'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित उस प्रकल्पित प्रेत-पुतलेकी मृत्यु मानकर उसका दाह-संस्कार करे। तदनन्तर तीन दिन सूतक माने। दशाह कर्म करनेवाला यजमान इस बीच प्रेतमुक्तिके लिये पिण्डदान और सभी वार्षिक क्रियाओंको सम्पन्न करता है तो प्रेत अपनी मुक्तिका अधिकार प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ४०)

# वृषोत्सर्गकी संक्षिप्त विधि

**श्रीविष्णुने कहा**—हे खगेश्वर! कार्तिक आदि महीनोंकी पूर्णमासी तिथिको पड़नेवाले शुभ दिनपर विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करना चाहिये। नान्दीमुख श्राद्ध करके वत्सतरीके साथ वृषका विवाह और वृषके खुरके पास श्राद्ध करनेके पश्चात् उन दोनोंका उत्सर्ग करे।

वापी और कूपके निर्माणोत्सर्गके समय गोशालामें विधिवत् संस्कारके अनन्तर अग्निकी स्थापना करनी चाहिये।* विवाह-विधिके समान ब्रह्मा-वरण करना चाहिये। यज्ञीय पात्रोंकी क्रमिक स्थापना, पायस-खीरका पाक, उपयमन कुशादिका क्रमश: स्थापन करे। यज्ञीय पात्रोंका सिंचन करनेके बाद होम करना चाहिये। प्रथम दो आहुति आघार और उसके बाद दो आज्य-भाग संज्ञक आहुतियाँ हैं। अत: '**प्रथमेऽहरिति०**' मन्त्रसे यजमानको छ: आहुतियाँ देनी चाहिये।

आघार और आज्य-भाग संज्ञक चार आहुतियोंके अनन्तर अङ्गदेवता, अग्नि, रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, शिव, भव, महादेव, ईशान और यमको आहुति दे। तत्पश्चात् '**पूषागा०**' इस मन्त्रसे एक पिष्टक होम, चरु तथा पायस दोनोंसे स्विष्टकृत् होम करे। तदनन्तर प्रथम व्याहृति होम, प्रायश्चित्त होम,

* काम्य और नैमित्तिक दो प्रकारका वृषोत्सर्ग होता है। काम्यमें गणेशपूजन, नान्दीश्राद्ध आदि करके ही वृषोत्सर्ग किया जाता है। मरणाशौचके ग्यारहवें दिन किया जानेवाला वृषोत्सर्ग नैमित्तिक वृषोत्सर्ग है। इसमें नान्दीश्राद्ध नहीं किया जाता।

प्रजापति होम, संस्रव (अवशिष्ट जल) प्राशन करे। इसके बाद प्रणीताका परिमोक्षण करे। पवित्र-प्रतिपत्ति (परित्याग) करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे। षडङ्ग रुद्रसूक्तका पाठ करनेसे प्रेतको मोक्षकी प्राप्ति होती है।

एक रंगके वृष और एक वत्सतरीको स्नान कराकर सभी अलंकारोंसे विभूषित करके उन दोनोंको प्रतिष्ठापित करनेसे प्रेतको मोक्ष प्राप्त होता है। इस कर्मके बाद वृषभकी पूँछसे गिरे हुए जलके द्वारा मन्त्रपूर्वक तर्पण-कार्य करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणोंको भोजनसे संतृप्त करके दक्षिणासे संतुष्ट करे।

तदनन्तर यथाविधि एकोद्दिष्ट श्राद्ध करनेका विधान है। उसे करके प्रेतके उद्धार-हेतु ब्राह्मणको जल और अन्नका दान दिया जाता है। उसके बाद द्वादशाह श्राद्ध और मासिक श्राद्ध पृथक्-पृथक् करने चाहिये।

इस विधिका सम्यक् पालन करनेवाला प्रेतको उस योनिसे मुक्त कर देता है। (अध्याय ४१)

# भूमि तथा गोचर्म भूमि आदि दानोंका माहात्म्य और ब्रह्मस्वहरणका दोष

**श्रीविष्णुने कहा**—हे गरुड! जिस प्रकार एक वत्स हजार गायोंके बीच स्थित अपनी माताको प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार पूर्वजन्ममें किया गया कर्म अपने कर्ताका अनुगमन करता है—

**यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।**
**तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥**
(४२।१)

भूमिदान करनेवाले प्राणीका अभिनन्दन सूर्य-चन्द्र, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और भगवान् त्रिशूलधारी शिव करते हैं। इस संसारमें भूमिके समान दान नहीं है। भूमिके समान दूसरी निधि नहीं है। सत्यके समान धर्म नहीं है और असत्यके समान पातक नहीं है—

**नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः।**
**नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥**
(४२।३)

अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी वैष्णवी कहलाती है तथा गाय सूर्यकी पुत्री है। अतः जो व्यक्ति स्वर्ण, गौ एवं पृथ्वीका दान देता है, उसने मानो त्रैलोक्यका दान कर दिया। गौ, पृथ्वी और विद्या इन तीनोंको अतिदान[1] कहा गया है। जप-पूजन तथा होम करके दिये गये ये तीनों दान नरकसे उद्धार करते हैं। बहुत-से पाप तथा क्रूर कर्म करके भी मनुष्य गोचर्म[2] भूमिका दान करनेसे शुद्ध हो जाता है। इस दानमें दी हुई वस्तुको लोभवश हरण करनेवालेको हरण करनेसे रोकना चाहिये। जो उसका परिरक्षण नहीं करता है, वह घोर नरकमें जाता है।

प्राण भले ही कण्ठमें आ जायँ तो भी निषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिये, कर्तव्य कर्म ही करना चाहिये ऐसा धर्माचार्योंने कहा है। किसीकी आजीविकाको नष्ट करनेपर हजार गौओंके वधके समान पाप लगता है तथा किसी जीविकारहितको आजीविका प्रदान करनेपर लक्ष धेनुके दानका फल प्राप्त होता है। गो-हत्यारे आदिसे एक गायको छुड़ा लेना श्रेष्ठ है, उसकी तुलनामें सौ गो-दान करना श्रेष्ठ नहीं है। सौ गो-दान करना गो-हत्यारेसे एक गायको बचा लेनेकी समता नहीं कर सकता।[3] जो व्यक्ति स्वयं दान देकर स्वयं ही उसमें बाधक बन जाता है, वह प्रलयकालतक नरकका भोग करता है।

जीविकारहित निर्धन ब्राह्मणकी रक्षा करनेपर जैसा पुण्य मनुष्यको प्राप्त होता है, वैसा पुण्य विधिवत् दक्षिणासहित अश्वमेध-यज्ञ करनेपर भी सम्भव नहीं है। दुर्बल, त्रस्त ब्राह्मणकी रक्षा करनेमें जो पुण्य है,

---

१-त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येते जपपूजनहोमतः॥ (४२।५)

२-गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम्। तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्मपरिकीर्तितम्॥ (पराशरस्मृति १२।४३)
अर्थात् जितने स्थानपर एक हजार गौएँ और दस बैल स्वतन्त्ररूपसे घूम-फिर सकते हैं, उतना भूमिभाग गोचर्म कहलाता है।

३-वरमेकाप्यपहृता न तु दत्तं गवां शतम्। एकां हत्वा शतं दत्त्वा न तेन समता भवेत्॥ (४२।१०)

वह वेदाध्ययन और प्रचुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ करनेपर नहीं है। बलात् अपहरण किये गये ब्राह्मणोंके धनसे पाले-पोसे तथा समृद्ध बनाये गये वाहन और सैन्य शक्तियाँ युद्धकालमें वैसे ही नष्ट हो जाती हैं जैसे बालूके द्वारा बनाये गये पुल विनष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा दी हुई भूमिका अपहरण करता है, वह साठ हजार वर्षतक विष्ठामें कृमि होकर जन्म लेता है। प्रेमसे जो ब्राह्मणका धन खाता है, वह अपने कुलकी सात पीढ़ीको भस्म कर देता है। उसी ब्रह्मस्वका उपयोग यदि चोरी करके किया जाय तो जबतक चन्द्रमा और तारागणोंकी स्थिति रहती है, तबतक उसकी कुल-परम्परा भस्म हो जाती है। पुरुष कदाचित् लोहे और पत्थरके चूर्णको खाकर पचा सके, किंतु तीनों लोकमें कौन ऐसा व्यक्ति है जो ब्राह्मणके धनको पचानेमें समर्थ हो सकेगा?

देव-द्रव्यका विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका हरण करनेसे और उसकी मर्यादाका उल्लंघन करनेसे प्राणियोंके कुल निर्मूल हो जाते हैं। यदि ब्राह्मण विद्यासे विवर्जित है तो आचार्यत्वादिके लिये वरण करनेके सन्दर्भमें उसका परित्याग करना ब्राह्मणातिक्रमण नहीं है। जलती हुई आगको छोड़कर राखमें हवन नहीं किया जाता है।

संक्रान्तिकालमें जो दान और हव्य-कव्य दिये जाते हैं, वह सब सात कल्पोंतक बार-बार सूर्य दानदाताको प्रदान करता है। प्रतिग्रह, अध्यापन और यज्ञ करवानेके कार्योंमें विद्वान् प्रतिग्रहको ही अपना अभीष्टतम कहते हैं। प्रतिग्रहसे जप-होम और कर्म शुद्ध होते हैं, याजन-कर्मको वेद पवित्र नहीं करते। निरन्तर जप एवं होम करनेवाला तथा इसके द्वारा बनाये गये भोजनको न करनेवाला ब्राह्मण रत्नोंसे परिव्याप्त पृथ्वीका प्रतिग्रह करके भी प्रतिग्रहके दोषसे निर्लिप्त रहता है।* (अध्याय ४२)

## शुद्धि-विधान

**श्रीविष्णुने कहा**—जो जल, अग्नि तथा अन्य किसी बन्धनके भयसे धर्मपथसे विचलित हो गये हैं और जो संन्यास-धर्मका परित्याग करके पतित हो चुके हैं, वे गौ और वृषभका दान देकर दो चान्द्रायणव्रतसे शुद्धि प्राप्त करते हैं। बारह वर्षसे कम और चार वर्षसे अधिक आयुके बालकके पापका प्रायश्चित्त माता-पिता अथवा अन्य बान्धवको करना चाहिये। चार वर्षसे कम आयुवाले बालकका न कोई अपराध है और न कोई पाप। उसके लिये न तो राजदण्ड है और न कोई प्रायश्चित्तका विधान ही है।

यदि रजोदर्शन होनेपर स्त्री रोगग्रस्त हो जाय तो वह चौथे दिन वस्त्रादिका परित्याग करके स्नानसे शुद्ध हो सकती है। आतुरकालमें जननाशौचप्रयुक्त स्नान होनेपर कोई जो रुग्ण न हो ऐसा व्यक्ति दस बार स्नान करके प्रत्येक स्नानके बाद यदि उस आतुर व्यक्तिका स्पर्श करता जाय तो वह आतुर शुद्ध हो जाता है। (अध्याय ४३)

## दुर्मृत्यु तथा अकालमृत्युपर किये जानेवाले श्राद्धादि कर्म और सर्पदंशसे मृत्युपर विहित क्रिया-विधान

**श्रीविष्णुने कहा**—हे तार्क्ष्य! जिनकी मृत्यु स्वेच्छासे आत्मघातके द्वारा होती है, जो सींग और दाँतवाले पशु, सरकनेवाले जीव, चाण्डालादि निम्न जातीय पुरुष, आत्मघात— विषादि अहितकर पेय पदार्थ, आघात-प्रतिघात, जल-अग्निपात और वायु तथा निराहारादिके द्वारा जिनकी मृत्यु होती है,

* सदा जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्णान्न लिप्यते॥ (४२। २२)

उन्हें पापकर्म करनेवाला कहा गया है।* जो पाखण्डी, वर्णाश्रमधर्मसे रहित, महापातकी तथा व्यभिचारिणी स्त्रियाँ और आरूढपतित (संन्यासाश्रममें जाकर पतित होनेवाले) हैं, उनका दाहसंस्कार, नव श्राद्ध एवं सपिण्डन नहीं करना चाहिये। श्राद्ध सोलह बताये गये हैं, उनको भी ऐसे पापियोंके लिये न करे। यदि अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण ऐसा पापकर्म करता है तो घरवाले मरनेपर उसकी जो जीविकावृत्ति है, उसको जलमें फेंक दें और उसके घरकी अग्निको चौराहेपर ले जाकर डाल दें तथा उसके पात्रोंको अग्निमें जला दें।

हे काश्यप! पूर्वोक्त पापियोंकी मृत्युका एक वर्ष पूर्ण हो जाय तो दयावान् परिजनोंको शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको गन्ध-अक्षत-पुष्पादिसे विष्णु और यमकी पूजा करके कुशोंके ऊपर मधुयुक्त और घृतमिश्रित दस पिण्ड देना चाहिये।

मौन होकर तिलके सहित विष्णु और यमका ध्यान करते हुए दक्षिणाभिमुख होकर पूर्वोक्त दस पिण्ड प्रदान करे। उन पिण्डोंको उठाकर और एकमें मिलाकर तीर्थके जलमें डालते हुए मृतकके नाम और गोत्रका उच्चारण करना चाहिये।

इसके बाद पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे विष्णु और यमकी पुनः पूजा करे। उस दिन उपवास रहकर कुल, विद्या, तप और शीलसे सम्पन्न यथासामर्थ्य नौ अथवा पाँच साधु ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उसके दूसरे दिन मध्याह्न कालमें पूर्वदिनके समान पुनः विष्णु एवं यमकी पूजा करके उत्तराभिमुख उन ब्राह्मणोंको आसनपर बैठाये। उसके बाद यज्ञोपवीती कर्ता आवाहन, अर्घ्य तथा दानादिमें विष्णु और यमसे समन्वित प्रेतके नामका कीर्तन करे तथा प्रेत, यम और विष्णुका स्मरण करते हुए श्राद्ध सम्पन्न करे। उस अवसरपर पिण्डदानके लिये अन्य देवोंका भी आवाहन करना चाहिये। उसके बाद उन्हें क्रमशः दस अथवा पाँच पृथक्-पृथक् पिण्ड दे। यथा—पहला पिण्ड विष्णुदेव, दूसरा पिण्ड ब्रह्मा, तीसरा पिण्ड शिव, चौथा पिण्ड भृत्यसहित शिव और पाँचवाँ पिण्ड प्रेतके लिये देय है। प्रेतके नाम एवं गोत्रका स्मरण तथा विष्णु शब्दका उच्चारण करना चाहिये। पिण्डदान होनेके बाद सिर झुकाकर नमस्कार करते हुए पाँचवें पिण्डको कुशोंपर स्थापित करे। तदनन्तर यथाशक्ति गौ-भूमि और पिण्डदानादिके द्वारा उस प्रेतका स्मरण करते हुए कुश तथा तिलसे युक्त उन ब्राह्मणोंके कुशयुक्त हाथोंमें तिल-दान दे।

इसके बाद ब्राह्मणोंको अन्न, ताम्बूल और दक्षिणा देकर श्रेष्ठतम ब्राह्मणकी स्वर्णदानसे पूजा करे। यह दान नाम-गोत्रका स्मरण करते हुए 'विष्णु प्रसन्न हों', ऐसा कहकर देना चाहिये।

तदनन्तर ब्राह्मणोंका अनुगमन करके यजमान दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतके नाम-गोत्रका कीर्तन करते हुए **'प्रीतोऽस्तु'** ऐसा कहकर भूमिपर जल गिरा दे। तत्पश्चात् मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ श्राद्धके अवशिष्ट भोजनको संयत वाक् होकर ग्रहण करे।

तदनन्तर प्रतिवर्ष सांवत्सर श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधानसे करना चाहिये। इस प्रकारकी क्रिया करनेसे पापीजन स्वर्ग चले जायँगे। इसके बाद वे सपिण्डीकरण आदिकी क्रियाओंको करनेपर उसे प्राप्त करते हैं।

यदि प्रमादवश किसी मनुष्यकी जल आदिमें डूबकर अपमृत्यु हो जाती है तो उसके पुत्र या सगे-सम्बन्धीको यथाविधि सभी और्ध्वदैहिक कर्म करने आवश्यक हैं। प्रमादवश अथवा इच्छापूर्वक भी प्राणीको सर्पके सामने कदापि नहीं जाना चाहिये। (ऐसी स्थितिमें सर्प-दंशसे मृत्यु होनेपर) प्रतिमास दोनों पक्षोंकी पञ्चमी तिथिको नागदेवताकी पूजा करे। भूमिपर शालिचूर्णसे नागदेवकी आकृति बनावे। श्वेत पुष्प, सुगंध, धूप,

* स्वेच्छया ताक्ष्र्य मरणं शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। चाण्डालाद्यात्मघातैश्च विषाद्यैस्ताडनैस्तथा॥
जलाग्निपातवातैश्च निराहारादिभिस्तथा। येषामेव भवेन्मृत्युः प्रोक्तास्ते पापकर्मिणः॥ (४४।१-२)

दीप और सफेद अक्षतसे उसकी पूजा करके कच्चा पीसा हुआ अन्न तथा दूध अर्पित करे। उसके बाद उठकर द्रव्य और वस्त्र छोड़ते हुए 'नागराज प्रसन्न हों'—ऐसा कहे।

उस दिन श्राद्ध सम्पन्न करनेके पश्चात् मधुर अन्नका भोजन करे। यथाशक्ति वह उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्णकी बनी हुई नाग-प्रतिमाका दान दे। तदनन्तर उसे गौका दान देकर पुनः '**नागराज प्रीयताम्**'—हे नागराज! आप अब मेरे ऊपर प्रसन्न हों—ऐसा कहे। इसके बाद सामर्थ्यानुसार पूर्ववत् उन कर्मोंको भी निर्देशानुसार करे।

जो मनुष्य अपनी वैदिक शाखाकी विधिके द्वारा ऐसे कर्मको यथावत् करता है, वह उन अपमृत्यु-प्राप्त प्राणियोंको प्रेतत्वसे विमुक्त करके स्वर्गलोकको ले जाता है।

(अध्याय ४४)

# पार्वण आदि श्राद्धोंके अधिकारी; एकसे अधिकको मृत्युपर पिण्डदान आदिकी व्यवस्था; मृत्युतिथि-मासके अज्ञात होनेपर तथा प्रवासकालमें मृत्यु होनेपर श्राद्ध आदिकी व्यवस्था; नित्य एवं दैव तथा वृद्धि आदि श्राद्धोंकी कर्तव्यताका प्रतिपादन

**श्रीविष्णुने कहा**—हे खगेश्वर! अब मैं प्रतिवर्ष होनेवाले पार्वण श्राद्धका वर्णन तुमसे कर रहा हूँ। मृत व्यक्तिके औरस और क्षेत्रज पुत्रको प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। औरस एवं क्षेत्रज पुत्रोंके अतिरिक्त अन्यको एकोद्दिष्ट-विधिसे श्राद्ध करना चाहिये, पार्वण श्राद्ध नहीं।

अग्निहोत्र न करनेवाले मृत ब्राह्मणके क्षेत्रज तथा औरस दोनों पुत्र यदि अग्निहोत्री नहीं हैं तो उन्हें एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिये। प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। यदि पुत्र अथवा पितामेंसे कोई एक साग्निक हो तो प्रतिवर्ष क्षेत्रज और औरसको पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। किंतु कुछ लोगोंका कहना है कि पुत्र अग्निहोत्री हों या न हों, पितृगण भी अग्निहोत्री रहे हों या न रहे हों, फिर भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध पुत्रोंको अपने पिताकी मृत्यु-तिथिपर करना चाहिये। जिसकी मृत्यु दर्शकाल अथवा प्रेतपक्षमें होती है, उसके सभी पुत्र प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करें।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध पुत्रहीन पुरुष और स्त्रीका भी हो सकता है। एकोद्दिष्ट यज्ञकर्ममें समूल कुशका प्रयोग करना चाहिये। बाहरसे कटे हुए अथवा एक बार काटे गये कुश ही श्राद्धमें वृद्धिदायक होते हैं। यदि किये जानेवाले पार्वण श्राद्धके बीच अशौच हो जाता है तो यजमान उस अशौचके समाप्त होनेके बाद श्राद्ध करे। एकोद्दिष्ट श्राद्धका काल आ जानेपर यदि किसी प्रकारका विघ्न आ जाता है तो दूसरे मास उसी तिथिपर वही एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जा सकता है। शूद्र तथा उसकी पत्नी और उसके पुत्रका श्राद्ध मौन अर्थात् मन्त्रोच्चार-रहित होना चाहिये। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीनों द्विजातियोंकी कन्या और यज्ञोपवीत-संस्कारसे हीन ब्राह्मणका भी श्राद्ध तूष्णी (मौन) होकर ही करना धर्म-विहित है। एक ही समयमें एक ही घरके बहुत-से लोगोंकी अथवा दो व्यक्तियोंकी मृत्यु हो गयी हो तो उनके श्राद्धका पाक एक साथ और श्राद्ध पृथक्-पृथक्

करना चाहिये। साथमें मरनेपर विधि इस प्रकार है—पहले पूर्वमृतको, तदनन्तर द्वितीय और तृतीयको क्रमश: पिण्डदान करना चाहिये।

जो आलस्यरहित होकर इस विधानके अनुसार अपने माता-पिताका प्रत्येक वर्ष श्राद्ध करता है, वह उनका उद्धार करके स्वयं भी परम गतिको प्राप्त करता है। यदि किसी प्राणीकी मृत्यु और प्रस्थान-कालका दिन स्मरण नहीं है, किंतु वह मास ज्ञात है तो उसी मासकी अमावास्या-तिथिमें उस मृतककी मृत्यु-तिथि माननी चाहिये। यदि किसीकी मृत्युका मास ज्ञात नहीं है, किंतु दिनकी जानकारी है तो मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघमासमें उसी दिन उसका श्राद्ध किया जा सकता है। जब अपने सम्बन्धीकी मृत्युका दिन एवं मास दोनों अज्ञात हों तो श्राद्ध-कर्मके लिये यात्राके दिन और मास ग्रहण करने चाहिये। जब मृतकके प्रस्थानका भी दिन और मास न ज्ञात हो तो जिस दिन एवं मासमें मृत्युकी बात सुनी गयी हो, उसे ही श्राद्धके लिये उपयुक्त मान ले। बिना प्रवासके भी मृत्यु होनेपर दिन तथा मास दोनों विस्मृत हो गया हो तो पूर्ववत् मृत-तिथिका निर्णय करना चाहिये।

यदि कोई गृहस्थ प्रवासमें है और उसके प्रवासके ही दिनोंमें उसके घरमें किसीकी मृत्यु हुई हो तथा मृत्युके बाद अशौचके दिन बीत चुके हों और अशौचके अनन्तर जो एकादशाह-द्वादशाह आदि श्राद्ध विहित हैं वे चल रहे हों, इसी बीच प्रवासमें रहनेवाला वह गृहस्थ घर आ जाता हो और आनेके बाद ही मृत्युकी जानकारी उसे मिलती हो तो केवल वह गृहस्थ ही अशौचसे ग्रस्त होगा और तत्काल यथाशास्त्र अपनी अशौचकी निवृत्तिके लिये अपेक्षित विधि अपनायेगा। उसके द्रव्यादिपर अशौच नहीं होगा। उसके घर आनेमात्रसे उसकी अशुचिताका प्रभाव श्राद्धके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंपर नहीं पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि यदि श्राद्धका मुख्य अधिकारी सुदूर देशमें है और उसके घर आकर यथाधिकार श्राद्ध करनेकी सम्भावना नहीं बनती है, ऐसी स्थितिमें अन्य अधिकारी पुत्रादिद्वारा यदि श्राद्धकर्म प्रारम्भ कर दिया गया है तो उसे भी श्राद्धप्रक्रिया पूर्ण करनी चाहिये। दाता और भोक्ता दोनोंको जननाशौच अथवा मरणाशौच ज्ञात न हो तो उन दोनोंमें किसीको भी दोष नहीं लगता। जननाशौच और मरणाशौचका ज्ञान भोक्ताको हो जाय और दाताको न हो तो उस समय भोक्ताको ही पाप लगता है, उसमें वह दाता दोषी नहीं होगा।

जिस मृत व्यक्तिकी तिथि ज्ञात नहीं है, उसकी मृत-तिथिका निर्धारण पूर्वोक्त प्रकारसे करके जो श्राद्धादि करता है, वह मृत व्यक्तिको तार देता है।

नित्य-श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी सभी पितरोंके साथ भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य तथा गन्धादिके द्वारा पूजा करके पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको यथाविधि भोजन कराना चाहिये। आवाहन, स्वधाकार, पिण्डदान, अग्नौकरण, ब्रह्मचर्यादि नियम और विश्वेदेवकृत्य—ये कर्म नित्य-श्राद्धमें त्याज्य हैं। इस श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम निवेदन करते हुए बिदा करे।

विश्वेदेव आदिके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको नित्य-श्राद्धकी भाँति जो भोजन कराया जाता है, वह 'देवश्राद्ध' कहा जाता है।

यदि अग्रिम दिन कोई शुभ कार्य—विवाह अथवा यज्ञोपवीत आदि करने हैं तो उसके पूर्व-दिन मातृश्राद्ध और पितृश्राद्ध एवं मातामहश्राद्ध (श्राद्धत्रय) करने चाहिये। इन तीनों श्राद्धोंके लिये अपेक्षित विश्वेदेव-कार्य एक ही बार करना चाहिये। अर्थात् तीनों श्राद्धोंके लिये तीन बार विश्वेदेव कार्य नहीं करने चाहिये। पहले मातृपितामही तथा प्रपितामहीके लिये, तदनन्तर पितृपितामह और

प्रपितामहके लिये, तत्पश्चात् मातामहादिके लिये क्रमश: आसनादिके दानकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। यदि मातृश्राद्धमें ब्राह्मणोंका अभाव हो तो श्रेष्ठ परिवारमें उत्पन्न हुई पति-पुत्रसे सम्पन्न सौभाग्यवती आठ साध्वी स्त्रियोंको ही निमन्त्रित किया जा सकता है।

इष्ट और आपूर्त-कृत्योंमें आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। उत्पात आदिकी शान्तिके लिये नित्य-श्राद्धके समान नैमित्तिक श्राद्ध करनेका विधान है।

हे तार्क्ष्य! जैसा मैंने कहा है, उसी प्रकारसे नित्यश्राद्ध, दैवश्राद्ध,, वृद्धिश्राद्ध, काम्यश्राद्ध, तथा नैमित्तिक श्राद्ध—इन पाँचों श्राद्धोंको करता हुआ मनुष्य अपने समस्त अभीष्टोंको प्राप्त करता है। इस तरह मैंने सब बता दिया, अब तुम मुझसे और क्या पूछ रहे हो? (अध्याय

## सत्कर्मकी महिमा तथा कर्मविपाकका फल

**तार्क्ष्यने कहा**—हे सुरश्रेष्ठ! मनुष्योंको स्वर्ग और नाना प्रकारके भोग तथा सुख एवं रूप, बल-बुद्धि एवं पराक्रम पुण्यके प्रभावसे प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त प्रकारके लौकिक एवं पारलौकिक भोग पुण्यवान् व्यक्तियोंको उनके पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं—ये वेदवाक्य सर्वथा सत्य हैं।

जिस प्रकार धर्मकी ही विजय होती है, अधर्मकी नहीं। सत्यकी ही विजय होती है, असत्यकी नहीं। क्षमाकी ही विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही विजय प्राप्त करते हैं असुर नहीं—

**धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।**
**क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः॥**

(४६।३)

—उसी प्रकार मैंने सत्य-रूपसे यह जाना है कि सुकृतसे ही कल्याण होता है। जिसका पुण्य जितना उत्कृष्टतम है, वह मनुष्य भी उतना ही श्रेष्ठतम है। जिस प्रकार पापी जन्म लेते हैं, जिस कर्मफलके अनुसार जीव जिस भोगका भागी होता है, वह जिन-जिन योनियोंको जिस रूपमें प्राप्त करता है, जैसा उसका रूप होता है वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। हे देव! संक्षेपमें आप मेरी इस इच्छित बातको बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे कश्यपपुत्र गरुड! शुभाशुभ फलोंके भोगके अनन्तर जिन लक्षणोंसे युक्त होकर मनुष्य इस लोकमें उत्पन्न होते हैं, उनको तुम मुझसे सुनो।

हे पक्षिश्रेष्ठ! इस लोकमें आत्मज्ञानियोंका शासक गुरु है। दुरात्माओंका शासक राजा है और गुप्तरूपसे पाप करनेवाले प्राणियोंका शासक सूर्य-पुत्र यम है—

**गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्।**
**इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥**

(४६।८)

अपने पापोंका प्रायश्चित्त न किये जानेपर उन्हें अनेक प्रकारके नरक प्राप्त होते हैं। वहाँकी यातनाओंसे विमुक्त होकर प्राणी मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। मानवयोनिमें जन्म लेकर वे अपने पूर्व-पापोंके जिन चिह्नोंसे युक्त रहते हैं, मैं उन लक्षणोंको तुम्हें बताऊँगा।

सभी पापी यमराजके घर पहुँचकर नाना प्रकारके कष्ट सहन करते हैं। जब उन यातनाओंसे उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है तो उनके पापोंका भावी शरीरपर चिह्नाङ्कन होता है। उन्हीं चिह्नोंसे संयुक्त होकर वे पुनः इस पृथ्वीलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। यथा—असत्यवादी हकलाकर बोलनेवाला, गायके विषयमें झूठ बोलनेवाला गूँगा, ब्रह्महन्ता कोढ़ी, मद्यपी काले रंगके दाँतोंवाला, स्वर्णचोर कुत्सित एवं विकृत नखोंवाला और गुरुपत्नीगामी चर्मरोगी होता है तथा पापियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला निम्नयोनिमें जन्म लेता है और दान न देनेवाला

दरिद्र, अयाज्यका यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण ग्रामसूकर, बहुतोंका यज्ञ करानेवाला गधा और अमन्त्रक भोजन करनेवाला कौआ होता है।

बिना परीक्षण किये हुए भोजनको ग्रहण करनेवाले निर्जन वनमें व्याघ्र होते हैं। अन्य प्राणियोंको बहुत तर्जना देनेवाले पापी बिलार, कक्षको जलानेवाला जुगुनू, पात्रको विद्या न देनेवाला बैल, ब्राह्मणको बासी अन्न देनेवाला कुत्ता, दूसरेसे ईर्ष्या और पुस्तककी चोरी करनेवाला जात्यन्ध और जन्मान्ध होता है।

फलोंकी चोरी करनेसे मनुष्यके संतानकी मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं है। वह मरनेके बाद बंदरकी योनिमें जाता है। तदनन्तर उसीके समान मुख प्राप्त कर पुनः मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और गण्डमालाके रोगसे ग्रस्त रहता है। जो बिना दिये स्वयं खा लेता है, वह संतानहीन होता है। वस्त्रकी चोरी करनेवाला गोह, विष देनेवाला वायुभक्षी सर्प, संन्यास-मार्गका परित्याग करके पुनः अपने पूर्व आश्रममें प्रविष्ट हो जानेवाला मरुस्थलका पिशाच होता है। जलापहर्ता पापीको चातक, धान्यके अपहरणकर्ताको मूषक और युवावस्थाको न प्राप्त हुई कन्याका संसर्ग करनेवालेको सर्पकी योनि प्राप्त होती है।

गुरुपत्नीगामी निश्चित ही गिरगिट होता है। जो व्यक्ति जलप्रपातके स्थानको तोड़कर नष्ट करता है, वह मत्स्य होता है। न बेचने योग्य वस्तुको जो खरीदता है, वह बगुला तथा गिद्ध होता है। अयोनिग व्यक्ति भेड़िया और खरीदी जा रही वस्तुमें छल करनेवाला उलूककी योनि प्राप्त करता है। जो मृतकके एकादशाहमें भोजन करनेवाला होता है तथा प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंको धन नहीं देता, वह सियार होता है। रानीके साथ सम्भोग करके मनुष्य दंष्ट्री होता है। चोरी करनेवाला ग्रामसूकर, फलविक्रेता श्यामलता होता है। वृषलीके साथ गमन करनेवाला वृष होता है। जो पुरुष पैरोंसे अग्निका स्पर्श करता है वह बिलौटा, दूसरेका मांस भक्षण करनेवाला रोगी, रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला नपुंसक, सुगन्धित वस्तुओंकी चोरी करनेवाला दुर्गन्धदायक प्राणी होता है। दूसरेका थोड़ा या बहुत जिस-किसी भी प्रकारसे जो कुछ भी मनुष्य अपहरण करता है, वह उस पापसे निश्चित ही तिर्यक् योनिमें जाता है।

हे खगेन्द्र! ऐसे तो पहलेवाले चिह्न हैं ही, किंतु इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत-से चिह्न हैं, जो अपने-अपने कर्मानुसार प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त रहते हैं। ऐसा पापी क्रमशः नाना प्रकारके नरकोंका भोग करके अवशिष्ट कर्मफलके अनुसार इन पूर्वकथित योनियोंमें जन्म लेता है। हे काश्यप! उसके बाद मृत्यु होनेपर जबतक शुभ और अशुभ कर्म समाप्त नहीं हो जाते हैं, तबतक सभी योनियोंमें सैकड़ों बार उसका जन्म होता है; इसमें संदेह नहीं है। जब स्त्री तथा पुरुषके संयोगसे गर्भमें शुक्र और शोणित जाता है तो उसीमें पञ्चभूतोंसे समन्वित होकर यह पाञ्चभौतिक शरीर जन्म लेता है। तदनन्तर उसमें इन्द्रियाँ, मन, प्राण, ज्ञान, आयु, सुख, धैर्य, धारणा, प्रेरणा, दुःख, मिथ्याहंकार, यत्न, आकृति, वर्ण, राग-द्वेष और उत्पत्ति-विनाश— ये सब उस अनादि आत्माको सादि मानकर पाञ्चभौतिक शरीरके साथ उत्पन्न होते हैं। उसी समयसे वह पाञ्चभौतिक शरीर पूर्वकर्मोंसे आबद्ध होकर गर्भमें बढ़ने लगता है।

हे तार्क्ष्य! मैंने जैसा तुमसे पहले कहा है, वैसा ही जीवका लक्षण है। चार प्रकारके प्राणिसमूहमें इसी प्रकारके परिवर्तनका चक्र घूमता रहता है। उसीमें शरीरधारियोंका उद्भव और विनाश होता है। यथाविहित अपने धर्मका पालन करनेसे प्राणियोंको ऊर्ध्वगति तथा अधर्मकी ओर बढ़नेसे अधोगति प्राप्त होती है। अतः सभी वर्णोंकी सद्गति

अपने धर्मपर चलनेसे ही होती है। हे वैनतेय! देव और मानवयोनिमें जो दान तथा भोगादिकी क्रियाएँ दिखायी देती हैं, वे सब कर्मजन्य फल हैं। घोर अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा अर्जित जो अशुभ पापाचार हैं, उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका उद्धार नहीं होता है। (अध्याय ४६)

# यममार्गमें स्थित वैतरणी नदीका वर्णन, पापकर्मोंसे घोर वैतरणीमें निवास, वैतरणीसे पार होनेके लिये वैतरणी-धेनुदान, भगवान् विष्णु, गङ्गा तथा ब्राह्मणकी महिमा

**गरुडने कहा**—हे देवदेवेश! महाप्रभो! अब आप परम कृपा करके दान, दानके माहात्म्य और वैतरणीके प्रमाणका वर्णन करें।

**श्रीकृष्णने कहा**—हे तार्क्ष्य! यमलोकके मार्गमें जो वैतरणी नामकी महानदी है, वह अगाध, दुस्तर और देखनेमात्रसे पापियोंको महाभयभीत करनेवाली है। वह पीब और रक्तरूपी जलसे परिपूर्ण है। मांसके कीचड़से परिव्याप्त एवं तटपर आये हुए पापियोंको देखकर उन्हें नाना प्रकारसे भयाक्रान्त करनेवाले स्वरूपको धारण कर लेती है। पात्रके मध्यमें घीकी भाँति वैतरणीका जल तुरंत खौलने लगता है। उसका जल कीटाणुओं एवं वज्रके समान सूँडवाले जीवोंसे व्याप्त है। सूँस, घड़ियाल, वज्रदन्त तथा अन्यान्य हिंसक एवं मांसभक्षक जलचरोंसे वह महानदी भरी हुई है। प्रलयके अन्तमें जैसे बारहों सूर्य उदित होकर विनाशलीला करते हैं, वैसे ही वे वहाँपर भी सदैव तपते रहते हैं, जिससे उस महातापमें वे पापी चिल्लाते हुए करुण विलाप करते हैं। उनके मुखसे बार-बार हा भ्रात, हा तात यही शब्द निकलता है। वे जीव उस महाभयंकर धूपमें इधर-उधर भागते हैं, उस दुर्गन्धपूर्ण जलमें डुबकी लगाते हैं और अपनी आत्मग्लानिसे व्यथित होते हैं। वह महानदी चारों प्रकारके प्राणियोंसे भरी हुई दिखायी देती है। पृथ्वीपर जिन लोगोंने गोदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे पार कर जाते हैं अन्यथा जिनके द्वारा यह दान नहीं हुआ है, वे उसीमें डूबते रहते हैं।

जो मूढ़ मेरी, आचार्य, गुरु, माता-पिता एवं अन्य वृद्धजनोंकी अवमानना करते हैं, मरनेके बाद उनका वास उसी महानदीमें होता है। जो मूढ़ अपनी विवाहिता पतिव्रता, सुशीला और धर्मपरायणा पत्नीका परित्याग करते हैं, उनका सदैवके लिये उसी महाघिनौनी नदीके जलमें वास होता है। विश्वासमें आये हुए स्वामी, मित्र, तपस्वी, स्त्री, बालक एवं वृद्धका वध करके जो पापी उस महानदीमें गिरते हैं, वे उसके बीचमें जाकर करुण विलाप करते हुए अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। शान्त तथा भूखे ब्राह्मणको विघ्न पहुँचानेके लिये जो उसके पास जाता है, वहाँ प्रलयपर्यन्त कृमि उसका भक्षण करते हैं। जो ब्राह्मणको प्रतिज्ञा करके प्रतिज्ञात वस्तु नहीं देता है अथवा बुलाकर जो 'नहीं है'—ऐसा कहता है, उसका वहाँ वैतरणीमें वास होता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, मद्य पीनेवाला, यज्ञका विध्वंस करनेवाला, राजपत्नीके साथ गमन करनेवाला, चुगलखोरी करनेवाला, कथामें विघ्न करनेवाला, स्वयं दी हुई वस्तुका अपहरण करनेवाला, खेत (मेड़) और सेतुको तोड़नेवाला, दूसरेकी पत्नीको प्रधर्षित करनेवाला, रस-विक्रेता तथा वृषलीपति ब्राह्मण, प्यासी गायोंकी बावलीको तोड़नेवाला, कन्याके साथ व्यभिचार करनेवाला, दान देकर पश्चात्ताप करनेवाला, कपिलाका दूध पीनेवाला

शूद्र तथा मांसभोजी ब्राह्मण—ये निरन्तर उस वैतरणी नदीमें वास करते हैं। कृपण, नास्तिक और क्षुद्र प्राणी उसमें निवास करते हैं। निरन्तर असहनशील तथा क्रोध करनेवाला, अपनी बातको ही प्रमाण माननेवाला, दूसरेकी बातको खण्डित करनेवाला नित्य वैतरणीमें निवास करता है। अहंकारी, पापी तथा अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाला, कृतघ्न, गर्भपात करनेवाला वैतरणीमें निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे यदि उस नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो तारनेका उपाय सुनो।

मकर और कर्ककी संक्रान्तिका पुण्यकाल, व्यतीपात योग, दिनोदय, सूर्य, चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, अमावास्या अथवा अन्य पुण्यकालके आनेपर श्रेष्ठतम दान दिया जाता है। मनमें दान देनेकी श्रद्धा जब कभी उत्पन्न हो जाय, वही दानका काल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है।

शरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है, इसलिये धर्म-संग्रह करना चाहिये—

**अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः॥**
**नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।**

(४७। २४-२५)

काली अथवा लाल रंगकी शुभ लक्षणोंवाली वैतरणी गायको सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, कांस्यपात्रकी दोहनीसे युक्त दो काले रंगके वस्त्रोंसे आच्छादित करके सप्तधान्य-समन्वित करके ब्राह्मणको निवेदित करे। कपाससे बने हुए द्रोणाचलके शिखरपर ताम्रपात्रमें लौहदण्ड लेकर बैठी हुई स्वर्णनिर्मित यमकी प्रतिमा स्थापित करे। सुदृढ़ बन्धनोंसे बाँधकर इक्षुदण्डोंकी एक नौका तैयार करे। उसीसे सूर्यसे उत्पन्न गौको सम्बद्ध कर दे। इसके बाद छत्र, पादुका, अंगूठी और वस्त्रादिसे पूज्य श्रेष्ठ ब्राह्मणको संतुष्ट करके जल तथा कुशके सहित इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए वह वैतरणी गौ उसे दानमें समर्पित करे—

**यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्।**
**तर्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥**
**गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पार्श्वतः।**
**गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥**
**विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर।**
**सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः॥**

(४७। ३०—३२)

'हे द्विजश्रेष्ठ! महाभयंकर वैतरणी नदीको सुनकर मैं उसको पार करनेकी अभिलाषासे आपको यह वैतरणी दान दे रहा हूँ। हे विप्रदेव! गौएँ मेरे आगे रहें, गौएँ मेरे बगलमें रहें, गौएँ मेरे हृदयमें रहें और मैं उन गायोंके बीचमें रहूँ। हे विष्णुरूप! द्विजवरेण्य! भूदेव! मेरा उद्धार करो। मैं दक्षिणासहित यह वैतरणी गौ आपको दे रहा हूँ। आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

इसके बाद सबके स्वामी धर्मराजकी प्रतिमा और वैतरणी नामवाली उस गौकी प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे। उस समय वह ब्राह्मणको आगे कर उस वैतरणी गौकी पूँछ हाथमें लेकर यह कहे—

**धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये॥**
**उत्तारणाय देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते।**

(४७। ३४-३५)

'हे गौ! उस महानदीसे मुझे पार उतारनेके लिये आप महाभयकारी यमराजके द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करें। हे वैतरणी! देवेश्वरि! आपको मेरा नमस्कार है।'

ऐसा कहकर उस गौको ब्राह्मणके हाथमें देकर उनके पीछे-पीछे उनके घरतक पहुँचाने जाय। हे वैनतेय! ऐसा करनेपर वह नदी दाताके लिये सरलतासे पार करनेके योग्य बन जाती है। जो व्यक्ति इस पृथ्वीपर गौका दान देता है, वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध कर लेता है।

सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है। स्वस्थ जीवनमें गोदान देनेसे हजार गुना एवं रोगग्रस्त जीवनमें सौ गुना लाभ निश्चित है। मरे हुए प्राणीके कल्याणार्थ

जितना दान दिया जाता है, उतना ही उसका पुण्य है। अतः मनुष्यको अपने हाथसे ही दान देना चाहिये। मृत्यु होनेके बाद कौन किसके लिये दान देगा? दान-धर्मसे रहित कृपणतापूर्वक जीवन जीनेसे क्या लाभ? इस नश्वर शरीरसे स्थिर कर्म करना चाहिये। प्राण अतिथिकी तरह अवश्य छोड़कर चले जायँगे।

हे पक्षिराज! इस प्रकार प्राणिवर्गके समस्त दुःखका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया है। इसके साथ यह भी बता दिया है कि प्रेतके मोक्ष एवं लोकमङ्गलके लिये उसके और्ध्वदेहिक कर्मको करना चाहिये।

**सूतजीने कहा**—हे विप्रगण! परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके द्वारा दिये गये ऐसे प्रेत-चरितसे सम्बन्धित उपदेशको सुनकर गरुडको अत्यन्त संतुष्टि प्राप्त हुई।

हे ऋषियो! जीव-जन्तुओंके जन्मादिका यही सब विधान है। यही जन्म, मरण, प्रेतत्व तथा और्ध्वदैहिक कृत्यका नियम है। मैंने सब प्रकारसे उनके मोक्ष आदि कारणका वर्णन कर दिया है।

'जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियोंकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं, असुर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन बान्धव हैं; जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है, उनकी दुर्गति नहीं होती है। भगवान् विष्णु मङ्गलस्वरूप हैं, गरुडध्वज मङ्गल हैं, भगवान् पुण्डरीकाक्ष मङ्गल हैं एवं हरि मङ्गलके ही आयतन हैं। हरि ही गङ्गा और ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण तथा गङ्गा उन विष्णुके मूर्तरूप हैं। अतः गङ्गा, हरि एवं ब्राह्मण ही इस त्रिलोकके सार हैं'—

**मया प्रोक्तं वै ते मुक्त्यै निदानं चैव सर्वशः।**
**लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।**
**येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥**
**धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।**
**क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुराः॥**
**विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः।**
**येषामेव स्थिरा बुद्धिर्न तेषां दुर्गतिर्भवेत्॥**
**मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः।**
**मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः॥**
**हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः।**
**भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेतज्जगत्त्रये॥**

(४७। ४५—४९)

इस प्रकार सूतजी महाराजके मुखसे निकली हुई, सभी शास्त्रोंके मूल तत्त्वोंसे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणी-रूपी अमृतका पान करके समस्त ऋषियोंको बहुत संतुष्टि प्राप्त हुई। वे सभी परस्पर उन सर्वार्थद्रष्टा सूतजीकी प्रशंसा करने लगे। शौनक आदि मुनि भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। 'प्राणी चाहे अपवित्र हो या पवित्र हो, सभी अवस्थाओंमें रहते हुए भी जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतरसे पवित्र हो जाता है'—

**अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।**
**यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥**

(४७। ५२)

(अध्याय ४७)

# दुःखी गर्भस्थ जीवका विविध प्रकारका चिन्तन करना, यमयातनाग्रस्त जीवका सदा सुकृत करनेका उपदेश देना

**तार्क्ष्यने कहा**—हे प्रभो! इस मर्त्यलोकमें अपने पुण्यकी संख्याके अनुसार सभी जातियोंमें जो मनुष्य निवास करते हैं, वे अपना काल आ जानेपर मृत्युको प्राप्त करते हैं—ऐसा लोकमें कहते हैं, इसके विषयमें आप मुझे बतायें। विधाताके द्वारा बनाये गये उस मार्गमें स्थित वे प्राणी अत्यन्त कठिन मार्गसे होकर गुजरते हैं। किस पुण्यसे वे प्रसन्नतापूर्वक जाते हैं और किससे वे यहाँ रहते हैं और कुल, बल तथा आयुका लाभ प्राप्त करते हैं।

**सूतजीने कहा**—हे ऋषियो! यह सुनकर, जिनके द्वारा इस पृथ्वीका निर्माण हुआ है, जिन्होंने समस्त चराचर जगत्‌की सृष्टि की है और समर्थ यमको अपने विहित कार्यमें नियोजित किया है, उन महाप्रभुने मनुष्यके शरीर, कर्म, भय और रूपका स्मरण करके गरुडसे इस प्रकार कहा—

**भगवान्‌ने कहा**—हे गरुड! यम-मार्गमें गमन करनेवाले जीवात्माओंका ऐहिक शरीर नहीं, अपितु धर्म, अर्थ, काम तथा चिरकालीन मोक्ष प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाला अंगुष्ठमात्र परिमाणमें स्थित दूसरा शरीर होता है। वह उसी रूपमें अपने पाप-पुण्यके अनुसार लोक एवं निवासगृह प्राप्त करता है। हे द्विज! उस यातना-शरीरमें स्थित होकर यम-पाशसे बँधा हुआ वह जीव पुनः-पुनः रोदन करता है—अत्यन्त पवित्र देशमें द्विजका शरीर प्राप्त करके भी मैंने न भगवान् विष्णुकी पूजा की, न पितरों एवं देवताओंको तृप्त किया, न मैंने याग, दान आदि किया और न योग्य पुत्रादि संतति ही। मुझ यम-मार्गगामीका कोई बन्धु नहीं है। मुझे पुनः द्विजका शरीर प्राप्त हो इस इच्छासे कोई पुण्य कार्य भी नहीं किया है। अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके वेद और पुराणकी संहिताओंका भी अध्ययन मैंने नहीं किया है। इस प्रकार रुदन करते हुए देहीसे यमदूत कहते हैं कि हे देहिन्! हाथमें आये हुए ब्राह्मणशरीर, पवित्र देश आदि रूपी अनमोल रत्न भी तुमने खो दिये। हे देहिन्! तुम उसीके अनुसार अपना निर्वाह करो, जैसा कि तुमने किया है।'

मनुष्य क्षत्रियवंशका हो अथवा वैश्यवंशका हो, वह शूद्र हो या नीचवर्णका हो, किंतु यदि वह देवता, ब्राह्मण, बालक, स्त्री, वृद्ध, दीन और तपस्वियोंका हन्ता है अथवा इन्हें उपद्रवग्रस्त देखकर (इनके संरक्षणसे) पराङ्मुख हो जाता है तो उसके सभी इष्टदेव उससे विमुख हो जाते हैं। पितृगण उसके द्वारा दिये गये तिलोदकका पान नहीं करते हैं और अग्निदेव उसके द्वारा दिये गये हव्यको भी नहीं स्वीकार करते हैं। हे पक्षीन्द्र! संग्रामके उपस्थित होनेपर शस्त्र लेकर जो क्षत्रिय शत्रु-सेनाके समक्ष द्वेष और भयवश नहीं जाता है तथा बादमें मारा जाता है तो उसका क्षात्रबल मानो व्यर्थ ही हो गया।

जो युद्धमें वीरगति प्राप्त करता है। उसने मानो चन्द्र एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान दे दिया, श्रेष्ठ तीर्थोंमें जाकर सदा स्नान कर लिया, गयातीर्थमें पहुँचकर सदा पितरोंको पिण्डदान दे दिया। जो क्षत्रिय अपने कर्तव्योंका पालन बिना किये हुए शरीरको छोड़ता है, वह सदा चिंता करता रहता है कि समरभूमिमें मारे गये स्वामीके लिये, बलात् अपहृत गौके लिये, स्त्री-बालककी हत्या रोकनेके लिये तथा मार्गमें लूटे जानेवाले साथियोंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग मैंने नहीं

किया। यमपाशमें आबद्ध वैश्य अपने किये हुए कर्मोंके विषयमें सोचता है कि मैंने किसी प्रकारका पुण्य-संचय नहीं किया, कुटुम्बके लिये मोहान्ध होकर क्रय-विक्रयमें मैंने सत्यका भी प्रयोग नहीं किया। ऐसे ही शूद्रका शरीर प्राप्त करनेवाला भी अपने कर्तव्यसे विमुख रहते हुए यदि शरीर त्याग करता है तो वह भी यह चिंता करता है कि मैंने ब्राह्मणोंको न तो यशस्कर दान दिया है और न उनकी पूजा की है। मेरे द्वारा इस पृथ्वीपर जलाशयका निर्माण नहीं करवाया गया है। मैंने किसी संस्कारहीन ब्राह्मणश्रेष्ठका संस्कार करानेमें योगदान भी नहीं किया है। शास्त्रविहित अपने कर्मोंका परित्याग करके मदान्ध होकर मैं जीवित रहा। श्रेष्ठ तीर्थमें जाकर अपने शरीरका परित्याग भी नहीं किया। मैंने धर्मार्जन भी नहीं किया है। कभी सद्गति प्राप्त करनेके लिये मैंने देवताओंकी पूजा भी नहीं की है।

समस्त लोकोंमें पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल—ये तीन लोक सारभूत हैं। सभी द्वीपोंमें जम्बूद्वीप, समस्त देशोंमें देवदेश अर्थात् भारतवर्ष और सभी जीवोंमें मनुष्य ही सार है। इस जगत्के सभी वर्णोंमें ब्राह्मणादि चार वर्ण तथा उन वर्णोंमें भी धर्मनिष्ठ व्यक्ति श्रेष्ठ हैं। इस लोकयात्राके मार्गमें स्थित जीवात्मा धर्मसे सभी प्रकारका सुख और ज्ञान प्राप्त करता है। हे पक्षिन्! गर्भस्थ जीवको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान रहता है, वह वहाँ स्मरण करता है कि आयुके समाप्त होनेपर शरीरका परित्याग करके अब मैं मलादिमें रहनेवाले छोटे-छोटे कृमि या कीटाणुओंकी एक विशेष योनिमें स्थित हूँ, मैं सरककर चलनेवाले सर्पादिकी योनिमें पहुँचा, मच्छर हो गया था, चार पैरोंवाला अश्व या वृषभ नामक पशु बन गया था अथवा जंगली सूकरकी योनिमें प्रविष्ट था। इस प्रकार गर्भमें रहते हुए उस जीवात्माको पूर्ण ज्ञान रहता है, किंतु उत्पन्न होते ही वह तत्काल उसे भूल जाता है। गर्भमें पहुँचकर जो जीवात्मा चिन्तन करता है, शरीरधारी वैसा ही जन्म लेकर बालक, युवा और वृद्ध होता है। यदि गर्भमें सोची गयी बात सांसारिक व्यामोहके कारण विस्मृत हो जाती है तो पुनः मृत्युकालमें उसकी याद आ जाती है। यदि शरीरके नष्ट होनेपर वह हृदयमें ही रह गयी है तो पुनः गर्भमें जानेपर उसका स्मरण होना निश्चित है। उसे याद आता है कि मैं दूसरेको छलनेका विचार करता रहा। मैंने शरीरकी रक्षाके लिये धर्मका परित्याग करके द्यूत, छल-कपट और चोरवृत्तिका आश्रय लिया।

अत्यन्त कष्टसे मैंने स्वयं लक्ष्मीको एकत्र किया था, किंतु अभिलषित धनका उपभोग मैं नहीं कर सका। अग्निदेव, अतिथि और बन्धु-बान्धवोंको स्वादिष्ट अन्न, फल, गोरस तथा ताम्बूल दे करके मैं उन्हें संतुष्ट करनेमें असफल रहा। चन्द्रग्रहण हो या मेष-मकर राशियोंपर सूर्यके प्रवेशका पुण्यकाल हो, ऐसे अवसरपर भी श्रेष्ठ तीर्थोंका सेवन मैंने नहीं किया। इसलिये हे देहिन्! तुम मल-मूत्रसे भरे हुए अपने इस कोशको परिपुष्ट करनेमें लगे रहे। अतः तुम्हारा उद्धार कहाँ हो सकता है? इस पृथ्वीपर स्थित त्रिविक्रम भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन मैंने नहीं किया, उन्हें प्रणाम नहीं किया और न तो उनकी पूजा की है। प्रभासक्षेत्रमें विराजमान भगवान् सोमनाथकी भक्तिपूर्वक पूजा एवं वन्दना भी मेरे द्वारा नहीं हुई है। जब ऐसी चिंता मृत प्राणी करता है, तब यमदूत उससे कहते हैं कि हे देहधारिन्! जैसा तुमने किया है, उसके अनुसार अपना निस्तार करो। हे देहिन्! पृथ्वीके श्रेष्ठतम तीर्थोंकी संनिधिमें जाकर उनमें स्नानकर तुम्हारे द्वारा विद्वानों, ब्राह्मणों एवं गुरुजनोंके हाथमें कुछ नहीं दिया गया, अतः जैसा तुमने किया है, वैसा भोगो। हे जीव! तुमने चन्दन और नैवेद्यादि पञ्चोपचारसे और चन्दनादियुक्त बलि प्रदान करके मातृकापूजा नहीं की, न तो तुम्हारे द्वारा विष्णु,

शिव, गणेश, चण्डी अथवा सूर्यदेव ही पूजे गये हैं। अतः तुमने जो कर्म किया है, उसीमें अपना निर्वाह करो। हे देहिन्! तुम्हें तो देवत्व प्राप्त करने योग्य मानवयोनिकी प्राप्ति हुई थी, किंतु (लौकिक आसक्तिमें) मोहवश यह सब समाप्त हो गया। विमूढ़बुद्धि तुमने अपनी गतिको नहीं देखा, इसलिये जो तुमने किया है, अब उसीमें निस्तार करो।

हे पक्षिन्! धर्म, अर्थ तथा यशको प्रदान करनेवाले, ऐसे पूर्वोक्त परलोकपथके पथिक जीवोंके पश्चात्ताप-वाक्यका विचार करके इस मनुष्यलोकमें जो धर्माचरण करते हुए पुण्य देशमें निवास करते हैं, वे इसी मनुष्यलोकमें जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

ऊपर किये हुए वर्णनके अनुसार विलाप करते हुए प्रेतको यमदूत अपने कालस्वरूप मुद्गरोंसे बहुत मारते हैं। वह 'हा दैव! हा दैव!' यह स्मरण करता हुआ अपनेको कोसते हुए कहता है कि तुमने अपनी कमायीसे जो धन अर्जित किया था, उसमेंसे किसीको दान नहीं दिया। पृथ्वीपर रहते हुए तुमने भूमिदान, गोदान, जलदान, वस्त्रदान, फलदान, ताम्बूलदान अथवा गन्धदान भी नहीं किया तो अब भला क्या सोच रहे हो? तुम्हारे पिता और पितामह मर गये, जिसने तुमको अपने गर्भमें धारण किया वह तुम्हारी माता भी मर गयी, तुम्हारे सभी बन्धु भी नहीं रहे, ऐसा तुमने देखा है। तुम्हारा पाञ्चभौतिक शरीर अग्निमें जलकर भस्म हो गया। तुम्हारे द्वारा एकत्र किया गया सम्पूर्ण धन-धान्य पुत्रोंने हस्तगत कर लिया। जो कुछ तुम्हारा सुभाषित है और जो कुछ तुमने धर्मसंचय किया है, वह तुम्हारे साथ है। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेवाला राजा हो अथवा संन्यासी या कोई श्रेष्ठतम ब्राह्मण हो, वह मरनेके बाद पुनः आया हुआ नहीं दिखायी देता है। जो भी इस धरातलपर उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। हे पक्षीन्द्र! दूतोंके सहित धर्मराजके पार्षद जब प्रेतसे इस प्रकारसे कहते हैं तो दुःखी वह प्रेत उन गणोंकी महान् आश्चर्यपूर्ण बातको सुनकर मनुष्यकी वाणीमें कहने लगता है—

जब दानके प्रभावसे व्यक्ति विमानपर आरूढ़ होता है, उस समय धर्म उसका पिता है, दया उसकी माता है, मधुर एवं अर्थगाम्भीर्ययुक्त वाणी उसकी पत्नी है और सुन्दर तीर्थमें किया गया स्नान उसका हितैषी बन्धु है। जब मनुष्य अपने हाथसे सुकृत करके उसको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित कर देता है, तब उसके लिये स्वर्ग किंकरकी भाँति हो जाता है। जो प्राणी धर्मनिष्ठ है वह अत्यन्त सुख-सुविधाओंको प्राप्त करता है और जो पापी है वह नाना दुःखोंका भोग करता है। जो धर्मशील, मान-सम्मान तथा क्रोधको जीतनेवाला, विद्या-विनयसे युक्त, दूसरेको कष्ट न देनेवाला, अपनी पत्नीमें संतुष्ट और परायी स्त्रीसे दूर रहनेवाला है, वह पृथ्वीपर हमारे लिये वन्दनीय है। जो मिष्टान्नदाता, अग्निहोत्री, वेदान्ती, हजारों चान्द्रायणव्रत करनेवाला, मासपर्यन्त उपवास रखनेमें समर्थ पुरुष तथा पतिव्रता नारी है—ये छः इस जीवलोकमें मेरे लिये वन्दनीय हैं। इस प्रकारका सम्यक् आचरण करते हुए जो मनुष्य वापी, कूप और जलसे पूर्ण तालाब बनवाता है, जो प्याऊ, जलकुण्ड, धर्मशाला तथा देवमन्दिरका निर्माण कराता है, वह उत्तम धर्म करनेवाला है। वेदज्ञ ब्राह्मणको दिया गया वर्षाशन, कन्याका विवाह, ऋणी ब्राह्मणकी ऋणमुक्ति, सुगमतासे बोयी-जोती जानेवाली भूमिका दान तथा प्याससे दुःखी प्राणियोंके लिये उसीके अनुकूल कूप, तडागादिका निर्माण ये ही सब सुकृत हैं।

शुद्ध भावसे जो प्राणी इस सुकृतसाररूप अध्यायको सुनता और पढ़ता भी है वह कुलीन है। वह धर्मनिष्ठ व्यक्ति मृत्युके बाद निश्चित ही उस अनन्त ब्रह्माण्डके एकमात्र आश्रय नारायणको प्राप्त करता है। (अध्याय ४८)

# भगवान् विष्णुद्वारा गरुडको दिये गये महत्त्वपूर्ण उपदेश, मनुष्य-योनिप्राप्तिकी दुर्लभताका वर्णन, मनुष्य-शरीर प्राप्तकर आत्मकल्याणके लिये सचेष्ट रहना, संसारकी दुःखरूपता तथा अनित्यता और ईश्वरकी नित्यताका वर्णन, कालके द्वारा सभीके विनाशका प्रतिपादन, सत्संग और विवेकज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति, तत्त्वज्ञानरूपी मोक्षप्राप्तिके उपाय, गरुडपुराणकी वक्तृ-श्रोतृपरम्परा तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

**गरुडने कहा**—हे दयाके सागर! अज्ञानके कारण ही जीवकी उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन लिया। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ। हे देवदेवेश! शरणागतवत्सल! प्रभो! सभी प्रकारके दुःखोंसे मलिन बनाये गये इस दुस्तर असार संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ट जीवोंकी अनन्त राशियाँ हैं। वे इसी संसारमें जन्म लेती हैं और इसीमें मर जाती हैं, किंतु उनका अन्त नहीं होता है। वे सदैव दुःखसे व्याकुल ही रहती हैं। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। हे मोक्षदाता स्वामिन्! वे किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं? उसको आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

**श्रीभगवान्ने कहा**—हे तार्क्ष्य! जो तुम मुझसे पूछ रहे हो, जिसको सुनने मात्रसे ही मनुष्य इस संसारके आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाता है, उसे मैं कह रहा हूँ; तुम सुनो।

हे खगेश! इस जगत्से परे परब्रह्मस्वरूप, निरवयव, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अद्वय-तत्त्व, स्वयंप्रकाश, आदि-अन्तसे रहित, विकारशून्य, परात्पर, निर्गुण और सच्चिदानन्द शिव हैं, उसीके अंश ये जीव हैं। जो अनादि अविद्यासे वैसे ही आच्छादित हैं, जैसे अग्निमें उसके अंश विस्फुल्लिङ्ग स्थित हैं। अनादि कर्मोंके प्रभावसे प्राप्त शरीरादि नाना उपाधियोंमें होनेके कारण परस्पर भिन्न-भिन्न हो गये हैं, सुख-दुःख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण है। उसी कर्मके अनुसार उन्हें जाति, देह, आयु तथा भोगकी प्राप्ति होती है। सूक्ष्म या लिङ्ग शरीरके बने रहनेतक पुनः-पुनः जन्म-मरणकी परम्परा चलती रहती है।

स्थावर, कृमि, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक, देवता और मुमुक्षु यथाक्रम चार प्रकारके शरीरोंको धारण करके हजारों बार उनका परित्याग करते हैं। यदि पुण्य कर्मके प्रभावसे उनमेंसे किसीको मानवयोनि मिल जाय तो उसे ज्ञानी बनकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। चौरासी लाख योनियोंमें स्थित जीवात्माओंको बिना मानवयोनि मिले तत्त्वज्ञानका लाभ नहीं मिल सकता है। इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं, करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवको कदाचित् ही संचित पुण्यके प्रभावसे मानवयोनि मिलती है। यह मानवयोनि मोक्षकी सीढ़ीके समान है। इस दुर्लभ योनिको प्राप्त कर जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं करता है, उससे बढ़कर पापी इस जगत्में दूसरा कौन हो सकता है—

**सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।**
**यस्तारयति नात्मानं तस्मात् पापतरोऽत्र कः॥**

( ४९। १५)

अन्य योनियोंसे भिन्न सुन्दर-सुन्दर इन्द्रियोंवाले

इस जन्मका लाभ लेकर जो मनुष्य आत्महितका ज्ञान नहीं रखता है, वह ब्रह्मघाती है। किसीका भी पुरुषार्थ शरीरके बिना सम्भव नहीं है। अतः शरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्य कर्म करना चाहिये। आत्मा सभीका पात्र है, इसलिये उसकी रक्षामें मनुष्य सर्वदा संलग्न रहे। जो व्यक्ति आजीवन उस आत्माकी रक्षामें प्रयत्नशील रहता है, वह जीवित रहते हुए ही अपना कल्याण देखता है। मनुष्यको ग्राम, क्षेत्र, धन, घर, शुभाशुभ कर्म और शरीर बार-बार नहीं प्राप्त होता है। विद्वान् लोग सदैव शरीरकी रक्षाके उपायमें लगे रहते हैं। कुष्ठादि महाभयंकर रोगोंसे ग्रस्त होनेपर भी मनुष्य उस शरीरको छोड़ना नहीं चाहता है। शरीरकी रक्षा धर्मके लिये, धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानकी रक्षा ध्यानयोगके लिये तथा ध्यानयोगकी रक्षा तत्काल मुक्तिप्राप्तिके लिये होती है। यदि आत्मा ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है तो अन्य दूसरा कौन ऐसा हितकारी होगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा।

यहीं इसी लोकमें नरकरूपी व्याधिकी चिकित्सा नहीं की गयी तो औषधिविहीन देश (परलोक)-में जाकर रोगी उससे मुक्तिका क्या उपाय करेगा? बुढ़ापा तो बाघिनके समान है। जिस प्रकारसे फूटे हुए घड़ेका जल धीरे-धीरे बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती रहती है। शरीरमें विद्यमान रोग शत्रुके सदृश कष्ट देते हैं, इसलिये कल्याण इसीमें है कि इन सभीसे मुक्ति प्राप्त करनेका सत्प्रयास किया जाय। जबतक शरीरमें किसी प्रकारका दुःख नहीं होता है, जबतक विपत्तियाँ सामने नहीं आती हैं और जबतक शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ती हैं, तबतक ही आत्मकल्याणका प्रयास हो सकता है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रयत्न किया जा सकता है। कोशागारमें आग लग जानेपर मूर्ख कुआँ खोदता है, ऐसे प्रयत्नसे क्या लाभ—

**इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः।**
**गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति॥**
**व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्।**
**निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत्॥**
**यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः।**
**यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत्॥**
**यावत् तिष्ठति देहोऽयं तावत् तत्त्वं समभ्यसेत्।**
**संदीप्तकोशभवने कूपं खनति दुर्मतिः॥**

(४९। २३—२६)

मनुष्य नाना प्रकारके सांसारिक कार्योंमें व्यस्त रहनेसे (बीतते हुए) समयको नहीं जान पाता है। वह दुःख-सुख तथा आत्महितको भी नहीं जानता है। पैदा होनेवालोंको, रोगियोंको, मरनेवालेको, आपत्तिग्रस्तको और दुःखी लोगोंको देखकर भी मनुष्य मोहरूपी मदिराको पीकर (जन्म-मरणादि दुःखसे युक्त संसारसे) नहीं डरता। सम्पदाएँ स्वप्नके समान हैं, यौवन पुष्पके सदृश है, आयु चञ्चल बिजलीके तुल्य नष्टप्राय है, ऐसा जानकर भी किसको धैर्य हो सकता है? सौ वर्षका जीवन अत्यल्प है। वह भी निद्रा तथा आलस्यमें आधा चला जाता है। तदनन्तर बाल्यावस्था, रोग, वृद्धावस्था एवं अन्यान्य दुःखोंमें व्यतीत हो गया और जो थोड़ा बचा वह भी निष्फल हो जाता है—

**कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः।**
**सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः॥**
**जातानार्तान् मृतानापद्भ्रष्टान् दृष्ट्वा च दुःखितान्।**
**लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन॥**
**सम्पदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम्।**
**तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः॥**
**शतं जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम्।**
**बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्॥**

(४९। २७—३०)

जिस कार्यको तुरंत आरम्भ कर देना चाहिये, उसके संदर्भमें जो उद्योगहीन होकर बैठा है, जहाँ जागते रहना चाहिये, वहाँ जो सोता रहे तथा भयके स्थानपर जो आश्वस्त होकर रहता है—ऐसा वह कौन मनुष्य है, जो मारा नहीं जाता? जलके फेनके समान इस शरीरको आक्रमण करके जीव स्थित है, यहाँ जिन प्रिय वस्तुओंके साथ संनिवास है, वे अनित्य हैं। अत: जीव कैसे निर्भय होकर नितान्त अनित्य, शरीर, भोग और पुत्र-कलत्रादिके साथ रहता है। जो अहितमें हित, अनिश्चितमें निश्चित और अनर्थमें अर्थको विशेष रूपसे जाननेवाला है, वह व्यक्ति अपने मुख्य प्रयोजनको नहीं जानता। जो देखते हुए भी गिर जाता है, जो सुनते हुए भी सद्-ज्ञानको नहीं प्राप्त कर पाता है, जो सद्ग्रन्थोंको पढ़ते हुए भी उसे नहीं समझ पाता है, वह देवमायासे विमोहित है—

**प्रारब्धये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।**
**विश्वस्तश्च भयस्थाने हा नरः को न हन्यते॥**
**तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते।**
**अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः॥**
**अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः।**
**अनर्थे चार्थविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः॥**
**पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुध्यति।**
**पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः॥**

(४९। ३१—३४)

कालके इस गहरे महासागरमें यह सम्पूर्ण जगत् डूबता-उतराता रहता है। मृत्यु, रोग और बुढ़ापारूपी ग्राहोंसे जकड़े जानेपर भी किसी व्यक्तिको ज्ञान नहीं हो पाता है। मनुष्यके लिये प्रतिक्षण भय है, समय बीत रहा है, किंतु वह उसी प्रकार दिखायी नहीं देता है, जैसे जलमें पड़ा हुआ कच्चा घड़ा गलता हुआ दिखायी नहीं देता। कदाचित् वायुको बाँधकर रखा जा सकता है, आकाशका खण्डन हो सकता है, तरंगोंको किसी सूत्रादिमें पिरोया जा सकता है; किंतु आयुमें विश्वास नहीं किया जा सकता है। जिसके (प्रलयाग्निके) प्रभावसे पृथ्वी दहकती है, सुमेरु पर्वत विशीर्ण हो जाता है तथा सागरका जल सूख जाता है। फिर इस शरीरके सम्बन्धमें तो बात ही क्या? पुत्र मेरा है, स्त्री मेरी है, धन मेरा है, बन्धु-बान्धव मेरे हैं। इस प्रकार 'में, में' चिल्लाते हुए बकरेकी भाँति कालरूपी भेड़िया बलात् मनुष्यको मार डालता है—

**तन्निमज्जज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे।**
**मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुध्यते॥**
**प्रतिक्षणभयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।**
**आमकुम्भ इवाम्भःस्थो विशीर्णो न विभाव्यते॥**
**युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्।**
**ग्रथनञ्च तरंगाणामास्था नायुषि युज्यते॥**
**पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते।**
**शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा॥**
**अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे।**
**जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात्॥**

(४९। ३५—३९)

यह मैंने किया है, यह मुझे करना है, यह किया गया है या नहीं किया गया है—इस प्रकारकी भावनासे युक्त मनुष्यको मृत्यु अपने वशमें कर लेती है। कल किये जानेवाले कार्यको आज ही कर लेना चाहिये। जो दोपहरके बाद करना है, उसको दोपहरसे पहले ही कर लेना चाहिये, क्योंकि कार्य हो गया है अथवा नहीं हुआ है, इसकी मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। वृद्धावस्था पथ-प्रदर्शक है, अत्यन्त भयंकर रोग सैनिक है, मृत्यु शत्रु है, ऐसी विषम परिस्थितिमें फँसा हुआ मनुष्य अपने रक्षक भगवान् विष्णुको क्यों नहीं देखता है। तृष्णारूपी सूईसे छिद्रित, विषयरूपी घृतमें डूबे, राग-द्वेषरूपी अग्निकी आँचमें पकाये गये मानवको मृत्यु खा लेती है। बालक, युवा, वृद्ध और गर्भमें स्थित सभी प्राणियोंको मृत्यु अपनेमें समाहित कर लेती है, ऐसा है यह जगत्। यह जीव अपने शरीरको भी छोड़कर यमलोक चला जाता है तो भला स्त्री, माता-पिता और पुत्रादिका जो सम्बन्ध है, वह किस

कारणसे प्रेरित होकर बनाया गया है। संसार दु:खका मूल है, वह किसका होकर रहा है अर्थात् इसकी ओर जिसका मन अधिक रम गया है, वही दु:खित है। जिसने इस सांसारिक व्यामोहका परित्याग कर दिया है, वह सुखी है। उसके अतिरिक्त कहींपर भी अन्य कोई दूसरा सुखी नहीं है—

**इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्।**
**एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम्॥**
**श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।**
**न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यथ वाऽकृतम्॥**
**जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्।**
**अधिष्ठितो मृत्युशत्रुं त्रातारं किं न पश्यति॥**
**तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा।**
**रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥**
**बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि।**
**सर्वानाविशते मृत्युरेवम्भूतमिदं जगत्॥**
**स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्।**
**स्त्रीमातृपितृपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना॥**
**दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः।**
**तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्॥**

(४९। ४०—४६)

यह जगत् सभी दु:खोंका जनक, समस्त आपदाओंका घर तथा सब प्रकारके पापोंका आश्रय है। अत: क्षणभरमें ही मनुष्यको इसका त्याग कर देना चाहिये। लौह और काष्ठके जालमें फँसा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है; किंतु पुत्र एवं स्त्रीके मोहजालमें फँसा हुआ वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य मनको प्रिय लगनेवाले जितने पदार्थोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता जाता है, उतनी शोककी कीलें उसके हृदयमें चुभती जाती हैं। विषयका आहार करनेवाले देहस्थित तथा सभी प्रकारके अशेष सामर्थ्यसे वञ्चित कर देनेवाले जिन इन्द्रियरूपी चोरोंके द्वारा लोक विनष्ट हो रहे हैं। हाय, यह बड़े कष्टकी बात है। जैसे मांसके लोभमें फँसी हुई मछली बंसीके काँटेको नहीं देखती है, वैसे ही सुखके लालचमें फँसा हुआ शरीरी यमकी बाधाको नहीं देखता है—

**प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्।**
**आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥**
**लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते।**
**पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन॥**
**यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्।**
**तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥**
**वञ्चिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः।**
**हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः॥**
**मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशंकुं न पश्यति।**
**सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति॥**

(४९। ४७—५१)

हे खगेश! अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नित्य कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है, वे मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। निद्रा, भय, मैथुन तथा आहारकी अभिलाषा सभी प्राणियोंमें समान रूपसे रहती है; उनमें ज्ञानीको मनुष्य और अज्ञानीको पशु माना गया है। मूर्ख व्यक्ति प्रात:कालमें मल-मूत्र, दोपहरमें भूख-प्यास तथा रातमें मैथुन और निद्रासे पीड़ित रहते हैं। बड़े दु:खकी बात है कि अज्ञानसे मोहित होकर सभी प्राणी अपने शरीर, धन एवं स्त्री आदिमें अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। अत: व्यक्तिको उनकी ओर बढ़ी हुई अपनी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति छोड़ी न जा रही हो तो महापुरुषोंके साथ उस आसक्तिको जोड़ देना चाहिये, क्योंकि आसक्ति-रूपी व्याधिकी औषधि सज्जन पुरुष ही हैं—

**हिताहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः।**
**कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग॥**
**निद्राभीमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः।**
**ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः॥**

**प्रभाते मलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ।**
**रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मूढमानवाः॥**
**स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः।**
**जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः॥**
**तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।**
**महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम्॥**

(४९।५२—५६)

सत्संग और विवेक—ये दो प्राणीके मलरहित, स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा? अर्थात् वह अवश्य ही कुमार्गगामी होगा—

**सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्।**
**यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥**

(४९।५७)

अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको माननेवाले सभी मानव दूसरेके धर्मको नहीं जानते हैं, किंतु वे दम्भके वशीभूत हो जायँ तो अपना ही नाश करते हैं। व्रतचर्यादिमें लगे हुए प्रयासरत कुछ लोगोंसे क्या बनेगा? क्योंकि अज्ञानसे स्वयं अपने आत्मतत्त्वको ढके हुए लोग प्रचारक बनकर देश- देशान्तरमें विचरण करते हैं। नाममात्रसे स्वयं संतुष्ट कर्मकाण्डमें लगे हुए मनुष्य तथा मन्त्रोच्चार एवं होमादिसे युक्त याज्ञिक यज्ञविस्तारके द्वारा भ्रमित हैं। मेरी मायासे विमोहित मूढ़ लोग शरीरको सुखा देनेवाले एकभक्त तथा उपवासादि नियमोंसे अपने पुण्यरूप अदृष्टकी कामना करते हैं।

शरीरकी ताड़ना मात्रसे अज्ञानीजन क्या मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं? क्या वामीको पीटनेसे महाविषधारी सर्प मर सकता है? यह कदापि सम्भव नहीं है। जटाओंके भार और मृगचर्मसे युक्त वेष धारण करनेवाले दाम्भिक ज्ञानियोंकी भाँति इस संसारमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको भ्रमित करते हैं। लौकिक सुखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' ऐसा कहनेवाले, कर्म तथा ब्रह्म—इन दोनोंसे भ्रष्ट, दम्भी एवं ढोंगी व्यक्तिका अन्त्यजके समान परित्याग कर देना चाहिये। घरको वनके समान मानकर निर्वस्त्र और लज्जारहित जो साधु गधे अन्य पशुओंकी भाँति इस जगत्‌में घूमते रहते हैं, क्या वे विरक्त होते हैं? कदापि नहीं। यदि मिट्टी, भस्म तथा धूलका लेप करनेसे मनुष्य मुक्त हो सकता है तो क्या मिट्टी और भस्ममें ही नित्य रहनेवाला कुत्ता मुक्त नहीं हो जायगा? वनवासी तापसजन घास, फूस, पत्ता तथा जलका ही सेवन करते हैं, क्या इन्हींके समान वनमें रहनेवाले सियार, चूहे और मृगादि जीवजन्तु तपस्वी हो सकते हैं? जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त गङ्गा आदि पवित्रतम नदियोंमें रहनेवाले मेढक या मछली आदि प्रमुख जलचर प्राणी योगी हो सकते हैं? कबूतर, शिलाहार और चातक पक्षी कभी भी पृथ्वीका जल नहीं पीते हैं, क्या उनका व्रती होना सम्भव है। अतः ये नित्यादिक कर्म लोकरञ्जनके कारक हैं। हे खगेश्वर! मोक्षका कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान है।

हे खगेश्वर! षड्दर्शनरूपी महाकूपमें पशुके समान गिरे हुए मनुष्य पाशसे नियन्त्रित पशुकी भाँति परमार्थको नहीं जानते। वेद-शास्त्रादिके महासमुद्रमें इधर-उधरसे अनुमान लगानेवाले इस षड्दर्शनरूपी तरंगसे ग्रस्त होकर कुतर्की बन जाते हैं। जो वेद-आगम और पुराणका ज्ञाता परमार्थको नहीं जानता है, उस कपटीका सब कथन कौवेका काँव-काँव ही है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसी चिन्तासे भलीभाँति बेचैन तथा परमार्थतत्त्वसे दूर प्राणी दिन-रात शास्त्रका अध्ययन करता है। वाक्य ही छन्द है और उस छन्दसे गुम्फित काव्योंमें अलंकार सुशोभित होता है। इस चिन्तासे दुःखित मूर्ख व्यक्ति अत्यधिक व्याकुल हो जाता है। उस परमतत्त्वका अन्य ही अर्थ है; किंतु लोग उसका दूसरा अर्थ लगाकर दुःखित होते हैं। शास्त्रोंका सद्भाव कुछ और ही है; किंतु वे उसकी व्याख्या उससे भिन्न ही करते हैं। उपदेशादिसे रहित कुछ अहंकारी व्यक्ति उन्मनीभावकी बात

कहते हैं, किंतु स्वयं उसका अनुभव नहीं करते हैं। वे वेद-शास्त्रोंको पढ़ते हैं और परस्पर उसको जाननेका प्रयास करते हैं; किंतु जैसे कलछी पाकका रसास्वाद नहीं कर पाती है, वैसे ही वे परमतत्त्वको नहीं जान पाते हैं। सिर पुष्पोंको ढोता है, परंतु उसकी सुगन्धका अनुभव नासिका ही करती है। बहुत-से लोग वेद-शास्त्र पढ़ते हैं; किंतु उनके भावको समझनेवाला दुर्लभ है। अपने ही भीतर विद्यमान उस परमतत्त्वको न पहचान कर मूर्ख प्राणी शास्त्रोंमें वैसे ही व्याकुल रहता है, जैसे कछारमें आये हुए बकरी या भेंडके बच्चेको एक गोप कुएँमें खोजता है। सांसारिक मोहको विनष्ट करनेमें शब्दज्ञान समर्थ नहीं है; क्योंकि दीपककी वार्तासे कभी अन्धकारको दूर नहीं किया जा सकता है। बुद्धिरहित व्यक्तिका पढ़ना वैसे ही है, जैसे अन्धेके हाथमें दर्पण हो। अतः प्रज्ञावान् पुरुषोंके द्वारा अधीत शास्त्र तत्त्वज्ञानका लक्षण है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसे विचारोंमें फँसा हुआ मनुष्य सब कुछ जाननेकी इच्छा करता है, किंतु हजार दिव्य वर्षोंतक पढ़नेपर भी वह शास्त्रोंका अन्त नहीं समझ पाता है। शास्त्र तो अनेक हैं, किंतु आयु बहुत ही कम है और उसमें भी करोड़ों विघ्न-बाधाएँ हैं। इसलिये जलमें मिले हुए क्षीरको जैसे हंस ग्रहण कर लेता है, वैसे ही उनके सार-तत्त्वको ग्रहण करना चाहिये—

**अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः।**
**तस्मात् सारं विजानीयात् क्षीरं हंस इवाम्भसि॥**

(४९।८४)

हे ताक्ष्र्य! वेद-शास्त्रोंका अभ्यास करके जो बुद्धिमान् व्यक्ति उस परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसको उन सभीका परित्याग उसी प्रकार करना चाहिये, जिस प्रकार एक धान्यार्थी पुरुष धान ग्रहण कर लेता है और पुआलको फेंक देता है। जैसे अमृतके पानसे संतृप्त प्राणीका भोजनसे कोई सरोकार नहीं रह जाता है, वैसे ही तत्त्वको जाननेवाले विद्वान्का शास्त्रसे कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। हे विनतात्मज! वेदाध्ययनसे मुक्ति सम्भव नहीं है और न तो शास्त्रोंको पढ़नेसे वह प्राप्त हो सकती है, वह कैवल्य ज्ञानसे ही सुलभ है, किसी अन्य साधनसे नहीं। आश्रम उस मोक्षका कारण नहीं हो सकता है। दर्शन भी उसकी प्राप्तिके कारण नहीं हैं। वैसे ही सभी कर्मोंको उसका कारण नहीं मानना चाहिये। उसका कारण ज्ञान है। मुक्ति देनेवाली गुरुकी एक वाणी है। अन्य सभी विद्याएँ विडम्बना करनेवाली हैं। हजार शास्त्रोंका भार सिरपर होनेपर भी प्राणीको तो संजीवन देनेवाला वह परमतत्त्व अकेला ही है। सभी प्रकारकी क्रियाओंसे रहित वह अद्वैत शिवतत्त्व कहा गया है। उसको गुरुके मुखसे प्राप्त करना चाहिये। वह करोड़ों आगम-शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे मिलनेवाला नहीं है।

ज्ञान दो प्रकारका कहा जाता है। एक है शास्त्रकथित ज्ञान और दूसरा है विवेकसे प्राप्त हुआ ज्ञान। इसमें शब्द ही ब्रह्म है, ऐसा आगम-शास्त्र कहते हैं। वह परमतत्त्व ही ब्रह्म है, ऐसा विवेकी जन कहते हैं। कुछ लोग अद्वैतको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं और कुछ लोग द्वैतको चाहते हैं; किंतु वे सभी यह नहीं जानते हैं कि वह परमतत्त्व समभाववाला है। वह द्वैताद्वैतसे रहित है।

बन्धन और मोक्षके लिये इस संसारमें दो ही पद हैं। एक पद है 'यह मेरा है' और दूसरा पद है 'यह मेरा नहीं है'। 'यह मेरा है' इस ज्ञानसे वह बँध जाता है और 'यह मेरा नहीं है' इस ज्ञानसे वह मुक्त हो जाता है—

**द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।**
**ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥**

(४९।९३)

जो कर्म इस जीवात्माको बन्धनमें नहीं ले

जाता है, वही सत्कर्म है। जो प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थवती है, वही विद्या है। इसके अतिरिक्त दूसरा कर्म तो परिश्रम करनेके लिये होता है और दूसरी विद्या कलानैपुण्यको प्रदर्शित करनेके लिये होती है। जबतक प्राणियोंको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनमें सांसारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोंमें चञ्चलता रहती है, तबतक उन्हें परमतत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है—

**तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा।**
**आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥**
**यावत् कर्माणि दीप्यन्ते यावत् संसारवासना।**
**यावदिन्द्रियचापल्यं तावत् तत्त्वकथा कुतः॥**

(४९। ९४-९५)

जबतक व्यक्तिमें शरीरका अभिमान है, जबतक उसमें ममता है, जबतक उस प्राणीमें प्रयत्नकी क्षमता रहती है, जबतक उसमें संकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है, जबतक उसके मनमें स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्र-चिन्तन नहीं करता है एवं जबतक उसपर गुरुकी दया नहीं होती है, तबतक उसको परमतत्त्व-कथा कहाँसे प्राप्त हो सकती है?

'तभीतक ही तप, व्रत, तीर्थ, जप तथा होमादिक कृत्य एवं वेद-शास्त्र तथा आगमकी कथा है, जबतक व्यक्ति उस परमार्थ-तत्त्वको नहीं जान जाता है। हे तार्क्ष्य! यदि व्यक्ति अपना मोक्ष चाहता हो तो वह सभी अवस्थाओंमें प्रयत्नपूर्वक सदैव तत्त्वनिष्ठ होकर रहे। दैहिक, दैविक और भौतिक—इन तीनों तापोंसे संतप्त प्राणीको धर्म और ज्ञान जिसका पुष्प है, स्वर्ग तथा मोक्ष जिसका फल है, ऐसे मोक्षरूपी वृक्षकी छायाका आश्रय करना चाहिये। अतः श्रीगुरुदेवके मुखसे प्राप्त ज्ञानके द्वारा आत्मतत्त्वको जानना चाहिये। ऐसा करनेसे जीव इस दुर्धर्ष संसारके बन्धनसे सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है'—

**तावत् तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्।**
**वेदशास्त्रागमकथा यावत् तत्त्वं न विन्दति॥**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा।**
**तत्त्वनिष्ठो भवेत् तार्क्ष्य यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः॥**
**धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च।**
**तापत्रयादिसंतप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत्॥**
**तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात्।**
**सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात्॥**

(४९। ९८—१०१)

हे गरुड! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य सुनो, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त होता है, अब मैं उसे कहूँगा।

अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर असंगरूपी शस्त्रसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। घरसे संन्यासी बनकर निकला धीरवान् पुरुष पवित्र तीर्थमें जाकर उसके जलमें स्नान करे। तदनन्तर वहींपर एकान्त देशमें किसी स्वच्छ एवं शुद्ध भूमिमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोंके द्वारा उस परम शुद्ध ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मके बीजमन्त्रको बिना भुलाये वह अपनी श्वासको रोककर मनको वशमें करे। मनरूपी घोड़ेको बुद्धिरूपी सारथीद्वारा सांसारिक विषयोंसे उसका नियन्त्रण करे। अन्य कर्मोंसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्ममें मनको लगाये।

मैं ब्रह्म हूँ। मैं परम धाम हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। परमपद मैं हूँ। इस प्रकारकी समीक्षा करके आत्माको निष्कल आत्मामें प्रविष्ट करना चाहिये। 'जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परमपद प्राप्त करता है'—

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।**
**यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥**

(४९। १०८)

जहाँ ज्ञान-वैराग्यसे रहित अहंकारी प्राणी नहीं जाते हैं वहाँ सुधीजन जाते हैं। उनके विषयमें अब तुम्हें बताता हूँ—

मान-मोहसे रहित, आसक्ति-दोषसे परे, नित्य अध्यात्म-चिन्तनमें दत्तचित्त, सांसारिक समस्त कामनाओंसे रहित और सुख-दुःख नामक द्वन्द्वसे मुक्त जो ज्ञानी पुरुष हैं, वे ही उस अव्ययपदको प्राप्त करते हैं—

**निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।**
**द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥**

(४९। ११०)

'जो व्यक्ति ज्ञानरूपी ह्रदमें राग-द्वेष नामवाले मलको दूर करनेवाले सत्यरूपी जलसे भरे हुए मानसतीर्थमें स्नान करता है, उसीको मोक्ष प्राप्त होता है'—

**ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।**
**यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥**

(४९। १११)

'प्रौढ़ वैराग्यमें स्थित होकर अनन्यभावसे जो मनुष्य मेरा भजन करता है, वह पूर्ण दृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है'—

**प्रौढवैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक्।**
**पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥**

(४९। ११२)

'घर छोड़कर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थमें निवास करता है और मुक्ति-क्षेत्रमें मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका तथा द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्षप्रदा हैं'—

**त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः।**
**मुक्तिक्षेत्रेषु म्रियते स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥**
**अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।**
**पुरी द्वारवती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥**

(४९। ११३-११४)

हे तार्क्ष्य! ज्ञान-वैराग्यसे युक्त यह सनातन मोक्ष-धर्म ऐसा ही है। इसको तुम्हें सुना भी दिया है। दूसरा प्राणी भी ज्ञान-वैराग्यपूर्वक इसको सुनकर मोक्ष प्राप्त करता है।

'तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं, धर्मनिष्ठ स्वर्ग जाते हैं। पापी नरकमें जाते हैं। पक्षी आदि इसी संसारमें अन्य योनियोंमें प्रविष्ट होकर घूमते रहते हैं'—

**मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः।**
**पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥**

(४९। ११६)

**सूतजीने कहा**—हे महर्षियो! अपने प्रश्नके उत्तरके रूपमें भगवान्‌के मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—प्रभो! आपके इन आह्लादकारी वचनोंसे मेरा बहुत बड़ा संदेह दूर हो गया। ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् विष्णुसे जानेकी आज्ञा ली और वे कश्यपजीके आश्रममें चले गये।

हे ब्राह्मणो! जिस प्रकार प्राणी मृत्युके बाद तत्काल दूसरी योनिमें चला जाता है अथवा जैसे वह विलम्बसे देहान्तरको प्राप्त करता है, इन दोनों बातोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है। हे तात! जैसा मैंने भगवान्‌से सुना है, वैसा ही मैंने आपको सुना दिया है। लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके इन वाक्योंको सुनकर मरीचपुत्र कश्यप भी बहुत प्रसन्न हुए। ब्रह्मासे इस महापुराणको सुनकर मैंने आप लोगोंको भी वही सुनाया है। इससे आप सभीका संदेह भी दूर हो गया। गरुडके द्वारा कहा गया यह महापुराण बड़ा ही विचित्र है।

इस महापुराणको गरुडने हरिसे प्राप्त किया था। उसके बाद गरुडसे भृगुको प्राप्त हुआ। तदनन्तर भृगुसे वसिष्ठ, वसिष्ठसे वामदेव, वामदेवसे पराशरमुनि, पराशरमुनिसे व्यास और व्याससे मैंने इसे सुना है। हे ऋषियो! मेरे द्वारा अब आप सबको परम गोपनीय यह वैष्णव पुराण सुनाया गया है। जो

मनुष्य इस महापुराणको सुने या जो इसको पढ़े, वह इस लोक और परलोक सभीमें सुख प्राप्त करता है। संयमनी पुरीमें जाते हुए प्रेतको जो दु:ख प्राप्त होता है, उसका जैसा निरूपण इस महापुराणमें किया गया है। इसे सुननेसे जो पुण्य होता है, उसके कारण वह प्रेत मुक्त हो जाता है। इस महापुराणमें कहे गये कर्म-विपाकादिको सुननेसे मनुष्यको यहींपर वैराग्य प्राप्त हो जाता है। अत: जिस प्रकारसे हो सके प्राणीको इसे अवश्य सुनना चाहिये।

हे जितेन्द्रिय ऋषियो! आप लोग मुनीश भगवान् श्रीकृष्णका भजन करें, जिनके मुखसे निकली हुई सुधासारकी धाराके मात्र एक वर्णरूपी सीकरको श्रुतिपूरकरूपी चिल्लूसे पीकर परमात्माके साथ ऐक्य प्राप्त हो जाता है।

**व्यासजीने कहा**—इस प्रकार सूतके मुखसे निकली हुई समस्त शास्त्रोंके अर्थसे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणीका अमृत पान करके ऋषिगण परम संतुष्ट हुए। परस्पर उन लोगोंके बीच सर्वार्थदर्शी सूतजी महाराजकी प्रशंसा होने लगी। शौनक आदि ऋषियोंको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सूतजीके द्वारा कही गयी पक्षिराज गरुडके संदेहोंको विनष्ट करनेवाली भगवान् विष्णुकी वाणीको सुनकर जितेन्द्रिय मुनिराज शौनकने मन-ही-मन अपनेको धन्य माना। उस समय अपनी उदार वाणीसे उन मुनियोंने सूतजीको बार-बार धन्य हैं, आप धन्य हैं—कहकर धन्यवाद दिया। तदनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर उन्हें विदाई दी।

‘यह गारुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये’—

**पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।**
**शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥**

(४९। १३२)

इस महापुराणको सुननेके बाद वाचकको शय्यादि सभी प्रकारके विधिवत् दान देनेका विधान है अन्यथा कथा सुननेका लाभ उन्हें नहीं प्राप्त होता। श्रोताको सर्वप्रथम इस महापुराणकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद वस्त्र, अलंकार, गौ तथा दक्षिणा आदिसे वाचककी ससम्मान पूजा करनी चाहिये। अधिक पुण्य-लाभके लिये अधिकाधिक अन्नदान, स्वर्णदान और भूमिदानसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। ‘जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो, वैसे ही उसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर यातनाओंको तोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है’—

**यश्चेदं शृणुयान्मर्त्यो यश्चापि परिकीर्तयेत्।**
**विहाय यातनां घोरां धूतपापो दिवं व्रजेत्॥**

(४९। १३६)

*॥ धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प सम्पूर्ण॥*